गेहूँ एवं जौ

स्वर्णिमा

छठा अंक-2014

विशेषांक

कृषि में उत्पादन एवं आय बढ़ाने की
नवीनतम व समसामयिक तकनीकें

भा.कृ.अ.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
करनाल-132001, हरियाणा

गेहूँ एवं जौ

स्वर्णिमा

छठा अंक-2014

विशेषांक

कृषि में उत्पादन एवं आय बढ़ाने की
नवीनतम व समसामयिक तकनीकें

अनुज कुमार, राजपाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र, विष्णु कुमार, जे. के. पाण्डेय, अनीता मीणा एवं राजेन्द्र कुमार (2014) गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001, पृष्ठ सं.-140

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

छठा अंक

सम्पादक मंडल :
मुख्य सम्पादक : अनुज कुमार
सम्पादक : राजपाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र, विष्णु कुमार, जे. के. पाण्डेय, अनीता मीणा एवं राजेन्द्र कुमार

संरक्षण एवं प्रकाशक : **इंदु शर्मा**
निदेशक
भा. कृ. अनु. प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
करनाल - 132001, हरियाणा
दूरभाष : 0184-2267490 फैक्स : 0184-2267390
वेबसाइट : *www.dwr.in*

प्रतियाँ : 500

छायाचित्र : राजेन्द्र कुमार शर्मा

मुद्रण : **श्रीकोशी रैप्रोग्राफिक्स**
121, इंडस्ट्रियल एरिया, एच.एस.आई.आई.डी.सी.
सेक्टर - 3, करनाल - 132001
दूरभाष : 0184-2220044, 98120 53552
ई-मेल : *shrikoshi@gmail.com*

प्राक्कथन

गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, जिसका उन्नयन भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान के रूप में हो गया है अब और अधिक उत्तरदायित्व के साथ अपनी शोध, समन्वय एवं प्रसार की गतिविधियों को और गहन बनाने में लगा है।

किसानों, वैज्ञानिकों एवं विभिन्न संस्थानों के अनवरत प्रयासों से गेहूँ उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है तथा वर्ष 2013–2014 में 30.47 मिलियन हैक्टर से 95.85 मिलियिन टन उत्पादन प्राप्त हुआ है जो एक नया आयाम स्थापित करता है। विगत वर्षों में हो रहे रिकार्ड उत्पादन के लिए किसान वैज्ञानिक एवं विस्तार सेवाएं समान रूप से बधाई के पात्र हैं।

किसानों द्वारा लगातार अधिक उत्पादन प्राप्त करना विभिन्न संस्थानों द्वारा विकसित समसामयिक तकनीकें जैसे उन्नत बीज, उन्नत सस्य क्रियाएं तथा रोग एवं कीट प्रबंधन इत्यादि का अंगीकरण भी दर्शाता है। अतः गेहूँ एवं जौ में विकसित नवीन तकनीकों एवं किस्मों को समाहित करता हुआ 'गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा' का प्रस्तुत छठा अंक एक उम्दा संकलन है।

''गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा'' के छठे अंक में **''समसामयिक तकनीकी द्वारा उत्पादन एवं आय में वृद्धि''** से सम्बन्धित लेख प्रस्तुत किए जा रहे हैं जो नवीन प्रजातियों उत्पादन तकनीकों, कीट एवं रोग प्रबंधन कम लागत में उन्नत खेती, खरपतवार प्रबंधन तथा अधिक आय प्राप्त करने जैसे किसान उपयोगी विषयों को लक्षित करता है। इसमें कुछ किसानों द्वारा अपनाएं जा रहे नूतन प्रयासों को भी उनकी ही भाषा में इस अंक में सम्मिलित किया गया है।

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा के छठे अंक के प्रकाशन पर सभी समन्वय केन्द्रों के वैज्ञानिकों के साथ–साथ संस्थान के वैज्ञानिक एवं कर्मचारीगण समान रूप से बधाई के पात्र हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पत्रिका का प्रकाशन अनवृश्त होता रहेगा। हम पाठकों से उनकी टिप्पणी एवं सुझाव आमन्त्रित करते हैं ताकि प्रकाशन की गुणवत्ता एवं उपयोगिता को और उम्दा बनाया जा सके।

मैं सभी लेखकगणों एवं सम्पादन मण्डल के सभी सदस्यों को इस सकारात्मक प्रयास लिए सहृदय धन्यवाद देती हूँ तथा इस पत्रिका के उज्जवल भविष्य की कामना करती हूँ।

इन्दु शर्मा

इन्दु शर्मा
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

विषय सूची

1.	**अधिक आय हेतु गेहूँ उत्पादन बढ़ाने की उन्नत नवीनतम व समसामयिक तकनीकें** राम चरण मथुरिया, रोबिन गोगोई, वैभव कुमार सिंह एवं रश्मि अग्रवाल	1
2.	**गेहूँ की सतही बुआईः लाभकारी एवं पर्यावरण हितैषी तकनीक** जे.के. पाण्डेय, अनुज कुमार, रणधीर सिंह, आर.एस. छोकर एवं आर.के. शर्मा	11
3.	**कम लागत से गेहूँ की उत्तम खेती** एन.बी. सिंह, वाई.पी. सिंह, राजवीर सिंह, पी.के. गुप्ता, जितेन्द्र कुमार, जावेद बहार खान एवं चारूल कंचन	16
4.	**हिमाचल में गेहूँ उत्पादन एवं उत्पादकता वृद्धि हेतु नवीनतम प्रौद्योगिकी** मधु पटियाल, धर्मपाल एवं जगदीश कुमार	20
5.	**गुणवत्तायुक्त अधिक पैदावार देने वाली गेहूँ की नवीन प्रजाति के 1006** एन.बी. सिंह, वाई.पी. सिंह, चारूल कंचन, जावेद बहार खान, राजवीर सिंह, पी.के. गुप्ता, जितेन्द्र कुमार एवं ज्योत्सना	26
6.	**जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में खेती** सीमा सेपट व नवल सेपट	29
7.	**उच्च उत्पादकता के लिए जौ की नवीन किस्में** विष्णु कुमार, जोगेन्द्र सिंह, दिनेश कुमार एवं ए.एस. खर्ब	35
8.	**जौ एवं जई महत्त्वपूर्ण स्वास्थ्यवर्धक फसलें** विष्णु कुमार, दिनेश कुमार, जोगेन्द्र सिंह, आर. सेल्वाकुमार एवं ए.एस. खर्ब	37
9.	**समन्वित कृषि प्रणाली द्वारा अधिक आय अर्जन** रीतिका चौधरी, गिरीश चंद्र पाण्डेय, स्वाती वर्मा एवं ममृथा एच.एम.	39
10.	**स्थायी कृषि हेतु पानी की उपयोग क्षमता में सुधार** ममता काजला, विनय कुमार यादव, आर.एस. छोकर, आर.के. शर्मा एवं अनुज कुमार	41
11.	**उन्नत सस्य क्रियाओं से फसलों में अधिक जल उपयोगी दक्षता** एस.के. गौरी, वी.के. यादव, ममता काजला, आर.के. शर्मा, आर.एस.छोकर, अनुज कुमार, एस.सी. गिल, एस.सी. त्रिपाठी, अनीता मीणा एवं ए.के. द्विवेदी	45
12.	**प्रसंस्कृत गेहूँ उत्पाद की गुणवत्ता पर प्रभाव एवं नियंत्रण** कीर्ति मणि त्रिपाठी एवं सुखदेव सिंह	49
13.	**रबी फसलों में समन्वित खरपतवार प्रबंधन** एस.आर. वर्मा, राजपाल मीना, हेमराज गुर्जर, एवं तारेश कुमार झा	52
14.	**रबी फसलों के लिए बीजोपचार** अनिता मीणा, रेखा मलिक, सोनिया श्योराण, राज पाल मीना, अनुज कुमार, आर.एस. छोकर एवं आर.के. शर्मा	67
15.	**अनाज फसलों में सूत्रकृमि प्रबंधन की आवश्यकता** मुजीबुर रहमान खान	71

16. सस्य क्रियाओं द्वारा कीट नियंत्रण–लागत कम, उत्पादन ज्यादा 81
आर.के. बैरवा, बी.एल.ढाका, एन.एल. मीणा, एवं राजपाल मीना

17. गेहूँ व जौ में कीट एवं व्याधि प्रबंधन 84
अशोक कुमार मीणा एवं एस. एल. गोदारा

18. जौ में समेकित कीट प्रबन्धन द्वारा उपज वृद्धि 90
विनय कुमार यादव, ममता काजला, एवं एस.के.गौरी

19. समन्वित रोग प्रबंधन से गेहूँ और जौ का उत्पादन बढ़ाये 93
आत्मानंद त्रिपाठी, राकेश रोशन एवं जे. के. पाण्डेय

20. गेहूँ एवं जौ में सूत्रकृमि प्रबंधन 93
हेमराज गुर्जर, एस.आर. वर्मा एवं राजपाल मीना

21. कृषिगत उत्पादन बढ़ाने हेतु जौ के रोगों एवं कीटों का प्रबन्धन 102
लालचन्द प्रसाद, अनंत मडकेमोहेकर, सतीश बोरनारे एवं रविन्द्र प्रसाद

22. मित्र फफूंद–ट्राईकोडर्मा 107
अनिता मीणा, अनुज कुमार, रेखा मलिक, सोनिया श्योराण, एच.एम. ममर्था, सुमन लता, एवं
जितेन्द्र कुमार

23. गेहूँ पैदा करने वाले किसानों की आय बढ़ाने के उपाय 109
कर्णम वेंकेटेश, ममर्था एच.एम., पंकज कुमार सिंह, एस.के. गौरी, गिरीश चंद पाण्डेय एवं एस के सिंह

24. जड़ वाली सब्जी फसलों का बीज उत्पादन द्वारा लाभार्जन 111
सुरेश चंद राणा एवं विनोद कुमार पंडिता

25. अधिक आय देती लोबिया की उन्नत खेती 115
संजय सिरोही, वी.के. पंडिता, पी.बी. सिंह एवं एस.सी. राणा

26. कृषि उत्पादन एवं आय बढ़ाने की नवीनतम व समसामयिक तकनीक 118
महेन्द्र सिंह कटियार

27. सफल फसलोत्पादान के मूल मंत्र 120
महावीर सिंह रोड

28. उन्नत खेती के तरीके 124
अनिल कुमार ठाकुर

29. स्थायी बेड पर मक्का एवं गेहूँ का फसल चक्र 125
विकास चौधरी

30. राजभाषा खण्ड
जल संचय 126
सुरेन्द्र कुमार और बालेन्द्र कुमार

गेहूँ तेरी व्यथा 127
पंकज कुमार सिंह

हिन्दी कार्यक्रमों की रिपोर्ट 128

अधिक आय हेतु गेहूँ उत्पादन बढ़ाने की उन्नत नवीनतम व समसामयिक तकनीकें

राम चरण मथुरिया, रोबिन गोगोई, वैभव कुमार सिंह व रश्मि अग्रवाल
पादप रोगविज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110012

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या का सबसे अधिक दबाव कृषि पर ही है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने अपने लगभग 109 वर्ष के इतिहास में इस देश की प्रगति में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता के बाद देश में गेहूँ, चावल, मक्का, जौ इत्यादि अनाज वाली फसलों के विकास में ऐतिहासिक उपलब्धियाँ हासिल कर हरित क्रान्ति का जन्म हुआ जिसके परिणामस्वरूप हम अनाज के आयातकर्ता के स्थान पर न केवल आत्मनिर्भर हुए वरन् कुछ कृषि जिन्सों के उत्पादन के मामले में हम विश्व में पहले या दूसरे स्थान पर हैं।

गेहूँ (*ट्रिटिकम ऐस्टीवम*) विश्व व्यापी खाद्यान्न फसल है। जो विश्व में लगभग 227 मिलियन हैक्टर क्षेत्र पर प्रतिवर्ष उगाई जाती है। यह फसल खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ पोषण सुरक्षा भी प्रदान करती है। गेहूँ विश्व के 94 देशों में लगभग 5 अरब से अधिक जनसंख्या के लिए भोजन में 21 प्रतिशत कैलोरी प्रदान करता है। बौने गेहूँ के आगमन के परिणामस्वरूप देश में हरित क्रान्ति का जन्म हुआ और गेहूँ के उत्पादन में हमारे देश ने ऐतिहासिक उपलब्धि हासिल की है। जिसकी ख्याति संसार भर में हुई है। इस वर्ष 2013–2014 में गेहूँ का उत्पादन 95.9 मिलियन टन हुआ है जो अभी तक का उच्च रिकार्ड रहा है। गेहूँ की उत्पादकता जो कि वर्ष 2004–05 में 2602 किलोग्राम/है. वो 2013–14 में 3140 किलोग्राम/हैक्टर तक बढ़ गई। गेहूँ की उत्पादकता में प्रमुख वृद्धि हरियाणा, पंजाब व उत्तर प्रदेश राज्यों में देखी गई है। गत वर्ष 2013–14 के आकड़ों के आधार पर भारत में गेहूँ का योगदान पूरे विश्व के क्षेत्रफल व उत्पादन में लगभग 13% का रहा है जो चीन की अपेक्षा कम परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका से अधिक था।

हमारे देश में गेहूँ की उपलब्धता 2013 में 75 किलोग्राम/व्यक्ति/वर्ष आंकी गई है वही चावल की उपलब्धता 85 किलोग्राम/व्यक्ति/वर्ष ही रह पायी है। गेहूँ में औसतन 11–12 प्रतिशत प्रोटीन होता है तथा गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए गेहूँ को दो प्रकार ट्रिटकम एस्टिवम (रोटी गेहूँ), मृदु गेहूँ व ट्रिटिकम डयूरम (कठिया गेहूँ), कठोर गेहूँ में विभाजित किया गया है। ट्रिटिकम एस्टिवम की खेती देश के सभी क्षेत्रों में की जाती है जबकि ड्यूरम की खेती पंजाब, मध्य भारत एवं डाइकोकम की खेती कर्नाटक में की जाती है।

देश में हरित क्रान्ति का जन्म 1970 के दशक के शुरूआत में गेहूँ की बौनी किस्मों के विकास से संभव हुआ जिसके फलस्वरूप भारत गेहूँ उत्पादन में स्वावलंबी बना। यद्यपि गेहूँ उत्पादन में हमारे देश का प्रमुख स्थान है लेकिन देश की बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए वर्ष 2050 में लगभग 110–120 मिलियन मिट्रिक टन के बीच गेहूँ की मांग का अनुमान लगाया गया है। इसके लिए गेहूँ की उन्नत व नवीनतम उत्पादन प्रौद्योगिकियों को अपनाने की परम आवश्यकता है। इन प्रौद्योगिकियों में गेहूँ की उन्नत प्रजातियों का चयन, बोने की विधियाँ, बीज, उर्वरक, पोषक तत्व प्रबंधन, जल प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण, कीट नियंत्रण, फसल संरक्षण आदि प्रमुख है। भारत में गेहूँ के अधिक उत्पादन के लिए उपयुक्त बीज, खाद एवं सिंचाई की उचित व्यवस्था एवं उनका उचित उपयोग होना अति आवश्यक है।

भौगोलिक दृष्टि से गेहूँ उत्पादन क्षेत्र को 6 विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। सारणी संख्या 1 में दिये गये कुछ खास किस्मों एवं आधुनिक तकनीकी को अपनाकर गेहूँ उत्पादन कम लागत में अधिकतम उत्पादन ले सकते हैं।

कम लागत में अधिक उपज लेने के लिये किसानों को ऊपर लिखित जानकारी के अतिरिक्त मिट्टी की

सारणी 1 भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए उन्नत प्रजातियां एवं उत्पादन परिस्थिति

क्षेत्र	उत्पादन परिस्थिति	उन्नत प्रजातियां
मध्य क्षेत्र	समय से बुवाई, सिंचित अवस्था एवं उच्च उर्वरता	जी डब्ल्यू 273, जी डब्ल्य 322, जी डब्ल्य 366, एच आई 1544, एच आई 8381, एच आई 8498, एच आई 8713, एम पी ओ 1215, एच आई 8697, जी डब्ल्यू 273
	समय से बुवाई, सिंचित अवस्था एवं मध्य उर्वरता	एम पी 3336, एम पी 1203, एम पी 4010, राज 4238, एच डी 2932, एच डी 2864, एच आई 1531, एच आई 8627
	समय से बुवाई, वर्षा, कम उर्वरता	एच आई 1500, एच आई 1531, एच आई 8627, एच डी 4687, एच डब्ल्यू 2004, अमर, एच डब्ल्यू 2004
	पछेती बुवाई, सिंचित अवस्था, मध्यम उर्वरता	एच डी 2932, एच डी 2864, एम पी 1203, एम पी 3336, एच पी 4010, राज 4238, एच डी 4672, एच आई 8627, एच आई 1531, जे डब्ल्यू एस 17
उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई, सिंचित अवस्था एवं उच्च उर्वरता	एच डी 2204, एच डी 2667, एच डी 2687, एच डी 3086, डी बी डब्ल्यू 88, डी पी डब्ल्यू 621–50, पी बी डब्ल्यू 550, पी जी डब्ल्यू 291, 317
	पछेती बुवाई, सिंचित अवस्था, मध्यम उर्वरता	एच डी 2270, एच डी 2285, एच डी 3059, डी बी डब्ल्यू 90, डी बी डब्ल्यू 71, डी बी डब्ल्यू 16, डब्ल्यू आर 544, पी बी डब्ल्यू 590, डब्ल्यू एच 1021, सोनालिका (एम–308)
	समय से बुवाई, बारानी, कम उर्वरता	सी 306, एच 2009, पी बी डब्ल्यू 644, पी बी डब्ल्यू 396, डब्ल्यू एच 1080, एच डी 3043
	लवणीय–क्षारीय मिट्टी	के आर एल 1–4, के आर एल 19, के आर एल 213, के आर एल 210, डब्ल्यू एच 157
उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई, सिंचित अवस्था एवं उच्च उर्वरता	डी बी डब्ल्यू 39, एच डी 2402, एच डी 2824, एच डी 2733, सी बी डब्ल्यू 38, एच पी 1102, एच पी 1739, 1761, के 307, एच यू डब्ल्यू 468, एच डब्ल्यू 1012
	समय से बुवाई, बारानी, कम उर्वरता	एम ए सी एस 6145, एच डी 2888
	पछेती बुवाई, सिंचित अवस्था, मध्यम उर्वरता	एच डी 2402, एच डी 2643, एच डी 2985, एच यू डब्ल्यू 234, डी बी डब्ल्यू 14, एन डब्ल्यू 1012, एन डब्ल्यू 1014, एन डब्ल्यू 2036, एच आई 1563
उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र	समय से बुवाई, सिंचित अवस्था, उच्च उर्वरता	एच पी डब्ल्यू 349, एच एस 240, एच एस 507, एच एस 542, वी एल 804, वी ए 907, वी ए 738
	समय से बुवाई, सिंचित अवस्था, मध्यम उर्वरता	एच एस 240, एच एस 420, एच एस 490, वी एल 892, वी एल 804, वी एल 907
	देर से बुवाई, बारानी अवस्था, कम उर्वरता	एच एस 490, एच एस 542, एच पी डब्ल्यू 251, वी एल 490, वी एल 829

	जल्दी बुवाई, वारनी अवस्था	वी एल 829, एच एस 829
	उच्च पर्वतीय क्षेत्र	वी एल 832, एच एस 373
प्रायद्वीपीय क्षेत्र	समय से बुवाई, सिंचित अवस्था, उच्च उर्वरता	जी डब्ल्यू 322, एच डी 2987, एच डी 4663, एम ए सी एस 6222, एम ए सी एस 2846, डी डी के 1001, डी डी के 1009, डी डी के 1029, एन आई ए डब्ल्यू 917, राज 4037, एच यू डब्ल्यू 510, यू एस 415, डी डी के 1025
	समय से बुवाई, वारानी अवस्था, कम उर्वरता	ए के डी डब्ल्यू 2997–16, एच डी 2781, 2987, के 9644, पी बी डब्ल्यू 596, एन आई ए डब्ल्यू 1415
	पछेती बुवाई, सिंचित अवस्था, मध्यम उर्वरता	एच डी 2932, एच डी 3090, एच डी 2833, ए के डब्ल्यू 4627, राज 4083, एच यू डब्ल्यू 510
दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र	समय से बुवाई, सिंचित अवस्था, उच्च उर्वरता	एच डी 2189, एच डी 2380, एच डी 4502, एच डब्ल्यू 1085, एच डब्ल्यू 1098, एच डब्ल्यू 2044, एच डब्ल्यू 5216, सी ओ डब्ल्यू 1 डी डब्ल्यू आर 1006
	समय से बुवाई, बारानी अवस्था, मध्यम उर्वरता	एम ए सी एस 1967, एन आई 5439, एन 59, एच डब्ल्यू 2005
	पिछेती बुवाई, सिंचित अवस्था	सोनालिका, एच डी 2501, एच डी 2610, एच आई 977

गुणवत्ता, सही प्रजाति का चुनाव तथा उन किस्मों के भौगोलिक परिस्थितियों एवं स्वास्थ्य की जानकारी भी परमावश्यक है। अकसर देखा गया है कि किसानों को गेहूँ उत्पादन की आधुनिक तकनीकों तथा किस्मों की जानकारी के अभाव में आज भी किसान पुरानी किस्में जैसे मालवीय 234, लोक–1, यूपी 262, एच डी 2329, एच डी 2285, सी 306 उगा रहे हैं। क्योंकि एक प्रजाति की प्रभावी आयु लगभग 6–7 वर्ष की ही होती है, इसके बाद वह प्रजाति कई प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाती है। लेकिन यदि प्रजाति अच्छी उपज दे रही है तो संकरण के द्वारा उसमें रोग रोधी जीन डालकर उस प्रजाति की उम्र बढ़ाई जा सकती है।

सस्य क्रियाऐं

भूमि का चुनाव एवं खेत की तैयारी

गेहूँ की अच्छी पैदावार लेने के लिये दोमट, मटियार दोमट मिट्टी जिसका पी एच मान 7–7.5, जल धारण एवं जल निकास की क्षमता अच्छी हो। लेकिन हल्की भूमि में भी पौधों को सन्तुलित मात्रा में खुराक वाली खाद देकर गेहूँ की अच्छी फसल ली जा सकती है। किसानो को चाहिए कि वे मिट्टी को भुरभुरी बनाने के लिये जुताई की नवीनतम तकनीकें जैसे; जीरो टिलेज का उपयोग न कर रहे हों तो कल्टीवेटर एवं डिस्क हेरो के लगातार प्रयोग से खेत की मिट्टी को अच्छी तरह से भुरभुरी कर लें। बुवाई से पहले की जाने वाली परेट (सिंचाई) से पूर्व तवेदार हल (डिस्क हैरो) से जोत कर पटेला चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। यदि मिट्टी में दीमक का प्रभाव है तो 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर के हिसाब से मिलाने से दीमक का प्रभाव खत्म हो जाता है।

बीज की मात्रा

गेहूँ के बीज के उचित अंकुरण के लिए स्वस्थ, साफ एवं खरपतवार रहित होना चाहिए। कटे–फटे एवं सिकुड़े बीज निकाल देना चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में समय से बुवाई के

लिए 100 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर, सिंचित अवस्था में देर से बुवाई के लिए 125 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर तथा क्षारीय मृदाओं के लिए 125 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर होनी चाहिए। यदि दानों का आकार छोटा या बड़ा हो, तो उसी अनुपात में बीज दर बढ़ाई या घटाई जा सकती है। हमेशा प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करना चाहिए और 3–4 साल बाद प्रजाति को बदल देना चाहिए।

बुआई का समय

मृदा की ऊपरी सतह में संरक्षित नमी प्रचुर मात्रा में होने पर गेहूँ की बुआई का समय 15 नवम्बर तक उपयुक्त है। सिंचित दशा में उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों में नवम्बर के प्रथम पखवाड़े में गेहूँ बोना चाहिए। लेकिन उत्तरी–पूर्वी भागों में नवम्बर के मध्य तक तथा पश्चिमी मैदानों में देर से बोने के लिये 15 दिसम्बर तक तथा उत्तरी–पूर्वी मैदानों में 25 दिसम्बर तक गेहूँ की बुआई कर सकते हैं।

बुआई की विधि

गेहूँ के बीज को सामान्यतया 15–23 सें.मी. की पंक्तियों की दूरी पर बोया जाता है। ये पंक्तियों की दूरी, मृदा की दशा, सिचाईयों की उपलब्धता एवं बोने के समय पर निर्भर करता है। समय एवं सिंचित अवस्था में पंक्तियों की दूरी 23 सें.मी. रखनी चाहिए तथा बीज को लगभग 5 सें.मी. गहरा बोना चाहिए। गेहूँ की अधिक पैदावार के लिये किसानो को नीचे दी गई विधियों को अपनी सुविधानुसार अपनाना चाहिए।

1. **सीड ड्रिल** : यह सबसे अच्छी विधि है। अतः जहाँ तक हो सके गेहूँ की बुआई सीड ड्रिल से करें परन्तु ध्यान रहे कि गेहूँ की बुआई 5 सें.मी. से अधिक गहराई पर ना करें।
2. **केरा विधि (देशी हल)** : केरा विधि से बुआई करना दूसरी अच्छी विधि है। इस विधि से खाद को पोरा से डालें और बीज को हल के पीछे कूड़ों में डालें। बाद में बीजों को पाटे से ढक दें।
3. **पोरा विधि** : पोरा विधि से बुआई करने के लिये बहुत पतले फाल वाला हल जिससे 20 से 22.5 से. मी. (8 से 9 इंच) कूड़ बनते हैं प्रयोग किया जाता है। परन्तु प्रयोग करते समय यह सावधानी रखें कि कूड़ की मिट्टी साथ वाली कूड़ में न गिरे क्योंकि इससे बीज जरूरत से ज्यादा गहराई पर पड़ जाएगा।
4. **रोटरी–टिल ड्रिल** : फसल अवशेषों को बिना साफ किये गेहूँ के बीज को बोने के लिए इस विधि को प्रयोग में लाया जाता है।

पोषक तत्व

गेहूँ की अधिक उपज लेने के लिए मृदा में पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, गंधक, जस्ता, मैंगनीज एवं बोरोन की संतुलित मात्रा में होनी आवश्यक है। लेकिन गेहूँ की लगातार फसल उगाने से इन आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा असंतुलित हो जाती है। ऐसी मृदा में अच्छी पैदावार के लिए उर्वरक तथा रासायनिक खादों की आवश्यकता होती है। अतः इन पोषक तत्वों की कमी को दूर करने का उत्तम तरीका समेकित पोषक तत्व प्रबंधन है जिसमें विभिन्न कार्बनिक स्रोत जैसे फसल अवशेष, हरी खाद, गोबर की खाद एवं विभिन्न प्रकार की कम्पोस्ट खादों को उर्वरकों के साथ दिया जाता है। ढैंचा की हरी खाद का प्रयोग यदि फसल के बोने से पहले किया जाए तो लगभग 50–60 कि. ग्रा. नाइट्रोजन की बचत की जा सकती है। धान–गेहूँ फसलचक्र में भी मूंग/लोबिया का समावेश करके मृदा की उर्वरता को बढ़ाया जा सकता है।

रासायनिक खाद

गेहूँ की लगातार फसल उगाने से मृदा में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश एवं अन्य आवश्यक तत्वों की कमी हो जाती है। अतः गेहूँ की अच्छी पैदावार लेने तथा उर्वरकों के संतुलित उपयोग के लिए मिट्टी परीक्षण करवाना आवश्यक है। क्योंकि उर्वरकों से भरपूर लाभ तब ही मिल पाता है जब उर्वरकों का उपयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर किया जाए। फिर भी जो किसान मिट्टी की जाँच न करा पाए, वे ध्यान रखें कि मृदा में नाइट्रोजन,

फास्फोरस एवं पोटाश की कमी को पूरा करने के लिए गेहूँ की फसल में रासायनिक खाद आवश्यक है। 120 किलोग्राम/है या 48 किलोग्राम/एकड़ जिसके लिए यूरिया 260 किग्रा./हैक्टर या 105 किलो प्रति एकड़। फास्फोरस 50 किग्रा./हैक्टर या 20 किग्रा./एकड़। यह मात्रा 100 किलो प्रति हैक्टर या 40 किग्रा. प्रति एकड़ डी. ए. पी. द्वारा दी जा सकती है। परन्तु ध्यान रखें कि डी. ए. पी. में उपलब्ध नाइट्रोजन के अनुसार यूरिया की मात्रा कम कर लें।

डी. ए. पी., सिंगल सुपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा और यूरिया की आधी मात्रा बुआई के समय डालें। रासायनिक खाद के अलावा खेतों में 80–100 कुंतल गोबर एवं कम्पोस्ट खाद के प्रयोग से गेहूँ की फसल की उपज बहुत अच्छी होती है और मृदा की उर्वरता में भी वृद्धि होती है।

उर्वरक प्रयोग करते समय ध्यान रखने वाली मुख्य बातें

भारत के मुख्य गेहूँ उत्पादक प्रदेशों जैसे पंजाब, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश के कुछ इलाकों में गंधक की भी कमी देखी गई है। इसके अलावा कुछ सूक्ष्म तत्व जैसे जस्ता, मैंगनीज, बोरोन की कमी को भी पूरा करना अत्यन्त आवश्वयक है। इसके लिए मृदा परीक्षण करवाना भी आवश्यक है। लेकिन अधिकांश गेहूँ उत्पादकों को इस संबंध में जानकारी न होने के कारण मृदा परीक्षण नहीं करवाते हैं।

- साधरणतया सिंचित अवस्था एवं समय से बुआई की अवस्था में गेहूँ की फसल को 125 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि. ग्रा. फास्फोरस तथा 40–60 कि. ग्रा. पोटाश की मात्रा आवश्यक होती है।
- कम सिचाई एवं पछेती बुआई की अवस्था वाले क्षेत्रों में लगभग 80 कि. ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है।
- बारानी क्षेत्रों में तथा समय से बुआई की अवस्था में 40–50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20–25 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 20 कि. ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है।
- मृदा में नमी कम होने पर अथवा असिंचित अवस्था में उर्वरकों को कूड़ों में बीजों से 2–3 सें.मी. गहरा डालना चाहिए ताकि बाली आने से पहले वर्षा होने पर 20 कि. ग्रा./है. के हिसाब से नाइट्रोजन का छिड़काव करना चाहिए।
- सिंचाई की उचित मात्रा में प्रबंध की अवस्था में फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा बुआई से पहले मृदा में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा पहले दो सिंचाईयों के बाद बराबर मात्रा में फसलों में छिड़काव करना चाहिए।
- जिन खेतों में मैंगनीज की कमी हो वहाँ बुआई के समय 20 किलोग्राम मैंगनीज सल्फ़ेट उर्वरकों का प्रयोग करें।
- जहाँ वर्मीकम्पोस्ट 2.5 टन/है. प्रति वर्ष काम मे लिए हो वहां 60 किलोग्राम नाइट्रोजन, 10 किलोग्राम फास्फोरस व 15 किलोग्राम पोटाश का प्रयोग करें।

सिंचाई प्रबंधन/जल प्रबंधन

गेहूँ की फसल को इसके छजक (क्राउन) जड़ें निकलने की अवस्था से लेकर बालियों में दाना पकने तक सामान्यतया 4–6 सिचाईयों द्वारा 35–40 सें.मी. जल की आवश्यकता होती है। फसल में सिंचाई के लिये खेत के ढाल के अनुसार छोटी–छोटी क्यारी बना लेना चाहिए। सिंचाई लगभग 6 सें. मी. गहरी होनी चाहिए। फसल में सिंचाई इस प्रकार करनी चाहिये कि खेत में पानी 15–20 घण्टों से ज्यादा खड़ा न रहे। फसल बड़ी होने पर तेज हवा में सिंचाई न करें क्योंकि उससे फसल के गिरने का खतरा रहता है।

सिंचाई के लिए कुछ आवश्यक क्रान्तिक अवस्थायें एवं अवधि

1. पहली सिंचाई छजक (क्राउन) जड़े निकलने की अवस्था में गेहूँ के बोने के 20–25 दिन बार करनी चाहिए।

2. दूसरी सिंचाई कल्ले निकलने की अवस्था में बोने के 40–45 दिन बाद करनी चाहिए।
3. तीसरी सिंचाई पौध बढ़वार एवं बूट अवस्था में बोने के 60–65 दिन बाद करनी चाहिए।
4. चौथी सिंचाई फसल में फूल निकलते समय बोने के 80–85 दिन बाद करनी चाहिए।
5. पाँचवी सिंचाई बालियों में दूध बनने की अवस्था में बोने के 110–115 दिन बाद करनी चाहिए।
6. छठी सिंचाई यदि आवश्यकता हो तो दाने कड़े होने की अवस्था में बोने के 120–135 दिन बाद करनी चाहिए।

किसान अधिक उपज लेने के लिए कम से कम 5 सिंचाई अवश्य करें।

खरपतवार नियंत्रण

गेहूँ की फसल में मुख्यतया: चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे : बथुआ, प्याजी, जंगली पालक, हिरन खुटी, कृष्ण नील, जंगली गाजर, कंडाई आदि तथा संकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे : फेलिरिस माइनर (गेहूँ का मामा) एवं जंगली जई पाये जाते हैं। जिनको नियंत्रित करने का विधि नीचे सारणी 2 में दिये गये हैं।

सारणी 2 गेहूँ की फसल में विभिन्न खरपतवार एवं उनकी रोकथाम

खतपतवारों की रोकथाम	
यांत्रिक विधि	हाथ से खरपतवारों को निकालने हेतु खुरपी या कसोले का उपयोग करें
रासायनिक विधि	घास एवं अन्य खरपतवार बुआई के 3 दिन के अन्दर पेन्डिमेथीलीन (स्टाम्प) 3–5 लीटर/है. की दर से छिड़काव करें।
सभी खरपतवार के लिए	आइसोप्रोटूरान 1.5 मि. ग्रा. 500–600 लीटर पानी में प्रति है. की दर से बुआई 8–10 दिन बाद छिड़काव करें।
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	बुआई के 30–35 दिन बार 2 4 डी (35 प्रतिशत अम्ल तुल्य) का प्रयोग 1.5 कि. ग्रा. /है. की दर से करें।
संकरी पत्ती वाले खरपतवार	बुआई के 30–35 दिन बाद आसोबीर (75 प्रतिशत) 1 कि. ग्रा. या 0.75 (50 प्रतिशत) 1.5 कि. ग्रा./है. का प्रयोग करे या बुआई के 2–3 दिनों बाद पेनवीर (3 प्रतिशत) 3 किलो प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। रसायन को 600–700 लीटर पानी में घोलकर एक हैक्टर में छिड़काव करें।

यदि गेहूँ की फसल में फूल निकलते समय सिंचाई न की जाय तो 7.4 कुं/है. पैदावार कम होती है। इसी प्रकार कल्ले निकलते समय एवं फूल खिलते समय सिंचाई न करने पर 12.5 कुं/है. कल्ले निकलते समय, फूल निकलते समय तथा बालो में दूध बनने के समय सिंचाई न करने पर 23.2 कुं/है. कम होती है और यदि फसल को केवल पहली सिंचाई छजक (क्राउन) जड़ें निकलने पर की जाय तो 27.2 कुं/है. पैदावार कम होती है। अतः

कीड़ों की रोकथाम

गेहूँ की फसल में रस चूसने वाले कीट जैसे चेपा (एफिड) एवं माइट के प्रकोप से रोकथाम के लिए मेटासिस्टॉक्स 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़कें। पत्ती व तना काटने वाले कीटों की रोकथाम के लिए क्लोरवीर 3 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़कें। किन्ही दो छिड़कावों के बीच 15–20 दिनों का अन्तर अवश्य रखें।

रोग एवं नियंत्रण

गेहूँ की फसल में पादप रोग कारक जिनमें अजैविक कारक (खनिज तत्वों की कमी अथवा अधिकता होना, मौसम परिवर्तन, कम अथवा अधिक तापमान, प्रतिकूल ऑक्सीजन, वायु प्रदूषण) तथा जैविक कारक (फफूंद/कवक, जीवाणु, विषाणु, माईकोप्लाज्मा, सूत्रकृमि, कीट पतंगे एवं उच्च पादप परजीवी) उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। जिनमें से कुछ मुख्य रोगों के लक्षण एवं निदान का विवरण नीचे दिया गया है।

रतुआ

भारत में गेहूँ में लगने वाले तीनो प्रकार के रतुए रोग फसल की सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा बने हुए हैं। जो न केवल विश्व स्तरीय खाद्य संकट को जन्म दे रहे हैं बल्कि उत्पादों के आयात–निर्यात में बाधा बन कर कृषकों को आर्थिक नुकसान भी पहुँचा रहे हैं। समय–समय पर इस रोग ने अकाल एवं महामारी का रूप भी धारण किया है। जिसमें गेहूँ उत्पादन को काफी क्षति पहुँची है। जैसा कि सारणी संख्या 3 में दर्शाया गया है।

सारणी 3 भारत में रतुआ रोग का अकाल एवं महामारी रूप

वर्ष	रोग	फसल	क्षेत्र
1786	काला रतुआ	गेहूँ	जबलपुर
1946–47	काला रतुआ	गेहूँ	मध्य प्रदेश
1956–57	काला रतुआ	गेहूँ	बिहार
1972–73	काला रतुआ	गेहूँ	राजस्थान
1971–72	भूरा रतुआ	गेहूँ	उत्तर पश्चिमी भारत
1972–73	भूरा रतुआ	गेहूँ	उत्तर पश्चिमी भारत

पीला/धारीदार रतुआ (*पक्सीनिया स्ट्राइफोर्मिस ट्रिटिसाई*)

भारत में पीले रतुए का प्रकोप मुख्यतयाः उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र तथा उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों हिमालय के निचले क्षेत्र, बिहार एवं कुछ राजस्थान के क्षेत्र में होता है।

चित्र 1 पीला रतुआ

लक्षण एवं हानि

रोग के लक्षण पीले रंग के धारियों के रूप में पत्तियों पर दिखाई देते हैं, जिनमें पिसी हुई हल्दी जैसा पीला चूर्ण निकलता है। रोग से प्रभावित पत्तियां शीघ्र पककर सूख जाती है। इस रोग का प्रकोप अधिक ठंड और नमी वाले मौसम में बहुत ही संक्रामक होता है।

रोग प्रबंधन

- बुवाई के लिए अनुमोदित रतुआ निरोधक किस्में जैसे एच डी 2733, एच डी 2982 एवं डब्ल्यू एच 1021, डब्ल्यू एच 1105, डब्ल्यू एच 542, पी बी डब्ल्यू 550, पी डी डब्ल्यू 314, डी बी डब्ल्यू 71, डी बी डब्ल्यू 90 का चुनाव करें।
- रतुआ निरोधक किस्में 4–5 वर्ष के बाद रोगग्राही बन जाती हैं। ऐसी स्थिति रतुआ कवकों में परिवर्तन होने पर आती है इसलिए नवीनतम सहनशील किस्मों को प्रयोग में लायें।
- नाइट्रोजन प्रधान उर्वरकों की अत्यधिक मात्रा रतुआ रोगों को बढ़ाने में सहायक होती है। इसलिए

उर्वरकों के संतुलित अनुपात में पोटाश की उचित मात्रा का प्रयोग करें।

- इस बीमारी के प्रबंधन के लिए बेलीटॉन 25 ई. सी. अथवा टिल्ट 25 ई. सी. एवं फोलिकार 250 ई. सी. 0.1 प्रतिशत घोल (1 मि.ली/लीटर पानी) का छिड़काव 200 लीटर घोल प्रति हैक्टर के हिसाब से करें।

भूरा रतुआ/पत्ती रतुआ (*पक्सीनिया रिकोन्डीटा ट्रिटिसाई*)

इस रोग का प्रकोप पूरे भारत में जहाँ गेहूँ बोया जाता है देखने को मिलता है।

चित्र 2 भूरा रतुआ

लक्षण एवं हानि

पत्तियों पर चमकीले नारंगी रंग तथा आलपिन के सिर के समान (पिन हेड) धब्बे बनते हैं जो पत्तियों की सतह पर बिखरे रहते हैं तथा आपस में एक–दूसरे से मिले नहीं होते। इस रोग में धब्बों का आकार पीले रतुआ के धब्बों की अपेक्षा कुछ बड़ा होता है। यह रोग पीले रतुआ की तुलना में अधिक गर्म मौसम सहने में समर्थ होता है।

रोग प्रबंधन

- भूरा रतुआ निरोधक किस्में जैसे पी बी डब्ल्यू 373, पी बी डब्ल्यू 443, एच डी 2967, डी एल 784–3, राज 3765, जी डब्ल्यू 322, डी एल 803–3 एवं एम पी 3288 का चुनाव करें।
- टिल्ट 25 ई सी के 0.1 प्रतिशत घोल (1 मिली/लीटर पानी) का छिड़काव करें।

काला/तना रतुआ (*पक्सीनिया ग्रमिनिस ट्रिटिसाई*)

काले रतुएं का प्रकोप मुख्य रूप से मध्य एवं दक्षिण भारत में अधिक होता है। उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में इस रोग का प्रकोप बहुत कम व कहीं–कहीं दिखाई देता है।

चित्र 3 काला रतुआरोग प्रबंधन

लक्षण एवं हानि

इस रोग का प्रकोप तापमान बढ़ने पर पीले तथा भूरे रतुआ के बाद शुरू होता है। गहरे भूरे काले रंग के धब्बे तने, पत्तों और पत्तों के आवरणों पर दिखाई देते हैं जो बाद में फट जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पौधों का आकार घट जाता है।

रोग प्रबंधन

- अनुमोदित किस्में जैसे डब्ल्यू एच 1081, पी बी डब्ल्यू 373, पी बी डब्ल्यू 502, पी बी डब्ल्यू 550, एच डी 2967, एच डी 2931, राज 483, एच डी 2189 लगायें।
- फसल में बीमारी का पहला लक्षण प्रकट होते ही टिल्ट 25 ई. सी. के 0.1 प्रतिशत घोल (1 मि. ली. /लीटर पानी) या बेलिटॉन 0.25 प्रतिशत (2.5 ग्रा. /लीटर पानी) का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करें।

कण्डुवा रोग/खुली कंगियारी (*अस्टीलेगो सेजीटम ट्रिटिसाई*)

गेहूँ की फसल पर कण्डुवा रोग का प्रकोप समस्त देश में पाया जाता है। यद्यपि इसका प्रभाव आर्द्रता एवं अर्ध आर्द्रता वाले क्षेत्रों में होता है। इससे होने वाली हानि प्रति वर्ष कम या अधिक होती रहती है। उत्तरी भारत में वातावरण परिस्थितियां अनूकूल होने के कारण इस रोग उसका प्रभाव अधिक जाया जाता है।

चित्र 4 कण्डुवा रोग

लक्षण एवं हानि

इस रोग से प्रभावित पौधों का सम्पूर्ण पुष्पक्रम, कवक में क्लेमाइडोस्पोर्स से बने काले पाउडर में परिवर्तित हो जाता है जिससे रोग ग्रसित पौधे काली बालियां पैदा करते हैं। रोगी पौधों की बालियां काले चूर्ण का रूप ले लेती हैं और उन में दानें नहीं बनते हैं। बाद में काला चूर्ण हवा में उड़ जाता है और केवल डंडी रह जाती है। कभी–कभी ऐसी बालियां भी बनती है, जो केवल आंशिक रूप से काले चूर्ण में बदल जाती हैं।

रोग प्रबंधन

- बिजाई से पहले बीज का उपचार फफूंदनाशक रसायन जैसे विटावैक्स अथवा बावस्टीन 50 डब्ल्यू पी 2.5 ग्रा. अथवा रैक्सील 1 ग्रा./कि. ग्रा. बीज की दर से करके बोएँ।
- रोगग्रस्त बालियों को निकाल कर जला दें।

पहाड़ी बंट (*टिलेसिया केरिज एवं टिलेशिया फोइटिडा*)

लक्षण एवं हानि

रोगग्रस्त पौधों की बालियों के दानों से काला चिपचिपा लेई सा पदार्थ निकलता है। दाने पकने पर काला पदार्थ चूर्ण में बदल जाता है। रोगी दानों से प्रायः सड़ी मछली (ट्राईमिथाईल अमीन) जैसी दुर्गन्ध आती है जो बालियां निकलने पर यह रोग आसानी से पहचाना जा सकता है। रोगी बालियां देखने में खुली–खुली दिखाई पड़ती है।

रोग प्रबंधन

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- बीज को विटावैक्स अथवा बैवीस्टीन 2.5 ग्रा./कि. ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

करनाल बंट (*निओवोसिया इण्डिका*)

करनाल बंट का प्रकोप भारत में हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, जम्मू, मध्य–प्रदेश, बिहार एवं पश्चिम बंगाल में पाया जाता है। इस रोग का प्रकोप भारत के अलावा पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल, इराक, इरान, मैक्सिको, एरिजॉना (कैलिफोर्निया) तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी एवं दक्षिणी राज्यों तक फैल गया है।

चित्र 5 करनाल बंट

लक्षण एवं हानि

पौधों की किसी–किसी बाली के कुछ दाने पर आंशिक रूप से संक्रमण होता है जो काले पाउडर के रूप में टिलियोस्पोर्स पैदा करते हैं। किन्हीं–किन्हीं दानों पर इस रोग का प्रकोप होता है, बालियां पकते समय बाहरी तुष फैल जाते हैं एवं भीतरी तुषों का भी विस्तार हो जाता है। रोगग्रस्त दाने आंशिक रूप से काले चूर्ण में बदल जाते हैं। संक्रमित गेहूँ के बीज से सड़ी हुई मछली की बदबू आती है।

रोग प्रबंधन

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- बुवाई के समय करनाल बंट निरोधक किस्मों जैसे एच. डी. 29, एच. डी. 30, एच. पी. 1531, एच. पी. टी 6, एच. डी. 2747, राज 3777, राज 3765, पी.बी.डब्ल्यू. 236 का चुनाव करें।
- बीज का उपचार फफूंदीनाशक रसायन जैसे; विटावैक्स अथवा बाविस्टीन/थीरम 2.5 ग्रा./कि. ग्रा. बीज की दर से करें।
- गेहूँ की फसल में ट्राइकोडर्मा विरिडी 5 ग्रा. प्रति लीटर पानी की दर से पहला छिड़काव झंडे पत्ते की अवस्था में तथा दूसरा छिड़काव टिल्ट 25 ई. सी. 1 मि. प्रति लीटर पानी की दर से 50 प्रतिशत बालियां निकलते समय करें।

ध्वज कंड (*यूरोसिसटिस एग्रोपाइराई*)

लक्षण एवं हानि

इस रोग की पत्तियों पर लम्बी काली धारियां शिराओं के समान्तर बनती हैं। पत्तियां ऐठ जाती हैं और ध्वज पत्ती काली होकर मुरझा जाती है। ऐसी पत्तियां शीघ्र ही सूख जाती हैं। प्रायः रोगग्रस्त पौधों की बालियों में दाने नही बनते हैं।

रोग प्रबंधन

- देरी से बिजाई न करें।
- बीज को वाविस्टीन 2.5 ग्रा. प्रति कि. ग्रा बीज की दर से उपचारित करें।
- जिन खेतों में बीमारी का प्रकोप होता है, वहां बिजाई के तुरन्त बाद सिंचाई करें।
- रोगग्रस्त पौधों को निकाल कर जला दें।

चूर्णिल आसिता (*इरीसायफी ग्रेमिमिस ट्रिटिसाई*)

लक्षण एवं हानि

इस रोग के लक्षण पत्तियों, तने, आच्छद एवं बालियों पर सलेटीपन लिए सफेद चूर्ण के साथ दिखाई पड़ते हैं। रोग से प्रभावित पौधों पर फरवरी माह के शुरू में पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद तथा भूरे रंग की फफूंद दिखाई पड़ती है, परन्तु बाद में इनके चारो ओर सफेद आटे जैसा चूर्ण समूह फैल जाता है। अनुकूल अवस्था में इस प्रकार का चूर्ण समूह तने और बालियों पर भी दिखाई देते हैं।

रोग प्रबंधन

- फसल पर रोग के लक्षण आने पर कैराथेन 1/2 मि. ली पानी या वाविस्टीन 1 ग्रा. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करें।

गेहूँ की सतही बुआईः लाभकारी एवं पर्यावरण हितैषी तकनीक

जे.के. पाण्डेय, अनुज कुमार, रणधीर सिंह, आर.एस.छोकर एवं आर.के. शर्मा

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

पूर्वोत्तर सिंधु–गंगा मैदानी क्षेत्र में धान–गेहूँ सबसे महत्वपूर्ण फसल–चक्र है। मृदा में अत्यधिक नमी का रहना इस क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं में से एक है। इस समस्या का मुख्य कारण अत्यधिक वर्षा का होना, जमीन/खेत की सतह का नीचे होना एवं जल निकास की कमी आदि है। अधिक जल भराव की वजह से या तो खेत खाली रह जाता है या बुआई बहुत देर से होती है। जिसकी वजह से समय पर गेहूँ की खेती कर पाना बहुत मुश्किल है और यदि किसान काफी विलंब से बुआई करता है तो उत्पादन में कमी आती है। ऐसी स्थिति में ऐसी प्रक्रिया/कृषि प्रणाली होनी चाहिए जिससे हमें बुआई में देर भी न हो तथा मृदा में उपलब्ध नमी का समूचित उपयोग भी हो। इसके लिए सतही बुआई एक परंपरागत तकनीक है जिसमें किसान गेहूँ, दलहन एवं अन्य फसलों को भारत के पूर्वी इलाके में सदियों से खेती करते आ रहे हैं। गेहूँ का बीज धान के कटाई से पहले खड़ी फसल में छीटा मारकर बुआई करते हैं (रीले क्रापिंग भी कहते हैं) या धान की कटाई के बाद बीज बोया जाता है। इस विधि को **"सतही बुआई"** कहते हैं। यह एक साधारण एवं व्यवहारिक शून्य जुताई तकनीक है–जिसमें गेहूँ की बुआई खेत को बगैर तैयार किए की जाती है।

एक अनुमान के अनुसार दक्षिण एशिया में 16 मिलियन हैक्टर जमीन का सतह नीचे है जिसमें पूर्वोत्तर भारत के राज्य; बिहार, पश्चिम बंगाल एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश को मिलाकर भारत में लगभग 60 प्रतिशत (9.7 मिलियन है.) नीचली भूमि है।

इन क्षेत्रों के अलावा जहाँ कहीं भी ऐसी भूमि है जिसमें पानी का निकास अच्छा नहीं है, मिट्टी की संरचना महीन है एवं खेत में पानी भरा रहता है या अधिक नमी रहती है जिसके वजह से खेत की तैयारी नहीं की जा सकती है। यदि किसी प्रकार से जुताई होती भी है तो खेत में बड़े–बड़े ढेले बन जाते हैं और गेहूँ की बुआई संभव नहीं हो पाती। इस तरह के खेतों में गेहूँ की सतही बुआई एक उत्तम एवं सफल तकनीक साबित हो सकती है। इस विधि की सफलता के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात बुआई के समय का चयन है। बुआई करते समय खेत में नमी की मात्रा न बहुत ज्यादा हो और न कम। नमी की कमी होगी तो अंकुरण कम होगा और आवश्यकता से अधिक नमी (पानी खड़ा) होने की स्थिति में बीज सड़ने लगता है। नमी वाले मृदा में पौधे का जड़ आसानी से नीचे की ओर बढ़ता है। नमी के कारण अलग से सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती और पौधे का जड़ मिट्टी के सतह को भेदकर आसानी से नीचे पहुंचती है। ऐसी स्थिति में जड़ जमीन के ऊपरी सतह के सूखने से पहले अंदर चली जाती है, उसके बाद जड़ जल के सतह का अनुसरण करते हुए नीचे की ओर तक बढ़ता है। इसमें खेत के तैयारी पर होने वाले समय व ईंधन खर्च की बचत हो जाती है। साथ ही डीजल का प्रयोग नहीं होने की वजह से प्रदूषण भी नहीं फैलता है।

पूर्वोत्तर भारत में धान के कटाई के बाद, खेतों में उपलब्ध नमी का सदुपयोग करते हुए कम अवधि की दलहन वाली फसलें भी ली जा सकती हैं। जिससे धान–गेहूँ फसल–चक्र में विविधता आ सकती है साथ ही मृदा के उर्वराशक्ति में भी सुधार हो सकता है।

वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि पूर्वोत्तर भारत की नीचली जमीन में सतही बुआई तकनकी को आधुनिक तकनीक ज्ञान के साथ जोड़कर किसानों को अपनाना चाहिए। इस तकनीक को अपनाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है;

सतही बुआई कैसे करें

बुआई के लिए खेतों में नमी का ध्यान रखते हुए 8–10 घंटे तक गेहूँ के बीज को पानी में भिगोकर 10–12 घंटे गिली बोरी में ढक कर रखें उसके बाद ही उसकी बुआई करें क्योंकि अंकुरित बीज आसानी से एवं समान रुप से अंकुरित होता है। यदि सूखा बीज का प्रयोग करना हो तो दोपहर के बाद खेतों में बिखेरना चाहिए जिससे कि रात के समय में बीज आसानी से नमी को प्राप्त कर सके। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब तक गेहूँ के पौधे जड़ न पकड़ ले भूमि में नमी रहना चाहिए तथा खेत में पानी खड़ा नहीं होना चाहिए।

अगर इस विधि में पंक्ति में बुआई करना चाहते हैं तो हस्त चालित ड्रम सीडर या कोई भी साधारण सीडर का उपयोग किया जा सकता है जो कि और भी लाभदायक रहेगा। ड्रम सीडर से बिजाई के लिए भिगोकर रखे या अकुंरण की शुरुआत वाले बीज का प्रयोग करें। ड्रम सीडर में बीज की मात्रा 3/4 हिस्से भरी होनी चाहिए। छिद्र का आकार फसल तथा बीज की मात्रा के अनुरुप रखें। फसल के जमाव तक बीज का पक्षियों से बचाव करें।

गेहूँ की किस्में

गेहूँ की प्रजाति का सही चयन अति आवश्यक है। इसमें वह प्रजाति जो शुरुआत में अधिक उपयुक्त नमी के लिए उपयुक्त हो उसका चुनाव करना चाहिए, वैसे लंबी गेहूँ की किस्में सी. 306 भी इसके लिए उपयुक्त है तथा बौनी प्रजातियों में पी.बी.डब्ल्यू. 343, यू.पी. 2338, डब्ल्यू.एच. 542 आदि इस स्थिति में अच्छी उपज देती हैं। इसके अलावा एच.डी. 2285, एन.डब्ल्यू. 5054, के 1006, डी.बी.डब्ल्यू. 39, सी.बी.डब्ल्यू. 38, एच.डी. 2824 एवं एच.डी. 2985, एच.आई. 1563, डी.बी.डब्ल्यू. 14 तथा डी.बी.डब्ल्यू. 88, एच.डी. 3086, एच.डी. 2967, डी.बी.डब्ल्यू. 90, डी.बी.डब्ल्यू. 71, डब्ल्यू.एच. 1124, एच.यू.डब्ल्यू. 234 भी सतही बुआई के लिए उपयुक्त पाई गई हैं।

बीज दर एवं बीजोपचार

गेहूँ की सतही बुआई के लिए 150 किलोग्राम प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है क्योंकि अच्छी पैदावार लेने के लिए पौधों की समुचित संख्या बनाये रखना अनिवार्य है।

बीज को वीटावैक्स (2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज) या रेक्सिल (1 ग्राम/कि.ग्रा. बीज से उपचारित करें। साथ ही गोबर का गाढ़ा घोल बनाकर उपचार करना आवश्यक है जिससे बीज जनित बिमारियों के साथ–साथ पक्षियों से भी बचाव हो सके।

उर्वरक की मात्रा व डालने का समय

सतही बुआई तकनीक से अच्छी उपज लेने के लिए बौनी किस्मों में 150 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस व 40 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है। एक तिहाई

नत्रजन तथा पूरा फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा बुआई के 10–12 दिन बाद डालनी चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा को दो बराबर हिस्सों में, चंदेरी जड़े निकलने की अवस्था (बुआई के 20–25 दिन बाद) और गांठ बनने की अवस्था पर (बुआई के 40–45 दिन बाद) डालनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

गेहूँ की सतही बुआई तकनीक में सिंचाई का समय एवं पानी की मात्रा एकदम अलग है। सबसे पहले बुआई उसी समय की जाती है जब खेती में पर्याप्त नमी रहती है एवं बुआई के 10–12 दिन बाद पर्याप्त नमी बनी रहनी चाहिए ताकि पौधे की जड़ भूमि में अच्छी तरह से पकड़ ले। इस समय एक और बात पर ध्यान आवश्यक है कि खेत में पानी एकत्रित नहीं होना चाहिए। पहली सिंचाई कल्लों के फुटाव पर दें तथा इसके बाद सिंचाई आवश्यकतानुसार दें। इस तकनीक में सिंचाई में कम पानी देते हैं ताकि पानी एकत्रित न होने पाये।

खरपतवार नियंत्रण

किसी भी विधि से बुआई करने पर खरपतवार का नियत्रंण एक ही जैसा है यानि कि इस तकनीक की भी उसी तरह से खरपतवार का नियंत्रण किया जाता है जिस प्रकार से अन्य बुआई की विधि में। धान की कटाई के बाद अगर बहुत खरपतवार हो तो बुआई से एक–दो दिन पहले एक लीटर ग्लाइफोसेट को 120 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ के दर से छिड़काव करना चाहिए। चौड़ी व संकरी पत्ती वाले खरपतवार को नियंत्रित करने के लिए आईसोप्रोट्यूरॉन (आईसोगार्ड 75 डब्ल्यू पी) 500 ग्राम प्रति एकड़ या पेन्डीमैथालीन (स्टॉम्प) 1250–1500 मि.ली. प्रति एकड़ या सल्फोसल्फयरॉन (लीडर/सफल/एसएफ 10) 13 ग्राम प्रति एकड़ या टोटल (सल्फोसल्फयरॉन+मेटसल्फ्यूरॉन) 16 ग्राम प्रति एकड़ के दर से छिड़काव करें। संकरी पत्ती के लिए क्लोडिनाफॉप (टोपिक/पॉइंट/झटका) का 160 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें। केवल चौड़ी पत्ती के लिए मेटसल्फ्यूरॉन (एलग्रीप) 8 ग्राम प्रति एकड़ के दर से छिड़काव करें।

- इन सभी खरपतवारनाशियों (पेन्डीमैथालीन को छोड़कर) का प्रयोग बुआई के 30–35 दिन बाद 120 लीटर पानी में/एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें। खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिए दवा को सही मात्रा में सही समय पर व सही तकनीक से स्प्रे करें। दवा को अदल–बदल कर उपयोग करें।
- शाकनाशी प्रतिरोधकता नियंत्रण के लिए ग्लाईफोसेट+सल्फासल्फ्यूरॉन को पहली सिंचाई से पहले उपयोग करें।
- जहाँ भी क्लोडिनाफॉप व सल्फासल्फ्यूरॉन से प्रतिरोधकता आ गई है वहां पेन्डीमैथालीन, एकार्ड प्लस और पिनोक्साडेन का उपयोग करें।
- अधिक असर के लिए सल्फोसल्फ्यूरॉन/सल्फोसल्फ्यूरॉन+मैटसल्फ्यूरान को पहली सिंचाई से पहले उपयोग करें।

फसल सुरक्षा

- अधिकतर किसान अपना ही बीज उगाते हैं अतः बीज का उपचार करना आवश्यक है। उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र में सतही बुआई होती है और भूरा रतुआ एवं पर्णीय झुलसा इस क्षेत्र में प्रमुख रोग हैं। अतः इनके प्रबंधन के लिए रोगरोधी किस्में जैसे; एच.यू.डब्ल्यू. 468, के 9107, एन.डब्ल्यू. 1012, के 8962, एन. डब्ल्यू. 1014 एवं डी.बी.डब्ल्यू. 14 के गेहूँ के बुआई में प्राथमिकता दें। बोई हुई फसल में यदि इन बिमारियों के लक्षण दिखाई दें तो टिल्ट (प्रोपीकॉनजोल) या फॉलिकर (टेबुकेनजोल) का एक मि.ली-दवा/लीटर पानी के दर से मिलाकर छिड़काव करें।
- हाल के वर्षों में गेहूँ की फसल में चेपा/माहू/लाही का प्रकोप देखने को मिला है। यह कीट पत्ता/फूल/फल से रस चूसकर उत्पादन को प्रभावित करता है। इस कीट का प्रकोप खेत के

किनारों से शुरु होता है और धीरे–धीरे खेत के अंदर की तरफ बढ़ता जाता है। जागरुक किसानों को इसके प्रकोप का पता तुरंत लग जाता है। इस कीट का पता चलते ही, खेत के चारों ओर 3–5 मीटर के पट्टी में इमीडाक्लोप्रीड (कॉनफीडोर 200 एस.एल.) का एक मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। यदि चेपा का प्रकोप पूरे खेत में फैल गया होतो 100 मि.ली. दवा का प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

- इयर कॉकल रोग बीज जनित है अतः बीज को बुआई से पहले गॉल मुक्त करना अतिआवश्यक है। इसके लिए गेहूँ के बीज को 2 से 5 प्रतिशत नमक के घोल में डुबाना चाहिए, गॉल से प्रभावित बीज इस घोल में पानी के ऊपर आ जाते हैं जिन्हें छान कर अलग कर लिया जाता है फिर बीज को अच्छी तरह से साफ पानी से धोकर सुखा लेना चाहिए और फिर बुआई करनी चाहिए।

- दीमक गेहूँ की फसल को जड़ से काट देती है और पूरा पौधा सूख जाता है। इसकी पहचान पौधों के सुखने से की जा सकती है। इसके प्रबंधन के लिए क्लोरपाईरिफॉस 4–5 मि.ली. प्रति किलोग्राम बीज के दर से बीजोपचार करें। अगर पहले दीमक का प्रकोप खड़ी फसल में नजर आए तो उपरोक्त दवा 1.5–2.0 ली./एकड़ मात्रा 20 किलोग्राम बालू या बारीक मिट्टी में 2–3 लीटर पानी के साथ मिलाकर खेत में बिखेरें।
- अगर खेत में चूहों का प्रकोप नजर आए तो उसके नियत्रंण के लिए 3 से 4 ग्राम जिंक फॉस्फाईड को एक किलोग्राम आटा एवं थोड़ा गुड़ व तेल के साथ मिलाकर छोटी–छोटी गोली बनाकर चूहों के बिलों के पास रखें।

सावधानी

किसी भी दवा का प्रयोग करने से पहले हाथ में प्लास्टिक का दस्ताना अवश्य पहने, प्रयोग के बाद हाथ को साबून से अच्छी तरह धो लें। दवा को बच्चों के पहुँच से हमेशा दूर रखें।

कटाई

जब दानों में नमी 20 प्रतिशत रह जाए तब फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। इन क्षेत्रों में ज्यादातर किसान गेहूँ की कटाई अभी भी हाथ से करते हैं। कटाई हमेशा सुबह के समय करें एवं बंडल बनाएं। अधिक पकने पर दाना झड़ने की संभवना अधिक होती है।

भंडारण

भंडारण से पहले अनाज को अच्छी तरह से सुखाना चाहिए। दानों में नमी की मात्रा 12 प्रतिशत या उससे थोड़ा कम भंडारण के लिए उपयुक्त होता है। भंडारण से पहले कोठिला या साईलों/भंडारगृह को अच्छी तरह साफ कर लें तथा कीड़ों से बचाने के लिए एल्यूमीनियम फॉस्फाईड की एक टिकिया लगभग 10 कुंतल अनाज के हिसाब से रखें।

इस तकनीक में कुछ आवश्यक ध्यान देने योग्य बातें

- बुआई के 10 दिन बाद तक खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी का होना अति आवश्यक है ताकि सुविधानजक ढंग से प्रारंभिक जड़ों का अच्छी तरह विकास हो सके तथा भूमि में जड़ें अपनी पकड़ बना सके। खेत में ज्यादा पानी एकत्र नहीं होना चाहिए।
- गेहूँ के उपचारित बीज को धान की कटाई के एक सप्ताह पहले या कटाई के उपरान्त शीघ्र बिखेरना चाहिए।
- दवा से उपचारित करने के साथ ही गोबर के गाढ़े घोल से भी बीज का उपचार करना चाहिए ताकि पक्षियों से बीज का बचाव हो सकें।

- बुआई के समय किसी भी प्रकार के उर्वरक का प्रयोग न करें। बुआई के 10–15 दिन बाद उर्वरक डालें। उर्वरक डालते समय खेत में पर्याप्त नमी अवश्य होना चाहिए।

इस तकनीक से लाभ

- **पर्यावरण सुरक्षा** : इस तकनीक से खेती करने पर कार्बन डाईऑक्साईड का उत्सर्जन शून्य हो जाता है। कार्बन डॉईऑक्साइड का उत्सर्जन ग्लोबल वार्मिंग का प्रमुख कारण है तथा एक अनुमान के अनुसार कुल वायु प्रदूषण का कृषि से भारत में लगभग 14 प्रतिशत उत्सर्जन होता हैं। धान की कटाई के बाद उसकी जड़ तथा कुछ मात्रा में अवशेष खेतों में रह जाता है जिससे जहां एक तरफ मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है वहीं, अन्य तकनीकों में उसे जलाने से वायु प्रदूषण बढ़ता है।
- **मृदा की उर्वरा शक्ति में सुधार** : इस विधि से बुआई करने से मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ और उसके ऊपर निर्भर लाभकारी सूक्ष्मजीवों की कार्य क्षमता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है जबकि परम्परागत बुआई के तकनीकों में खेत की बार–बार जुताई करने से लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में कमी आ जाती है। इस विधि से बुआई करने से कार्बन–नाईट्रोजन के अनुपात में भी सुधार होता है।
- **पानी व समय की बचत** : बुआई से पूर्व खेत की तैयारी के लिए पानी की आवश्यकता नहीं होती है। गेहूँ में पहली सिंचाई के बाद पौधों के पीला पड़ने की समस्या नहीं रहती है। बुआई के अन्य विधियों कि तुलना में इसमें समय कम लगता है।
- **शून्य जुताई खर्च** : खेतों की तैयारी में डीजल का खर्च नहीं होता है साथ ही मशीन के रख–रखाव व घिसाई पर भी कोई खर्च नहीं होता है। अतः बुआई पर कोई खर्च नहीं होने की वजह से किसानों का शुद्ध मुनाफा बढ़ जाता है और इससे छोटे एवं सीमांत किसान को काफी राहत मिलती है।
- **उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि** : गेहूँ का क्षेत्रफल बढ़ाने के साथ–साथ एक साल में दो फसल लेने का अवसर मिलता है तथा जो किसान धान–गेहूँ चक्र में विविधीकरण करना चाहते हैं, कम अवधि वाली मूंग की फसल लेकर तीसरी फसल भी ले सकते हैं। इससे कृषि का विविधीकरण, किसानों की आय में बढ़ोत्तरी तथा भूमि की उर्वरा शक्ति में भी वृद्धि होती है जिससे टिकाऊ खेती को बल मिलता है।

निष्कर्ष

देश के उन हिस्सों में जहाँ बरसात का पानी नवंबर–दिसम्बर तक भरा रहता है इसकी वजह से गेहूँ की बुआई नहीं हो पाती है और किसान सिर्फ एक ही फसल ले पाता है। ऐसे क्षेत्रों में सतही बुआई एक वैकल्पिक विधि है जिसे अपनाकर किसान जहाँ एक तरफ गेहूँ की फसल ले सकता है वही मूंग जैसी दलहनी फसल का समावेश कर विविधीकरण को अपना सकता है। इससे किसानों की आमदनी बढ़ेगी और कृषि का क्षेत्रफल भी बढ़ेगा। अतः सभी संबंधित संस्थाओं एवं विस्तार कार्यकर्ता को मिलाकर इन क्षेत्रों में इस लाभकारी एवं पर्यावरण हितैषी तकनीक को बढ़ावा देना चाहिए।

कम लागत से गेहूँ की उत्तम खेती

एन.बी. सिंह, वाई.पी. सिंह, राजवीर सिंह, पी.के. गुप्ता, जितेन्द्र कुमार,
जावेद बहार खान एवं चारूल कंचन
रबी सस्य अनुभाग, च.षे.आ. कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कानपुर–208002

कृषि क्षेत्र में देश ने पिछले चार दशकों में बहुत ही महत्वपूर्ण वृद्धि अंकित की है। स्वतन्त्रता प्राप्ति ने बाद वर्ष 1965 में गेहूँ का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता क्रमशः 134.2 लाख है., 123.0 लाख टन एवं 9.17 कु./है. रही थी जोकि वर्ष 2013–14 में बढ़कर क्रमशः 294 लाख है., 924.6 लाख टन एवं 31.4 कु./है. हो गयी है जो उन्नतशील प्रजातियों एवं नई तकनीकी का परिणाम है। इस महत्वपूर्ण उपलब्धि का श्रेय किसानों के अथक परिश्रम, उचित तकनीक, कारगर कृषि नीति, खाद, बीज की आपूर्ति, विस्तार कार्यकर्ताओं की लगन एवं कृषि वैज्ञानिकों के सतत् प्रयासों को दिया जा सकता है। इस कार्य में कृषि विश्वविद्यालयों का भी योगदान है। इस सब के बावजूद किसानों को सशक्त व आत्मनिर्भर बनाने के लिए खेती की लागत कम करना अति आवश्यक है। समय, श्रम, जल, उपयुक्त किस्मों का चयन, खेती की आधुनिक तकनीकी से तैयारी एवं उर्वरकों की बचत करके खेती की लागत कम की जा सकती है। निम्नलिखित तकनीकियों की सहायता से खेती की लागत कम करके प्रक्षेत्र की शुद्ध आय बढ़ायी जा सकती है।

आधुनिक तकनीकी से खेत की तैयारी

जुताई का मुख्य उद्देश्य मिट्टी को भुरभुरी बनाना है। कल्टीवेटर एवं डिस्क हैरो से लगातार जुताई कर खेत की अच्छी तैयारी की जाती है। लेकिन आजकल इस धारणा में काफी परिवर्तन आया है। नवीनतम संसाधन तकनीक जीरो टिलेज या टैक्टर चालित रोटावेटर द्वारा एक ही जुताई में खेत पूर्ण रूप से तैयार हो जाता है जिससे व्यय को कम करके उत्पादन एवं आय को बढ़ाया जा सकता है। इसको अपनाने से निम्न लाभ प्राप्त होते है,

- धान की कटाई के तुरन्त बाद नमी रहते गेहूँ की बुवाई की जाये तो पलेवा व जुताई से मुक्ति मिल जाती है।
- गेहूँ की छिटकवा विधि से जहाँ 140–160 कि.ग्रा./है. बीज का प्रयोग होता है वही सीड ड्रिल विधि में बीज दर 100–120 कि.ग्रा./है. होने से बीज की मात्रा की बचत होती है।
- नवीनतम तकनीकी उपयोग करने से उत्पादन लागत में लगभग प्रति है. 3000 से 3500 रूपये की बचत होती है।
- जब जुताई के बिना बीज बोया जाता है तो खरपतवार (गेहूँ का मामा) के बीज ऊपर नहीं आ पाते। जिससे खरपतवार में कमी होती है और उत्पादन में वृद्धि।
- बुवाई हेतु बीज सह–उर्वरक ड्रिल का प्रयोग करना चाहिए जो बीज एवं उर्वरक दोनो की उपयोग क्षमता को बढाता है।
- जीरो टिलेज, सीड ड्रिल के माध्यम से देरी की दशा में खेत में बिना अतिरिक्त तैयारी किये बुवाई की जा सकती है। इससे न केवल खेत की तैयारी पर कम लागत आती है बल्कि उत्पादन अच्छा होता है।

लेजर लैण्ड लेवलिंग

इस तकनीक से खेत को समतल किया जाता है ताकि खेत के हर हिस्से में बराबर पानी पहुंचे। इससे 20 प्रतिशत पानी की बचत होती है कम मेड़ों और नालियों की आवश्यकता होने के कारण श्रमिक व्यय में कमी होती है तथा फसल उगाने के लिए 3–4 प्रतिशत अधिक श्रेत्र उपलब्ध हो जाता है। इस तकनीक से कम लागत आने के साथ–साथ 10 प्रतिशत तक पैदावार बढ़ जाती है।

गुणवत्तायुक्त प्रजातियाँ

प्रजाति का चयन क्षेत्रीय अनुकूलता एवं समय विशेष के अनुसार करना चाहिए। साथ ही साथ शुद्ध एवं प्रमाणित बीज से बुवाई करनी चाहिए तथा शुद्ध प्रमाणित बीज को कम से कम तीन वर्ष तक प्रयोग करके बदलना चाहिए जिससे कम लागत में उचित उत्पादन प्राप्त किया जा सके। चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय का कार्यक्षेत्र चतुर्थ (दक्षिण पश्चिमी अर्धशुष्क), पंचम (मध्य मैदानी) एवं षष्टम (बुन्देलखण्ड) अंचल में प्रमुख रूप से हैं। जिसमें आगरा, कानपुर, इलाहाबाद एवं लखनऊ मण्डल के 24 जिले सम्मिलित हैं। जहाँ सहभागी स्तर पर गेहूँ की खेती की जाती है।

बीजाई की स्थिति	बीज दर (कि.ग्रा./है.)
समय से बीजाई	100
देर से बीजाई	125
जीरो टिलेज	125
मेंड़ पर बीजाई	75

बीज की गहराई एवं दूरी

समय पर बीजाई करने पर कूड़ से कूड़ की दूरी 20.0 सेन्टीमीटर तथा बिलम्ब से बीजाई करने पर कूड़ से कूड़ की दूरी 18.0 सेन्टीमीटर रखें एवं बीज की गहरायी 4–5 सेन्टी मीटर रखें।

उत्पादन स्थिति	प्रजातियाँ
सिंचित, समय से (10 से 25 नवम्बर)	के 1006, के 9107, के 9006, के 0307, के 0402, के 0607, पी.बी.डब्ल्यू. 502, पी.बी.डब्ल्यू. 343, एच.डी. 2733, एच.डी. 2967, एन.डब्ल्यू.1012, पी.बी.डब्ल्यू. 550, डी.बी.डब्ल्यू. 39।
सिंचित, विलम्ब से (25 दिसम्बर तक)	एन.डब्ल्यू. 2036, के 9423, के 8020, के 9162, के 9533, के 7903, राज 3765, एन. डब्ल्यू. 1014, डी.बी.डब्ल्यू. 17, मालवीय 234, एच.आई. 1563
सिंचित, अति बिलम्ब से (25 दिसम्बर से 10 जनवरी)	के 7903, के 9423, एन.डब्ल्यू. 1014
असिंचित, समय से (अक्तूबर अन्त से 10 नवम्बर तक)	के 8027, के 8962, के 9644, के 9351, के 9644, एच.डी. 2888, के.9465
बुन्देलखण्ड हेतु	के.डी. 9851, डी.एल. 803, एच.आई. 8494, यू.पी. 2338, डब्ल्यू.एच. 147, जी. डब्ल्यू. 322

बीज की मात्रा एवं उपचार

बीज की मात्रा स्थिति के अनुसार उचित मात्रा में डालने पर लागत में कमी होती है तथा बीज दर (कि.ग्रा./है.) उत्पादन भी बढाता है।

उपचारित बीजों का ही उपयोग करें। वीटावैक्स या बाविस्टीन की 2.5 ग्राम मात्रा एक किलोग्राम बीज हेतु पर्याप्त है।

जल उपयोग दक्षता वाली कृषि तकनीकी

- मृदा अवशोषित नमी में अगेती व ताप सहनशील किस्मों की बुवाई।
- यदि दो सिंचाई उपलब्ध हो तो पहली सिंचाई बुवाई के 20–25 दिन बाद (ताजमूल अवस्था पर) तथा दूसरी सिंचाई बुवाई के 60–65 दिन बाद (पुष्पावस्था पर) करनी चाहिए।

- लम्बी पहिया (सरी) द्वारा सिंचाई न करके क्यारी विधि से सिंचाई करने पर लागत में कमी आती है तथा पानी की भी बचत होती है।
- सीमित सिंचाई में गेहूँ की अधिकतम पैदावार लेने के लिए सूखे में बुवाई करके तुरन्त हल्की सिंचाई करे, दूसरी सिंचाई 30–45 दिन बाद करें।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन

गेहूँ की अच्छी पैदावार लेने के लिए हरी खाद का प्रयोग करना चाहिए, जिससे भूमि में जीवाश्म की मात्रा बढ़ायी जा सके तथा उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर कूड़ों में करना चाहिए। बौने गेहूँ की अच्छी उपज के लिए मक्का, धान, ज्वार, बाजरा की खरीफ फसलों के बाद भूमि में 150:60:40 किग्रा. प्रति हैक्टर की दर से तथा विलम्ब की दशा में 80:40:30 क्रमशः नत्रजन, फास्फोरस तथा पोटाश का प्रयोग करना चाहिए। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सामान्य दशा में 120:60:40 किग्रा. नत्रजन, फास्फोरस तथा पोटाश एवं 30 किग्रा. गंधक प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग लाभकारी पाया गया है। जिन क्षेत्रों में डी.ए.पी. का प्रयोग लगातार किया जा रहा है उनमें 30 किग्रा. गंधक का प्रयोग लाभदायक रहेगा।

न्यूनतम भूपरिष्करण द्वारा गेहूँ की लाभदायक अगेती खेती

मध्य भारत में रबी फसल के लिए अधिकांश जल दिसम्बर अन्त से जनवरी के प्रथम सप्ताह तक सूख जाते है। ऐसी स्थिति में न्यूनतम भूपरिष्करण करके अगेती किस्मों की बुवाई करनी चाहिए ताकि कम लागत में अधिकतम लाभ कमाया जा सके।

ऊष्ण अवरोधी प्रजातियाँ

विकासशील देशों में लगभग 0.7 करोड़ हैक्टर गेहूँ की खेती अधिक उष्ण से प्रभावित होती है। भारत में 1.35 करोड़ है. क्षेत्रफल में इस समस्या का प्रभाव देखने को मिलता है। अध्ययनों से पता चला है कि जनवरी के महीने में प्रत्येक डिग्री तापमान की बढोत्तरी से 270 किग्रा./है. की दर से उपज की हानि होती है। ऐसा अनुमान है कि 1 डिग्री सेल्सियस तापमान बढोत्तरी से 4–5 मि.टन गेहूँ का उत्पादन कम हो सकता है, क्योंकि 30 डिग्री सेल्सियस से ऊपर का तापमान दाना भरते समय विपरीत रूप से प्रभावित करता है। सामान्य दशा में गेहूँ के दाने भरते समय उच्च तापमान 26–27 डिग्री सेल्सियस लगभग सात सप्ताह तक उपयुक्त पाया जाता है, परन्तु आज के बदलते मौसम में तापक्रम 45–46 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ता है जो दानों को अधिक प्रभावित करता है। कानपुर केन्द्र से विकसित निम्न प्रजातियाँ उपरोक्त दशा में भी अधिक पैदावार देती है।

हलना (के.7903) – इसकी पत्ती का तापमान (सी.टी.डी.) लगभग 4.5 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है।

नैना (के.9533) – इसकी पत्ती का तापमान (सी.टी.डी.) लगभग 4.4 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है।

गंगोत्री (के.9162) – इसकी पत्ती का तापमान (सी.टी.डी.) लगभग 4.6 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है।

इन्द्रा (के.8962) – इसकी पत्ती का तापमान (सी.टी.डी.) लगभग 4.8 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है।

गोल्डेन हलना (के.424) – इसकी पत्ती का तापमान (सी.टी.डी.) लगभग 4.4 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है।

मंदाकिनी (के.9351) – इसकी पत्ती का तापमान (सी.टी.डी) लगभग 4.5 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है।

इसके अलावा उपयुक्त गुण से सम्पन्न निम्नलिखित किस्मों का चयन करके विलम्ब की दशा में भी बुवाई करके लाभप्रद परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

किस्में

मालवीय 234, यू.पी. 2338, एच.डी. 2643, एच.पी. 1744, एन.डब्ल्यू. 1014, यू.पी. 2425, एच.पी. 1633, एन. डब्ल्यू. 2036, डी.बी.डब्ल्यू. 14, पी.बी.डब्ल्यू. 373।

गेहूँ की फसल से अधिक लाभ लेने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखें

- खेत की तैयारी के लिए रोटावेटर, हैरो आदि का प्रयोग किया जाय।
- गेहूँ के रोग नियंत्रण हेतु रसायनों का उपयोग कम से कम करें। रोगों की रोकथाम के लिऐ रोगरोधी किस्मों का उपयोग करें।
- साफ–सुथरी खेती करें तथा फसल में खरपतवारनाशकों का उपयोग कम से कम करें क्योकि जीवनाशी रसायन उत्पादन क्षमता को कम करते हैं।
- शुद्ध एवं प्रमाणित बीज की बुवाई बीज शोधन के बाद की जाय।
- प्रजाति का चयन क्षेत्रीय अनुकूलता एवं समय विशेष के अनुसार किया जाय।
- तीसरे वर्ष बीज अवश्य बदला जाय।
- कीड़े एवं बीमारी से बचाव हेतु विशेष ध्यान दिया जाय।
- जीवांश खादों का प्रयोग किया जाय।
- क्रान्तिक अवस्थाओं (ताजमूल अवस्था एवं पुष्पावस्था) पर सिंचाई समय से उचित विधि एवं मात्रा में की जाय।
- गेहूँसा का प्रकोप होने पर उसका नियंत्रण समय से किया जाय।

हिमाचल में गेहूँ एवं उत्पादकता वृद्धि हेतु नवीनतम प्रौद्योगिकी

मधु पटियाल, धर्मपाल एवं जगदीश कुमार

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (क्षेत्रीय केंद्र, टुटीकंडी), शिमला, हिमाचल प्रदेश–171004

हिमाचल में कृषि, प्रदेश की आय का प्रमुख ज़रिया है जिसका राज्य की अर्थव्यवस्था में अहम योगदान है। सन् 2011 जनगणना के अनुसार देश का हिमाचल ही ऐसा राज्य है जिसके 89.96 प्रतिशत लोग गाँव में रहते हैं, इसलिए खेती और उससे जुड़े व्यवसाय राज्य के 70 प्रतिशत लोगों को रोज़गार प्रदान करते हैं।

हिमाचल का भौगोलिक क्षेत्रफल 55.67 लाख हैक्टर है। जिसमें क्रियाशील भाग 9.68 लाख हैक्टर है और 87 प्रतिशत किसानों के पास खेती के लिए बहुत कम भूमि है। राज्य की कृषि योग्य भूमि में से 81.5 प्रतिशत असिंचित है और खेती की क्रियाएँ वर्षा पर बहुत हद तक निर्भर करती हैं।

हिमाचल ने गेहूँ के उत्पादन एवं उत्पादकता में पिछले पचास वर्षों में उल्लेखनीय प्रगति की है। हिमाचल में गेहूँ का उत्पादन 61.20 (1951–52) हज़ार टन से बढ़कर वर्ष 2013–2014 में 567.74 हज़ार टन हो गया है पर अभी भी गेहूँ की उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से 46 प्रतिशत कम है।

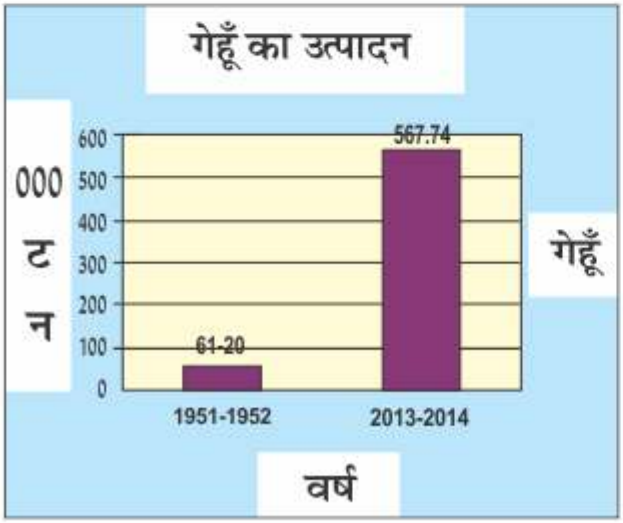

हिमाचल में गेहूँ उत्पादन एवं उत्पादकता वृद्धि हेतु नवीनतम प्रोद्योगिकी निम्न हैं–

नवीनतम प्रजातियों का चयन

प्रदेश में कई किसान अब भी अपने पुराने बचाए हुए बीजों का उपयोग करते हैं। प्रदेश में नई प्रजातियों के अंतर्गत क्षेत्र निम्न तालिका में दर्शाया गया है–

वर्ष	नई प्रजातियों के अन्तर्गत क्षेत्र एकड़/है.
2008–09	325,22
2009–10	328.00
2010–11	327.00
2011–12	330.35
2012–13	335.00
2013–14	345.00

हिमाचल एवं अन्य उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रों के लिए विभिन्न अनुसंधान संस्थानों द्वारा गेहूँ के सुधार हेतू शोध कार्य किए जा रहे हैं। इनमें भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (क्षेत्रीय केंद्र) शिमला, हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर एवं विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला, अल्मोड़ा प्रमुख हैं। इन संस्थाओं द्वारा प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए उपयुक्त प्रजातियाँ विकसित की हैं जिनका उपयोग करके पर्वतीय क्षेत्रों के किसान लाभ उठा सकते हैं। हिमाचल के कृषि–भौगोलिक क्षेत्रों को ऊंचाई अनुसार तीन से चार भागों में विभाजित किया गया है और इनके अनुसार ऐसी

गेहूँ की प्रजातियां विकसित की गई हैं जो रोग प्रतिरोधक तथा सिंचित एवं असिंचित अवस्थाओं के लिए अनुकूल हैं। किसान इन प्रजातियों का चयन सिंचाई की उपलब्धता तथा बुआई के समय के आधार पर निम्न तालिका के अनुसार कर सकते हैं।

बीज किसानो को वितरण किए जाएंगे। भारत सरकार द्वारा भी नवीनतम प्रजातियों के बीज को पर्याप्त मात्रा में किसानों तक पहुँचाना के लिए एक नवीन कार्यक्रम **"बीज ग्राम कार्यक्रम"** चलाया जा रहा है जिसके अंतर्गत

सिंचाई एवं बुआई की दशा	बुआई का समय	अनुमोदित प्रजातियां
निचले एवं मध्यम पर्वतीय क्षेत्र (समुद्र तल से 1900 मीटर तक की ऊंचाई)		
असिंचित दशा		
अगेती बुआई	1–10 अक्तूबर	वी एल 829
समय से बुआई	15–30 अक्तूबर	एच एस 507, वी एल 907, एच पी डब्लयू 349
पछेती बुआई	1–15 दिसम्बर	एच एस 490, वी एल 892
समय से बुआई (सिंचित दशा)	1–15 नवम्बर	एच एस 507, वी एल 907, एच पी डब्लयू 349
ऊंचे पर्वतीय क्षेत्र (समुद्र तल से 1900 मीटर से अधिक ऊंचाई)		
असिंचित दशा		
समय से बुआई	1–15 अक्तूबर	वी एल 832
अत्यधिक ऊंचे पर्वतीय क्षेत्र (गर्मी में बुआई)		
असिंचित एवं सिंचित दशा		
समय से बुआई	मार्च से मई	हिमगिरी (एच एस 375) मानसरोवर (केवल लद्दाख के लिए)

अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों का उपयोग

उच्च गुणवत्ता बीज, वृद्धि एवम् वितरण के अंतर्गत वर्ष 2014–15 में कृषि विभाग हिमाचल प्रदेश द्वारा 387.5 लाख रूपए का बजट प्रावधान किया है जिसके अंतर्गत बीज फार्म, बीज भंडारण, बीज परीक्षण एवं प्रमाणन और लगभग 90,000 कुंतल विभिन्न प्रजातियों के प्रमाणीत किसानों को प्रमाणित बीज तैयार करने का प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता दी जाती है और जिसका मूलमंत्र, नई प्रजातियों की आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में बीज का उचित मुल्य में आपूर्ति सुनिश्चित कराना है। अगर किसान अपने खेतों पर कुछ सावधानियाँ बरतें तो वह भी स्वस्थ बीज का उत्पादन कर सकते हैं, जैसे– बीज उत्पादन के लिये उस खेत का चयन करें जो स्वस्थ हो

और उसमें अच्छी फसल ली जा सके, क्योंकि गेहूँ एक स्वपरागण वाली फसल है अतः दो प्रजातियों के मध्य कम से कम 3–5 मीटर की दूरी अवश्य होनी चाहिये ऐसा करके किसान प्रजातियों की आनुवंशिक शुद्धता बरकरार रख सकेंगे। बीज उत्पादान के लिये कुछ आवश्यक शस्य क्रियाएँ जैसे; बीज की दर, कतार से कतार की दूरी, बीज की गहराई, खरपतवार नियंत्रण, बीज की अनुवानशिक शुद्धता को कायम रखने के लिय समय समय पर अवांछित पौधों को निकालना अति आवश्यक है ।

भूमि प्रबंधन

उर्वरक एक ऐसा कारक है जिसका उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । पचास के दशक में जब इनका प्रदर्शन और साठ के दशक के प्रारम्भ में जब हिमाचल में इनकी शुरूआत हुई थी तब से अब तक इनकी खपत लगातार बढ़ रही है। सन 1985–86 में इनकी खपत 23,666 टन थी जोकि अब 48,129 (2013–14) टन हो गई है। उर्वरकों का संतुलित उपयोग आवश्यक है। मुख्य पोषकतत्वों (नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश) के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी महत्व होता है। किसान भूमि परीक्षण के बाद मुख्य तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म तत्वों को भी भूमि में मिलाएं जिससे उपज वृद्धि के साथ–साथ पौधों का बिमारियों से भी बचाव होगा। फसल के विकास की महत्वपूर्ण अवस्थाओं में उर्वरकों की सही मात्रा का प्रयोग होना चाहिये। यह देखा गया है कि किसान सिफारिश की सीमाओं से कहीं ऊपर नत्रजन उर्वरकों का फसल में इस्तेमाल करते हैं। इन नत्रजन उर्वरकों के अंधाधुन्ध प्रयोग से न केवल भूमिगत जल प्रदूषित होता है परन्तु ओजोन परत, जो सूर्य की पराबैगनी किरणों से हमें बचाती है को भी बुरी तरह से प्रभावित करते हैं। ग्रीन सीकर का उपयोग कर समुचित मात्रा में नत्रजन का प्रयोग किया जा सकता है। इसी तरह सुपर (फास्फोरस) में सुपर घोलक बैक्टीरिया का उपयोग करके उसकी उपयोग क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

हिमाचल के किसान गेहूँ में उर्वरकों का निम्न तालिका का अनुसरण कर उत्पादन में वृद्धि ला सकते हैं।

दशा	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश
सिंचित	120 कि.ग्रा. /है. (9.6 कि.ग्रा. /बीघा)	60 कि.ग्रा. /है. (4.8 कि.ग्रा. /बीघा)	30 कि.ग्रा. /है. (2.4 कि.ग्रा. /बीघा)
असिंचित	80 कि.ग्र. /है. (6.4 कि.ग्रा. /बीघा)	40 कि.ग्र. /है. (3.2 कि.ग्रा. /बीघा)	40 कि.ग्रा. /है. (3.2 कि.ग्रा. /बीघा)

लगातार उत्पादन में अस्थिरता को देखते हुए, कृषि वैज्ञानिकों को चाहिए कि संतुलित उर्वरक जिसमें मुख्यः पोषक तत्वों के साथ साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा मृदा परिक्षण के अनुसार संस्तुत करें और इनके साथ–साथ जैविक उर्वरकों को भी साथ में सम्मिलित करें जिससे की उपज में वृद्धि तथा भूमि की उर्वराशक्ति को बनाए रखा जा सके। इसके लिए कृषि विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा मोबाईल मृदा जाँच प्रयोगशाला और मृदा स्वास्थ्य कार्ड सेवाओं की स्थापना की है जिसका लाभ किसान ले सकते हैं ।

उचित सिंचाई

हिमाचल जैसे राज्य में जहाँ खेती वर्षा पर निर्धारित है, पर्याप्त तथा समय पर जल की आपूर्ति उपज में अनियमिता को हटाने में काफ़ी महत्वपूर्ण पहल होगी। प्रदेश में सिंचाई का मुख्य स्रोत ''कूल'' है जो मौसम पर निर्भर करती है। उन्नत सिंचाई साधनों के इस्तेमाल से किसान अपने समय श्रम व पानी की बचत कर सकता है और इससे पौधों का विकास भी बेहतर होता है। कतार सिंचाई, फव्वारा सिंचाई, टपका सिंचाई आदि विधियों का प्रयोग, फसल की कतारों के बीच अवरोध परत (मल्च) आदि तकनीकों का उपयोग करना चाहिए। सीमित पानी

गेहूँ की फसल में जो संभव सिंचाईयां दी जा सके	फसल की बढ़ोत्तरी की विभन्नि अवस्थाएं जब सिंचाई दें				
	चंदेरी जड़े	दौजिया निकलने की अन्तिम अवस्था पर	गांठ बनने की अन्तिम अवस्था पर	बाली आने की अन्तिम अवस्था पर	दानो में दूध पड़ने पर
एक	✓				
दो	✓			✓	
तीन	✓		✓	✓	
चार	✓	✓	✓	✓	
पांच	✓	✓	✓	✓	✓

✓जब सिंचाई देनी है

की उपलब्धता के तहत वैकल्पिक फसल या फसल प्रणाली का प्रयोग करें। उपलब्ध सिंचाई क्षमता का सृजन और उसका सर्वोत्कृष्ट उपयोग फसल उत्पादन वृद्धि में एक महत्वपूर्ण पहलु होगा। हिमाचल के किसान सिंचाई की उपलब्धता के आधार पर प्रजातियों का चयन तालिका 1 के अनुसार कर सकते हैं। पानी की उपलब्धता के आधार पर गेहूँ की अच्छी उपज लेने के लिए निम्नलिखित सिंचाई की व्यवस्था लाभदायक सिद्ध होगी।

पौध संरक्षण

हिमाचल में गेहूँ की पैदावार में कमी के मुख्य बिन्दुओं में से एक है – कई प्रकार की बिमारियां, जिनमें रतुआ (पीला व भूरा); खुली कंगियारी; चूर्णी रोग (पाउडरी मिल्ड्यू) सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण है । इसलिए नुकसान से बचने के लिए इन रोगों का उचित समय पर रोकथाम करना अति आवश्यक है। इन रोगों के लक्षण व रोकथाम के उपाए इस प्रकार है;

रोग	लक्षण	रोकथाम
रतुआ	हिमाचल में मुख्यतः गेहूँ में दो तरह का रतुआ (पीला व भूरा) लगता है। पीले रतुए के फोफले पत्तों पर समानांतर कतारों में बनते हैं तथा अधिक प्रकोप होने पर बालियों पर भी पाए जाते हैं। भूरे रतुए में गोल व नारंगी रंग के धब्बे पत्तियों पर दिखाई देते हैं ।	रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे एच एस 507, एच एस 490, वी एल 907, वी एल 892 व एच पी डब्ल्यू 349 लगाएं । रोग के लक्षण दिखने पर प्रोपिकोनाज़ोल 25 ई सी (टिल्ट 25 ई सी) या टेबूकोनाज़ोल 25 ई सी (फोलिकर 250 ई सी) का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें।

खुली कंगियारी	रोगी पौधे में बालियां निकलने से पूर्व सबसे ऊपरी पत्ती पीली हो जाती है और बालियां पूरी तरह से काले पाउडर में परिवर्तित हो जाती हैं। यह काला पाउडर हवा द्वारा रोगी बालियों से उड़कर स्वस्थ बालियों पर पड़ता है जिससे अगले वर्ष इन बालियों को बीज के रुप में उपयोग करने से फसल रोग ग्रसित हो जाती है।	रोग प्रतिरोधी किस्में लगायें और बीज को वीटावैक्स/बैवीस्टीन (2 ग्राम/किलोग्राम बीज) से उपचारित करें ।
हिल बंट	दाने चिपचिपे बीजाणुओं से भरकर मछली जैसी तीव्र गंध देते हैं परन्तु दानो की आवरणों पर कोई प्रभाव नहीं होता। रोग ग्रसित पोधे थोड़े छोटे होते है पर उनका परिपक्वता से पहले पता नहीं चलता है। स्वस्थ पोधों के विपरीत संक्रमित पोधे पतले होते हैं और अधिक समय तक हरे रहते हैं।	रोग प्रतिरोधी किस्में लगाये और बीज को वीटावैक्स/बैवीस्टीन (2 ग्राम/किलोग्राम बीज) से उपचारित करें ।
चूर्णी रोग (पाउडरी मिल्ड्यू)	इस रोग में पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद या मटमैला चूर्ण सा बिखरा दिखाई देता है और अधिक प्रकोप पर बालियां भी ग्रसित हो जाती है। नमी व सिंचिति भागों में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। पाउडरी मिल्ड्यू के विकास और प्रसार के लिए प्रोत्साहित बिंदु है। अत्याधिक नमी या उच्च आर्द्रता, वायु परिसंचरण न होना व बहुत ज्यादा पोधे इकट्ठे उगना।	संक्रमित पौधों और पत्तियों को निकाल दें । अत्याधिक पौधों की छंटाई करें ताकि हवा परिसंचरण में सुधार हो। पौधो के ऊपर पानी मत दें । प्रोपिकोनाज़ोल 25 ई सी (टिल्ट 25 ई सी) का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें ।

कीट नियंत्रण के लिए समेकित नाशीजीव प्रबंधन (आई पी एम) प्रणाली को इस्तेमाल में लाए जिसमें जैविक, यांत्रिक और रासायनिक पद्धतियों से कीटों को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है। इसमें कीटों का सर्म्पूण उन्मूलन करने का प्रयास नहीं किया जाता अपितु उन्हें इस स्तर पर रखा जाता है कि वो नुकसान के न्यूनतम स्तर को पार न कर पायें। इस प्रणाली से कृषि पर खर्च भी कम होता है और पर्यावरण भी तुलात्मक रूप से सुरक्षित रहता है। इनके नियंत्रण के लिए स्वच्छ कृषि, परजीवी व शिकारी कीड़ों व कीड़ों को हानि पहुँचाने वाले फफूँदों व वायरस का प्रयोग किया जाता है। इनके अलावा नीम, हींग, लहसुन के उपयोग, अंतरवर्तीय फसलों, ट्रैप, प्रकाश प्रपंच आदि वैकलपिक साधनों के उपयोग से भी लागत कम और उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

हर फसल ऋतु में कीट, बीमारियाँ, खरपतवार आदि समस्याओं से निपटने के लिए विशेष प्रसार कर और क्षेत्र के जरूरतमंद किसानों को पौध संरक्षण रसायन व उपकरण प्रदान करके न सिर्फ उनकी सहायता की जा सकती है अपितु इससे उनकी जागरूकता भी बढ़ाई जा सकती है ।

सही समय पर कटाई, उचित छंटाई एवं भंडारण

अगर फसल को सही समय पर काटा जाये तो उससे किसान की सुखाने और संरक्षित करने की मेहनत और खर्च बच सकता है। साथ में फसल भी सही तरीके से पक जाती है जिसका अच्छा मूल्य मिल सकता है। किसान अपने उत्पाद को अलग अलग किस्मों में छांट कर बेचें। अनुचित भंडारण कारणों से उत्पाद की गुणवत्ता कम हो जाती है और फलस्वरूप अच्छा बाजार मूल्य नहीं मिल पता।

किसानों की सहभागिता

कृषि में नवीनता एवं परिवर्तन लाने और उत्पादकता वृद्धि में किसानों की सहभागिता की मुख्य भूमिका है। इसके लिए सहभागी पादप प्रजनन अपनाया जा सकता है जिसमें प्रजनक, किसान, उपभोक्ता, बाजार और नीति निर्माता मिलकर यह निर्धारित करते हैं कि किस तरह से हम कृषि से जुड़कर प्रगति की ओर प्रस्थान करें। कृषि से जुड़ी महिलाओं को प्रशिक्षण देकर उनकी कार्य कुशलता बढ़ाना हिमाचल में गेहूँ की उत्पादन क्षमता वृद्धि में नींव का पत्थर साबित होगा । किसानों के खेतों में अग्रिम प्रदर्शन, प्रशिक्षण व चयन द्वारा किसानों को जागरूक करना व साथ ही साथ नई तकनीकों को दर्शाना खेती में उत्पादकता की उपलब्धियों को छूने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

कृषि मशीनीकरण

हिमाचल कृषि मशीनीकरण के संदर्भ में यांत्रिक, जनशक्ति एवं कृषि औज़ार के दृष्टिकोण से काफ़ी पिछड़ा है। ऐसे में ढलानदार, छोटे एवं अनियमित खेत, उतार–चढ़ाव वाली भौगोलिक स्थिति, अभियंता एवं कुशल जनशक्ति का आभाव, उपकरणों के रख–रखाव, मरम्मत आदि में उच्च लागत आदि कारण स्थिति को और भी जटिल बनाते हैं। हिमाचल में खेती की लागत कम करने के लिए एवं नए उपकरण व मशीने प्रस्तावित करने के लिय कृषि विभाग ने तकनीकी कार्यकारी दल गठित किया है। महंगे कृषि उपकरणों को खरीदने की उपेक्षा किराये पर लेना एक बेहतर विकल्प है। इसमें किसान को कर्ज लेने की आवश्यकता भी नहीं होती है और खर्च भी कम ही रहता है।

उत्पादन वृद्धि सिर्फ प्रौद्योगिकी द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती इसके लिए भिन्न नीतियों और संस्थानों द्वारा परिवर्तन लाने होंगें। बहुत से देशो में कृषि की नीतियाँ एवम् विस्तार की दिशाएँ क्षेत्र में विवीधिता, ज्ञान, उपलब्ध संसाधन, बाज़ार विकास, ग्रामीण वित्तीय व्यवस्था आदि के आधार पर रखी जा रही है ।

योजनात्मक तरीके से कृषि नियोजित एवं क्रियान्वित कार्य करना भी काफी बचत करने और अच्छे निर्णय लेने में मदद करता है। कृषि भूमि और फसल की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उत्पादन की लागत को कम करने के लिए सुधार कृषि प्रथाओं का उपयोग करें और सरकार द्वारा समर्थन मूल्य को ध्यान में रखें । ऐसे ही कुछ परिवर्तन हिमाचल के किसानों के लिए वरदान साबित होंगे क्योंकि कृषि उनका महत्वपूर्ण व्यवसाय है और कृषि में उत्पादन वृद्धि का मतलब है उनका आर्थिक विकास और गरीबी उपशमन में एक पहल ।

गुणवत्तायुक्त अधिक पैदावार देने वाली गेहूँ की नवीन प्रजाति के 1006

एन. बी. सिंह, वाई. पी. सिंह, चारूल कंचन, जावेद बहार खान, राजवीर सिंह,
पी. के. गुप्ता, जितेन्द्र कुमार एवं ज्योत्सना
रबी सस्य अनुभाग, च.शे. आजाद कृषि एवं प्रौ. वि.वि., कानपुर – 208 002

गेहूँ का देश की खाद्यान्न सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान है। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगा कि दुनिया का भरण–पोषण करने में गेहूँ का सर्वाधिक महत्व है। विश्व के तकरीबन 43 देशों में गेहूँ की खेती मुख्य खाद्यान्न के रूप में की जाती है। विश्व में 230 मिलियन हैक्टर में गेहूँ एक बहुउपयोगी धान्य फसल के रूप में उगायी जाती है। भारत का विश्व में द्वितीय स्थान है। भारत में गेहूँ की खेती लगभग 290 लाख हैक्टर क्षेत्र में की जाती है और कुल खाद्यान्न उत्पादन में गेहूँ का योगदान करीब 36 प्रतिशत है। उल्लेखनीय है कि हरित क्रान्ति के पूर्व वर्ष 1964–65 में गेहूँ का उत्पादन मात्र 123 लाख टन था जो 2013–14 में बढ़कर 95.9 मिलियन टन हो गया है। गेहूँ का देश की खाद्यान्न एवं पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है क्योंकि गेहूँ में मानव हित के लिये सबसे ज्यादा पोषक तत्व पाये जाते हैं। गेहूँ में विटामिन बी–1, बी–2, बी–6 व ई पाया जाता है। अधिकतर गेहूँ के छिलके में सेल्यूलोज पाया जाता है। गेहूँ में पाचन क्रिया को तेज करने के एन्जाईम भी पाये जाते हैं।

गेहूँ में उपस्थित पोषक तत्वों का अध्ययन

पोषक तत्व	मात्रा
प्रोटीन (ग्राम/100 ग्राम)	11.80
वसा (ग्राम/100 ग्राम)	1.50
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	346
रेशा (ग्राम/100 ग्राम)	1.20
खनिज लवण (ग्राम/100 ग्राम)	1.50
कैल्शियम (मिली ग्राम/100 ग्राम)	41
लोहा (मिली ग्राम/100 ग्राम)	3.50

इसलिये गेहूँ की वांछित उपज के लिये वे सभी कारक जिस पर हम नियंत्रण पा सकते हैं उनका प्रबन्धन होना चाहिए। उत्तर प्रदेश में गेहूँ का उत्पादन जलवायु के आधार पर सभी जनपदों में किया जा रहा है। जलवायु परिवर्तन न केवल भारतवर्ष बल्कि सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक चुनौती के रूप में उभर कर आया है। भारत सहित विश्व के तमाम देश इस विभीषिका से त्रस्त हो रहे हैं तथा इससे बचने के लिए उपाय ढूंढ रहे हैं। मानव व कृषि जनित क्रियाओं के सम्मलित प्रभाव से वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रता अधिक बढ़ जाने के कारण इस शताब्दी के अन्त तक पृथ्वी की सतह का तापक्रम 1.8 से 4.0 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाने का संकेत दिख रहा है, जिसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभाव फसलोत्पादन, पशुपालन, भूमि, मछली पालन एवं कीटों पर पड़ने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है। भारत में बढ़ती जनसंख्या (1.25 अरब) के दबाव के कारण भरण–पोषण का दारोमदार कृषि एवं उपलब्ध अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर है।

उत्तर प्रदेश के 30 वर्षों के आधार पर (1980 से 2010 तक) औसत वर्षा में कुल 101.8 मि0मी0 (11.01 प्रतिशत) की कमी प्राप्त हुई। इससे स्पष्ट है कि इस क्षेत्र की औसत वर्षा में लगातार गिरावट पायी जा रही है। इसी प्रकार 1974–2009 के मध्य मानसून वर्षा आंकड़ों के आधार पर दक्षिणी–पश्चिमी मानसून (जून से सितम्बर) में पिछले 36 वर्षों में प्रति तीसरे या चौथे वर्ष जून एवं सितम्बर माह में वर्षा न्यूनतम या अतिन्यूनतम प्राप्त हुई है अर्थात् अधिकांशतः माह जून एवं सितम्बर सूखे का रहा है। वर्षा के मौसम में वर्ष 2001 से 2010 के मध्य सूखे की स्थिति रही इस क्षेत्र के तापमान में पिछले 40 वर्षों में अधिकतम तापमान 0.46 डिग्री सेल्सियस एवं न्यूनतम तापक्रम में 0.45 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि दर्ज हो चुकी

है। तापक्रम के लगातार बढ़ते क्रम से रबी की फसलों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसलिए फसल उत्पादन में नमी एवं तापक्रम के आंकड़ों का ध्यान रखकर चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय के गेहूँ वैज्ञानिकों ने **'के. 1006'** प्रजाति को विकसित किया है। इसमें दाना भरते समय अधिक तापमान सहन करने की क्षमता है। इस प्रजाति को 52वीं राष्ट्रीय अखिल भारतीय गेहूँ एवं जौ कार्यशाला जो सितम्बर 1 से 4, 2013 में चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानुपर में सम्पन्न हुयी, द्वारा चयनित किया गया। जिसका नोटीफिकेशन भारत सरकार द्वारा जून 2014 में किया गया।

के. 1006 प्रजाति समय से सिंचित दशा में, उच्च उर्वरकता वाली भूमि में पैदा होने वाली तथा उच्च गुणवत्तायुक्त प्रजाति है। इस प्रजाति की विशेषता है कि इसमें प्रचुर मात्रा में लोहा व जिंक उपलब्ध है जो मानव स्वास्थय के लिए उपयोगी है साथ ही यह प्रजाति भूरा रतुआ व झुलसा रोग के प्रति अवरोधी है।

प्रजाति के. 1006 के लक्षण निम्नवत है :–

1. जाति – गेहूँ (ट्रिटिकम एस्टिवम)
2. वंशावली पैतृक – पी.बी.डब्ल्यू. 343 / एच.पी.1731
3. प्रजनन की विधि – वंशावली विधि
4. उपयोगी क्षेत्र – उत्तर पूर्वी मैदानी भाग
5. उत्पादन की दशा – सिंचित, समय से

मुख्य लक्षण

1. द्विजीन युक्त प्रभावी बौनी प्रजाति है।
2. मध्य आकार की सफेद बाली।
3. गहरे हरे रंग की पत्तियां, सघन बराबर ऊँचाई युक्त किल्ले।
4. उपज प्रति हैक्टर – 55 से 60 कुन्तल
5. परिपक्वता अवधि – 123 दिन
6. पौधे की ऊँचाई – 86 सेमी0
7. बाली के लक्षण
   - अ. घनत्व – मध्यम
   - ब. लम्बाई – 10–12 सें.मी.
   - स. रंग – सफेद
   - द. बाली का रूप – सघन
   - ग. दानों का रंग – अम्बर (शरबती)
8. 1000 दानों का वजन – 42 ग्राम

क्षेत्र की प्रभावी दशा

अ. उत्तर प्रदेश में समय व सिंचित दशा में अधिक क्षेत्र में खेती की जाती है।

ब. के. 1006 प्रजाति भूरा रतुआ व झुलसा रोग के प्रति अवरोधी है।

स. इस क्षेत्र की प्रचलित प्रजाति पी.बी.डब्ल्यू. 343 में रतुआ रोग से ग्रसित होने के कारण उपज व गुणवत्ता में ह्रास हो रहा है जिसकी पूर्ति के. 1006 करेगी। यह गुणवत्तायुक्त प्रजाति है इसमें मुख्य अन्य प्रजातियों से अधिक गुण पाये जाते हैं, जो निम्नवत है :–

प्रचलित अन्य मुख्य प्रजातियाँ

	के. 1006	के.307	डी.बी. डब्ल्यू. 39	एच.डी. 2733	राज 4229	पी.बी. डब्ल्यू. 661
प्रोटीन प्रतिशत	12.2	12.4	12.6	12.8	12.4	11.0
ग्रेन अपीअरेन्स (अधिकतम 10)	6.5	6.2	6.3	6.3	6.1	6.3
हेक्टोलीटर वेट (कि.)	78.2	79.6	78.5	76.6	79.6	78.1
सेडीमेन्टेशन वैल्यू	33	37	42	40	37	44
ग्लूटीन डी–1	212	212	510	5.10	212	5.10
ग्लूटीन ए–1	2	2	2	6	2	2

ग्लूटीन बी–1	17.18	17.18	79	79	1718	7
ब्रेड, रोटी, बिस्कुट के लिए के. 1006 के गुण						
रोटी (अधिकतम स्कोर 10)	7.52	7.64	7.75	7.62	7.56	7.52
ब्रेड लोफ घनत्व (एम0एल0)	568	567	570	570	570	56.5
ब्रेड गुण (अधिकतम स्कोर 10)	6.91	6.87	6.91	6.94	6.92	6.80
दाने की कठोरता (कि.ग्रा.)	79	84	78	73	81	70
पोषक तत्व						
लोहा (पी.पी.एम.)	45.4	46.2	39.2	40.3	41.5	39.1
जिंक (पी.पी.एम.)	49.2	46.7	42.8	41.1	39.7	46.6

इस प्रजाति से अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए निम्न सस्य क्रियाएं उपयोगी हैं :–

1. अधिक पैदावार लेने के लिए उच्च उर्वरकता वाले खेत का चयन करें।
2. बुवाई 15 नवम्बर से 25 नवम्बर के मध्य करें तथा बीज की मात्रा 120 कि.ग्रा./है. रखें।
3. बुवाई करते समय पंक्तियों की दूरी 20 सें.मी. एवं बीज की गहराई 4–5 सें.मी. होनी चाहिए। बुवाई के पहले बीज का शोधन बाविस्टीन अथवा कार्बेन्डाजिम 2 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से प्रयोग करके बोयें।
4. अच्छी पैदावार के लिए 150 कि.ग्रा. नत्रजन तथा 60 कि.ग्रा. फास्फोरस व 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करनी चाहिए तथा बुवाई करते समय नत्रजन की आधी मात्रा व फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा डालें। शेष नत्रजन की आधी मात्रा पहली सिंचाई के बाद ओट आने पर छिड़काव करें।
5. अच्छी पैदावार के लिए पाँच सिंचाईयों की आवश्यकता होती है; पहली सिंचाई बुवाई के 20–25 दिन बाद ताजमूल अवस्था पर दूसरी सिंचाई बुवाई के 40–45 दिन बाद कल्ले निकलते समय, तीसरी सिंचाई बुवाई के 60–65 दिन बाद गांठ बनते समय, चौथी सिंचाई बुवाई के 80–85 दिन बाद फूल आने के पूर्व तथा पांचवी सिंचाई बुवाई के 100–105 दिन बाद दुग्धावस्था पर करनी चाहिए। पहला पानी बहुत की हल्का लगभग 5 से.मी. लगाये एवं अन्तिम पानी भी हल्का दें।

खरपतवार का नियंत्रण न होने से इसकी पैदावार पर बुरा प्रभाव पड़ता है। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के 30 से 35 दिन बाद निराई गुड़ाई करने से सर्वाधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन श्रमिक अनुपलब्धता की दशा में मैट्रीबुजीन नामक शाकनाशी को 175 ग्राम/है. की दर से 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर पहली सिंचाई के बाद ओट आने पर छिड़काव करने से खरपतवार का नियंत्रण हो जाता है एवं उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

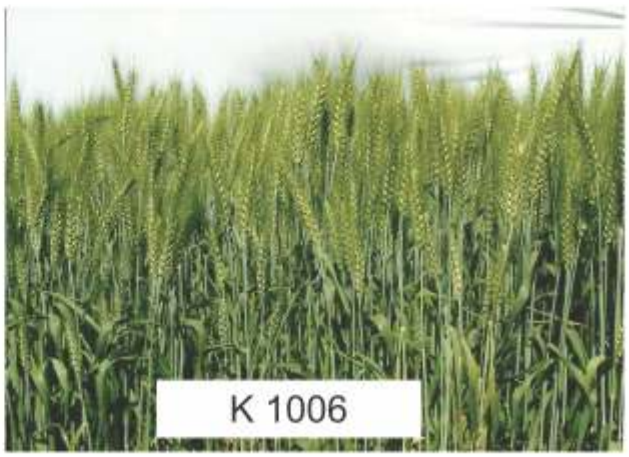

जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में खेती

सीमा सेपट[1] व नवल सेपट[2]

1. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012
2. रक्षा अनुसंधान और विकास संस्थान, नई दिल्ली–110054

भारत वर्ष में जहाँ अर्थव्यवस्था प्रणाली में मजबूती और विकास की दर में वृद्धि आई है वही दूसरी तरफ गरीबी और कुपोषण जैसी विकट समस्याएँ भी उभर कर आई है। भारत की कुल आबादी 27% हिस्सा 75 रुपये की प्रतिदिन आमदनी पर निर्भर है। वही दूसरी तरफ लगभग 21% आबादी कुपोषण की शिकार है। लगभग 8% बच्चे पांच साल की उम्र पार करने से पहले ही काल का ग्रास बन जाते हैं। अतः कुपोषण व भूखमरी जैसी समस्याओं से निजात के लिए आवश्यक है कि अधिक से अधिक खाद्यान्न व दलहनी फसलों के उत्पादन करके खाद्यान्न व पोषण सुरक्षा एवं संप्रभुता सुनिश्चित की जाए। इस समय यदि सही कदम नहीं उठाया गया तो इसके दूरगामी दुष्परिणामों से भारतीय कृषि व कृषक समुदाय को बचाना मुश्किल होगा। वातावरण समृद्ध तकनीकियों को इस समय अपनाने की अत्यधिक आवश्यकता है।

जलवायु परिवर्तन एक गंभीर विषय है। भारत कृषि प्रधान देश है व भारतीय कृषि मानसून पर आधारित है। जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव फसलों पर देखा जा सकता है। अनियमित वर्षा, सुखा, तापमान में अनियमित वृद्धि इस फसल की उपज अत्यधिक प्रभावित होती हुई देखी जा सकती है। भारत की कुल आबादी का 56% या इससे ज्यादा हिस्सा कृषि पर निर्भर है। जलवायु परिवर्तन के कुप्रभाव से सीधे–सीधे 30% से ज्यादा मध्यम व लघु वर्गीय किसान अधिक प्रभावित होगे। फसल बर्बाद होने से उनकी आय प्रभावित होगी और आय का कोई अन्य जरिया नहीं होने की वजह से स्थिति और भयानक होने की आशंका है। अर्थव्यवस्था की वृद्धि से प्राकृतिक ससांधनो जैसे जल, भूमि और मृदा पर अत्यधिक दबाव बढ़ता जा रहा है। एक अनुमान के अनुसार 2030 वर्ष तक तापमान लगभग 1.5 से 2.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है। ऐसा होने पर गेहूँ की फसल अंतस्थ तापमान से अत्यधिक प्रभावित होगी।

धान फसल अन्य फसलों जैसे की जौ, गेहूँ व मक्का की तुलना में 3.5 गुणा अत्यधिक पानी में उगायी जाती है। एक अनुमान के अनुसार भविष्य में धान को 150–200 सें. मी. और भी जल की आवश्यकता होगी। इस तरह भूमिगत जल पर काफी दबाव पड़ेगा। पंजाब, हरियाणा में धान की पराली को जलाने की समस्या है। पराली को जलाने से ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन हो रहा है जिससे वायु की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। मानव द्वारा कृषि से 10–15% तक ग्रीन हाऊस गैसों में मिथेन व नाईट्रस ऑक्साइड तक निष्कासित हो रही है। मृदा में कार्बनिक पदार्थ का ह्रास बढ़ता जा रहा है। अतः आवश्यक है कि परम्परागत कृषि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को उन्नत कृषि द्वारा निदान किया जाए। कृषि के द्वारा ही जलवायु परिवर्तन व मिटिगेशन किया जा सकता है। इस लेख में वातावरण समृद्धिकरण तकनीकियों की चर्चा की जा रही है। जिससे कृषि को अधिक समय तक टिकाऊ और लाभदायक बना सके।

वातावरण समृद्धिकरण कृषि

इसमें वह कृषि क्रियाएं सम्मिलित हैं जो उत्पादकता व आमदनी को बढ़ाएं व साथ ही बदलते वातावरण के परिवेश में भी टिकाऊ हो। परम्परागत कृषि में जहाँ वातावरण दूषित होता है वहीं वातावरण समृद्धिकरण कृषि में ग्रीन हाऊस गैस का उत्सर्जन कम होता हैं। यह वर्तमान में उपस्थित कार्बन को मृदा में संग्रहित करती है। जिससे ग्रीन हाऊस गैस के उत्सर्जन में कमी आती है। इस तरह से कृषि अधिक समय तक समुत्थानशील व टिकाऊ बनती जा रही है। इस तरह से कृषि अधिक समय तक समुत्थानशील व टिकाऊ बनती जा रही है। इससे दो क्रियाएं होती हैं ;

1 **न्यूनीकरण (मिटिगेशन)** – इसका मुख्य उद्देश्य मिथेन व नाईट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन में कमी लाना है। मृदा में ही कार्बन को संग्रहित करके मृदा का स्वास्थ्य सुधारा जाता है।

2 **अनुकूलन (एडेप्टेशन)**– उत्पादन प्रणाली को ही टिकाऊ बनाकर बदलते वातावरण के प्रभाव को कम करना इसका मुख्य उद्देश्य है। यह मृदा में कार्बन की मात्रा पोषक तत्व प्रबंधन व फसल विविधिकरण इत्यादि द्वारा किया जाता है।

वातावरण समृद्धिकरण कृषि : यह मुख्यतः पाँच सिद्धांतों पर आधारित है।

1 **जल का उचित प्रबंधन**– "यदि खेत का पानी खेत" जैसे नियम का पालन किया जाए और सही समय, सही मात्रा में जल का प्रबंधन किया जाए तो फसल की उत्पादकता बढ़ेगी । साथ ही में प्राकृतिक ससांधन का भी संरक्षण होगा। यह मुख्यतः भूमि समतलीकरण, ड्रिप सिंचाई, उभरी मेड़ बुआई, फसल विविधीकरण से किया जा सकता है।

• **लेजर द्वारा भूमि समतलीकरण**– यह ट्रैक्टर से चालित, लेजर द्वारा संचालित यंत्र है जिसके द्वारा समतल भूमि प्राप्त की जा सकती है (चित्र 1) । समतलीकरण से समान पानी का वितरण होता है। संसाधन संरक्षण संबंधी तकनीकी जैसे कि बिना जुताई की खेती या मेंड़ों पर बुआई के लिए सबसे जरूरी बात यह है कि खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए अन्यथा बुआई ठीक से नहीं हो पाती है। खाद व पानी भी सभी पौधों को समान रूप से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। लेजर विधि एक नई वैज्ञानिक तकनीक है जिसमें लेजर द्वारा खेत की मिट्टी को पूरी तरह समतल किया जाता है। समतल भूमि पर फसल उगाने का सबसे बड़ा फायदा पानी की बचत व अधिक फसल उत्पादन है। सिंचाई का पानी खेत के हर हिस्से में एक समान मात्रा में और सारे खेत में कम समय में फैल जाता है। धान की फसल के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है जिसमें सिंचाई जल की मात्रा लगभग आधी हो जाती है। आजकल किसानों द्वारा इस तकनीक में रूचि दिखायी जा रही है। इस मशीन की लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती जा रही है। किसानों के बीच यह मशीन 'कम्पयूटर' के नाम से प्रचलित है। यह मशीन काफी मंहगी है। परंतु छोटे व सीमांत किसानों की जरूरतों को पूरा करने के लिए ये आसानी से किराये पर उपलब्ध हो जाती है ।

चित्र 1 लेजर लेवलर

• **वैकल्पिक प्लवन व निकास जल प्रावधान** – धान में हर समय पानी कम जमाव को बना कर रखने के बदले वैकल्पिक प्लवन व निकास विधि अधिक उपयोगी पाई गई है। इस विधि में धान की क्रांतिक अवस्थाओं पर ही प्लवन किया जाता है। अन्य अवस्था पर खेत से पानी को निकाल दिया जाता है। इस तरह से उत्पादक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है व जल का बचाव हो जाता है। इस विधि से ग्लोबल वार्मिंग जैसे मिथेन गैस का उर्त्सजन भी कम होता है।

• **सीधी बुआई धान** – लगातार धान–गेहूँ फसल–चक्र से जल स्तर में निरंतर कमी, मृदा की संरचना व उर्वक दक्षता में ह्रास व गुल्ली–डंडा का गेहूँ में प्रकोप व साथ ही देर से बुआई होने पर गेहूँ की उपज में कमी देखी गई है। धान की सीधी बुआई वाली फसल की कटाई–उपरांत यदि गेहूँ की बुआई शून्य जुताई तकनीक द्वारा की जाती है तथा गेहूँ की कटाई के तुरंत बाद गर्मियों में मूंग की फसल ली जाती है तो सभी फसलों की

पैदावार और शुद्ध लाभ परंपरागत विधि से धान–गेहूँ के फसल–चक्र की अपेक्षा अधिक प्राप्त किया जा सकता है। इस तकनीक का फसलों की पैदावार पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। इस विधि से धान की खेती करने से पानी की लगभग 30 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है तथा खेत की जुताई व कद्दू करने में व्यर्थ होने वाले ईंधन को भी बचाया जा सकता है। सीधी बुआई वाले धान से मिथेन जैसी ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में भी कमी आती है।

सीधी बुआई द्वारा धान की बुआई दो तरीकों से की जाती है :– सूखी सीधी बुआई विधि व गीली बुआई विधि। सीधी बुआई धान की बुआई में बीजों की खेत में कतार में बुआई की जाती है व गीली विधि में अंकुरित बीजों का छिड़काव पडलिंग मृदा में किया जाता है। यह श्रम, ईंधन व जल को बचाता है (चित्र 2) (सारणी 1)।

रोपाई वाले धान या पडलिंग वाले धान के बदले इसमें खरपतवार नियंत्रण काफी मुश्किल है। इसके लिए पेंडीमैथालीन 1000 ग्राम/हैक्टर का बुआई के 1–2 दिन के अन्दर छिड़काव व बिस्पाइरिपैक सोडियम 25 ग्राम/हैक्टर का बुआई के 20–30 दिन के अन्दर छिड़काव करके खरपतवार पर आसानी से नियन्त्रण किया जा सकता है।

- **मेंड़ पर खेती** – इस तकनीक में फसलों की बुआई मेंड़ों पर करने के लिए बेड प्लान्टर का उपयोग किया जाता है। इस तकनीक में 70–75 से.मी. की दूरी पर मेंड़ें बनाई जाती हैं जिसमें लगभग 35 सें.मी. चौड़ी मेंड़ और इतनी ही दूरी व गहराई पर नाली सी बन जाती है। बुआई मेंड़ों पर और नाली में भी फसल के अनुसार की जा सकती है। गेहूँ के लिए मेंड़ों पर 3 लाईनें बोई जा सकती हैं जबकि मक्का व सरसों की एक लाईन व सोयाबीन, सरसों, चना, मूँग की दो लाईनें काफी होती है (चित्र 3)।

चित्र 2. सीधी बुआई धान मूंग अवशेष के साथ

चित्र 3. मेंड़ पर गेहूँ की खेती

सारणी–1

तकनीक	धान की पैदावार (टन/है.)	गेहूँ की पैदावार (टन/है.)	शुद्ध लाभ (रू/है. हजार में)	जल उत्पादकता (कि.ग्रा. गेहूँ / है.–मि.मी.)
मूँग अवशेष + सीधी बुआई धान –धान फसल अवशेष + शून्य जुताई गेहूँ –मूँग	5.61	5.23	113.94	8.60
धान रोपाई– शून्य जुताई द्वारा गेहूँ	5.75	4.97	98.49	5.45
धान रोपाई–सामान्य बुआई गेहूँ	5.57	4.90	94.16	5.20

यह तकनीक खेतों की भली–भाँति जुताई करने के बाद या फिर पिछली फसल के लिए बनायी मेंड़ों पर बिना जुताई के भी अपनाई जा सकती है। इस विधि से बुआई करने के कई लाभ हैं। जैसे वर्षा ऋतु में खेतों में ज्यादा पानी खड़ा होने से मेंड़ों पर उगे पौधे ज्यादा सुरक्षित होते हैं क्योंकि अनावश्यक पानी को नालियों में से होकर बाहर निकाला जा सकता है। फसलों की सिंचाई करने पर पानी की मात्रा 20–30 प्रतिशत तक कम लगती है। साथ ही प्रति ईकाई पानी की उत्पादकता भी बढ़ती है। इस तकनीक द्वारा फसल उत्पादन में यह भी देखा गया है कि बीज और खाद की मात्रा 15–20 प्रतिशत कम लगती है क्योंकि इनका प्रयोग सिर्फ मेंड़ों पर ही किया जाता है। इस विधि में मेंड़ों पर खरपतवार भी कम आते हैं। इसका कारण यह है कि मेंड़ों पर फसल के पौधों की संख्या ज्यादा होती है जिससे खरपतवारों को पनपने का मौका नहीं मिलता है। यद्यपि नालियों में ज्यादा खरपतवार आते हैं क्योंकि फसल की आरंभिक अवस्थाओं में उनके उगने के लिए पर्याप्त जगह होती है। खरपतवारों की रोकथाम हाथ से चलाने वाले अथवा ट्रैक्टर–चलित यंत्रों द्वारा आसानी से की जा सकती है। इस प्रकार मेंड़ों पर बुआई करने से संसाधनों का कम प्रयोग होने के साथ–साथ पैदावार भी 10–15 प्रतिशत ज्यादा या फिर समतल जमीन पर बुआई करने के बराबर ही मिलती है। मक्का–गेहूँ फसल–चक्र में शून्य जुताई और मेंड़ों पर बुआई बहुत सार्थक पायी गयी है। यदि फसलों के अवशेषों को भी मिट्टी की सतह पर बिछा दिया जाए तो यह तकनीक और भी ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुई है। जिसका मृदा नमी, कार्बनिक कार्बन की मात्रा व तापमान पर तो अनुकूल प्रभाव पड़ता ही है। साथ ही खरपतवारों की रोकथाम में भी सहायता मिलती है। संरक्षण खेती की तकनीकियों द्वारा फसलों की उपज और शुद्ध लाभ में भी बढ़ोत्तरी आंकी गयी है। इसके अलावा सिंचाई जल की उत्पादक दक्षता में भी सुधार पाया गया (सारणी 2)।

2 **मौसम आधारित जानकारी**– इसमें लगातार किसान मौसम की जानकारी अपने पास रखें और अनावृष्टि या अतिवृष्टि होने पर उसी के अनुसार फसल प्रणाली अपनाएं और सिंचाई का प्रबंधन करें। लवणीय भूमि होने पर लवणीय प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव करें और लवणीय प्रतिरोधी फसल चक्रों का चयन करें।

3 **पोषक तत्व प्रबंधन** – इसके अन्तर्गत सही समय, सही मात्रा व सही अवस्था पर उर्वरकों की संस्तुति करके अधिक उत्पादन कम लागत पर उगाना प्रमुख उद्देश्य है। यहाँ किसान भाई पोषक तत्व प्रबंधन के लिए उर्वरक दक्ष प्रणाली या पोषक दक्ष तत्व यंत्र जैसे संगणक आधारित प्रोग्राम की मदद से कर सकते है। लीफ कलर चार्ट व ग्रीनसीकर जैसे सेंसर से किसान स्वंय खाद की मात्रा जान सकते है। ऐसा करके उर्वरकों का अधिक उपयोग से बचा जा सकता है। इससे लागत भी कम, मृदा को नुकसान भी कम, भूमिगत जल के दूषित व वातावरण पर भी दुष्प्रभाव कम होता है।

सारणी 2. मक्का–गेहूँ फसल चक्र में संरक्षण खेती की तकनीकों का प्रभाव

तकनीक	मक्का की उपज (टन/है.)	गेहूँ की उपज (टन/है.)	शुद्ध लाभ (हजार रू/है.)
सामान्य बुआई–समतल भूमि	4.36	4.28	97.72
सामान्य जुताई– समतल भूमि +फसल अवशेष	4.46	4.36	96.47
शून्य जुताई– समतल भूमि + फसल अवशेष	4.57	4.51	107.70
शून्य जुताई + मेंड़ + भूरी खाद	4.76	4.65	111.76

- **पोषक तत्व दक्ष यंत्र**– इसके द्वारा किसान स्थान व स्थिति विशेष के लिए उचित मात्रा में खाद को दे सकते है। मृदा की जांच के अभाव में यह यंत्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

- **ग्रीनसीकर**–यह हस्त चालित आसानी से उपयोग होने वाला सेंसर है। इसे फसल के ऊपर से चलाकर फसल का स्वास्थय जाना जा सकता है और इसी तरह फसल के स्वास्थय के आधार पर नाइट्रोजन की संस्तुति की जाती है। इस तरह किसान नाइट्रोजन की समुचित मात्रा का सही उपयोग करके फसल की उपज व आमदनी बढ़ा सकते हैं।

- **लीफ कलर चार्ट पत्ती**–इससे पत्ती पर पौधों के हरेपन के आधार पर छः खाने बने होते हैं। हरेपन के आधार पर धान गेहूँ व मक्का में नत्रजन की संस्तुति की जाती है।

- **दलहनी फसलों का समावेश**–दो धान्य फसलों के बीच एक दलहनी फसल का समावेश हमेशा लाभदायक होता है। इससे कुल नाइट्रोजन की मांग में कमी आती है साथ ही दलहनी फसलों में मिट्टी में मिला देने से कार्बनिक पदार्थ की मात्रा भी मृदा में बढ़ जाती है।

4 **कार्बन समृद्धिकरण**–इस तकनीक में वातावरण में उपस्थित कार्बन को मृदा में ही संग्रहित कर लिया जाता है। यह निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है।

- **शून्य जुताई** व **फसल अवशेष प्रबंधन** – शून्य जुताई से कई फसलों को आसानी से उगाया जा सकता है। इस तरह पानी का संचालन, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होने से पोषक तत्वों का चक्रीकरण होता है। इस तकनीक द्वारा खेतों की बिना जुताई किये जीरो सीड ड्रिल व टर्बो सीड ड्रिल द्वारा फसलों की बुआई की जाती है (चित्र न. 4)।

चित्र 4. टर्बो सीड ड्रिल द्वारा बुआई

जहां बीज की बुआई करनी हो, उसी जगह से मिट्टी को न्यूनतम अस्त व्यस्त किया जाता है। इसमें दो लाइनों के बीच की जगह बिना जुती ही रहती है। बुआई के समय ही आवश्यक उर्वरकों की मात्रा बीज के नीचे डाल दी जाती है। इस तरह की बुआई मुख्यतः रबी फसलों जैसे गेहूँ, चना, सरसों और अलसी में ज्यादा फायदेमंद सिद्ध हुई है। इन फसलों की बुआई देरी की अवस्था में 7–10 दिन पहले यानि कि समयानुसार की जा सकती है। अतः इस तकनीक द्वारा बुआई करने पर देरी से बोयी गयी फसलों में होने वाले नुकसान को बचाया जा सकता है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के अनुसंधान फार्म पर किये गये प्रयोगों में बिना जुताई से बोयी गयी फसलों की पैदावार 5–10 प्रतिशत अधिक पायी गई है। साथ ही बिना जुताई द्वारा बुआई करने में लागत कम आती है क्योंकि किसान बुआई के पूर्व खेत की 3–4 बार जुताई करते हैं जिसके कारण होने वाला खर्चा बच जाता है। साथ ही ट्रैक्टर के रख–रखाव पर भी कम लागत आती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि रबी फसलों की बुआई में 2500–3000 रूपये प्रति हैक्टर का खर्च बचाया जा सकता है। इस तकनीक से बुआई करने पर पानी की मात्रा भी कम लगती है क्योंकि एक तो पलेवा यानि बुआई–पूर्व सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है। इसके अलावा बाद में भी 1–2 सें.मी. प्रति सिंचाई

पानी कम लगता है। यह भी पाया गया है कि बिना जुताई वाले खेतों में खरपतवारों का कम प्रकोप होता है। इसका कारण यह है कि इस तकनीक में मिट्टी की ज्यादा उलट–पुलट नहीं करते हैं। अतः जिन खरपतवारों के बीज मिट्टी की गहरी सतह में होते हैं उन्हें अंकुरण के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिल पाता है। इसी प्रकार मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ और उसके ऊपर निर्भर लाभकारी सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है जो कि पारंपरिक बुआई के तरीके में खेतों की बार–बार जुताई करने पर नष्ट हो जाते हैं। इस तरह मृदा की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने में भी यह तकनीक सार्थक मानी गयी है। धान की रोपाई सामान्यत; मानसून के देरी से आने या सिंचाई की देरी से होने पर या श्रमिकों के अभाव में देरी से होने पर धान की कटाई भी देरी से हो पाती है जिससे गेहूँ की बुआई भी देरी से हो पाती है। गेहूँ की देरी से बुआई होने पर 32 से 35 कि.ग्रा. प्रतिदिन उपज में कमी होती। ऐसी हालत में धान की कटाई से पहले पानी देना चाहिए जो गेहूँ के लिए बुआई से पहले दिए गए पलेवा का काम करता है। परम्परागत जुताई की अपेक्षा शून्य जुताई, गेहूँ की बुआई करनी चाहिए इससे 50–60 लीटर डीजल/है. बचत होगी तथा व गुल्लीडंडे का प्रकोप कम होता है। इसके लिए जीरो सीड ड्रिल मशीन है जिससे बीज व खाद की एक साथ बुआई की जाती है। शून्य जुताई वाली खेती में कुछ सावधानियाँ और मुश्किलें भी हैं। एक तो बुआई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए ताकि मिट्टी और बीज का संपर्क अच्छी तरह हो जाए। दूसरी बुआई के समय ज्यादा सावधानी रखने की जरूरत होती है कि कहीं सीड ड्रिल की पाईपें बंद न हो जाएं। यद्यपि सीड ड्रिल की पाइपें पारदर्शी होती हैं उनसे बीज गिरता हुआ स्पष्ट नजर आता है। खरपतवारों के नियंत्रण में भी ज्यादा सावधानी की जरूरत होती है। इसके लिए बुआई से पहले पेराक्वाट अथवा ग्लाईफोसेट नामक खरपतवारनाशी का प्रयोग करना चाहिए जिससे पहले से उगे हुए सारे खरपतवार नष्ट हो जाएं ।

- **कृषि वानिकी** – कृषि वानिकी बदलते मौसम के कृषि पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि कर कम करता है साथ ही किसानों की आमदनी को भी बढ़ाता है।

- **हरी खाद एवं भूरी खाद** (ब्राउन मैन्यूरिंग)–हरी खाद जैसे ढैंचा, सनई, मूंग आदि प्रयोग हमेशा लाभदायक होता है। इससे मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है तथा सेहत भी सुधरती है ब्राउन मैन्यूरिंग में ढैंचा को धान के साथ 30–35 दिन के लिए उगने दिया जाता है फिर 2, 4–डी 0.4 –0.5 कि.ग्रा./है0 की दर से छिड़काव किया जाता है इससे 20 से 30 कि.ग्रा नत्रजन/है. की बचत होती है व साथ ही साथ खरपतवार की मात्रा में कमी आती है ।

5 **ज्ञान प्रबलीकरण**– इक्कीसवीं सदी की कृषि ज्ञान पर आधारित है। जिस किसान के पास अधिकतम ज्ञान होगा वह वातावरण के बदलते परिवेश में अपने आवकों का समुचित प्रयोग करते हुए लाभप्रदता सुनिश्चित कर सकेगा। यह आवश्यक है कि किसान भाई बदलते वातावरण के परिवेश में जागरुक बने।

इन पाँचों सिद्धांतों को ध्यान में रखकर किसान भाई ना केवल अपनी फसल को बदलते मौसम के दुष्प्रभाव से बचा सकते हैं बल्कि कृषि आदानों जैसे उर्वरक, जल आदि का समुचित उपयोग करते हुए अधिक उपज लेते हुए अपनी आमदनी को बढ़ा सकते हैं।

उच्च उत्पादकता के लिए जौ की नवीन किस्में

विष्णु कुमार, जोगेन्द्र सिंह, दिनेश कुमार एवं ए. एस. खर्ब

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जौ एक मुख्य अनाज फसल है, जिसका उपचोग प्राचीन समय से ही किया जाता है। इसका उपयोग मख्यतः चारा, भोजन एवं माल्ट उत्पादन के लिए किया जाता है। जौ विश्व की चतुर्थ मुख्य अनाज फसल है एवं विश्व के कुल खाद्यान्न उत्पादन में इसका 5.5–6 प्रतिशत योगदान है। वर्ष 2013–14 के अन्तर्गत भारत में जौ का उत्पादन 17.30 लाख टन था एवं उत्पादकता 25.8 कुंतल/हैक्टर दर्ज की गई। जौ के प्रमुख उत्पादक राज्यों में राजस्थान (8.77 लाख टन) का प्रथम स्थान रहा एवं अन्य राज्यों में क्रमशः उत्तर प्रदेश (4.24 लाख टन), हरियाणा (1.40 लाख टन), मध्य प्रदेश (1.39 लाख टन), पंजाब (0.61 लाख टन) आदि राज्य प्रमुख थे। उत्पादकता की दृष्टि से हरियाणा (38.9 कुंतल/हैक्टर) अग्रणी राज्य था एवं पंजाब (35.9 कुंतल/हैक्टर) और राजस्थान (29.4 कुंतल/हैक्टर) क्रमशः द्वितीय एवं तृतीय स्थान पर रहे।

वर्ष 2011–12 की तुलना में, वर्ष 2012–13 एवं 2013–14 में उत्पादन में क्रमशः 1.34 एवं 1.12 लाख टन की वृद्धि हुई। वर्ष 2011–12 की अपेक्षा, वर्ष 2012–13 में उत्पादकता में 0.40 प्रतिशत एवं वर्ष 2012–13 की तुलना में वर्ष 2013–14 में 2.38 प्रतिशत वृद्धि उत्पादकता में दर्ज की गई। उत्पादकता में हुई वृद्धि का एक मुख्य कारण जौ की नवीन किस्मों का योगदान है एवं इन किस्मों का उचित फसल प्रबंधन एवं सुरक्षा का भी अहम योगदान है।

इस प्रस्तुत लेख में जौ की चारा, माल्ट एवं भोजन किस्मों को तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र

	बुआई की दशा	किस्में
1	समय से सिंचित	बी. एच. 946, बी. एच. 902, आर. डी. 2552, आर. डी. 2035, आर. डी. 2503, पी. एल. 426 (केवल पंजाब), बी. एच. 393 (केवल हरियाणा), आर. डी. 2592 (केवल राजस्थान)
2	समय से, वर्षा आधारित,	आर. डी. 2508, आर. डी. 2624, आर. डी. 2660, पी. एल. 419, (केवल पंजाब के लिए)
3	समय से, सिंचित (माल्ट जौ)	डी. डब्ल्यू. आर. यू. बी. 52, डी. डब्ल्यू. आर. बी. 92, आर. डी. 2668, डी. डब्ल्यू. आर. बी. 101, बी. एच. 885 (केवल हरियाणा के लिए)
4	देर से, सिंचित (माल्ट जौ)	डी. डब्ल्यू. आर. यू. बी. 91, डी. डब्ल्यू. आर. बी. 73, डी. डब्ल्यू. आर. यू. बी. 64
5	लवणीय/क्षारीय भूमि हेतू	आर. डी. 2794, एन. डी. बी. 1173, आर. डी. 2552
6	द्वि उद्देशीय जौ	आर. डी. 2035, आर. डी. 2552

उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र

बुआई की दशा	किस्में
समय से, सिंचित	एच यू बी 113, आर डी 2552, के 409*, के 508*, के 551, एन बी 2*, एन बी 5* (*केवल उत्तर प्रदेश के लिए), एन डी बी 943 (छिलका रहित)
समय से, वर्षा आधारित	के 560*, के 603* (*केवल उत्तर प्रदेश)
लवणीय/क्षारीय भूमि हेतू	एन डी बी 1445, (केवल उत्तर प्रदेश), आर डी 2794, आर डी 2552, एन डी बी 1173

मध्य क्षेत्र

बुआई की दशा	किस्में
समय से, सिंचित	आर. डी. 2786, पी. एल. 751, बी. एच. 959 (नवीन चिन्हित), जे. बी. 110
वर्षा आधारित, समय से	जे बी 58
द्वि उद्देशीय	आर. डी. 2715 (केवल मध्य प्रदेश)

उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र

बुआई की दशा	किस्में
समय से, वर्षा आधारित,	बी. एच. एस. 400, बी. एल. बी. 118, यू. पी. बी. 1008, एच. बी. एल. 113
समय से वर्षा आधारित, (द्वि उद्देशीय)	पी. बार. बी. 502 (केवल उत्तराखंड), बी. एच. एस. 380
भोजन जौ (छिलका)	एच. बी. एल. 276, बी. एच. एस. 352

उपरोक्त किस्मों के प्रयोग से जौ उत्पादन को और अधिक बढ़ाया जा सकता है। माल्ट जौ की किस्मों का कई विदेशी माल्ट कम्पनियों द्वारा अनुबंधित खेती में प्रयोग किया जा रहा है। क्षारीय, लवणीय एवं सीमांत भूमियों में जौ की अनुकूलता के कारण जौ के क्षेत्रफल में वृद्धि की संभावना है।

वर्तमान परिपेक्ष्य में जौ शोध में खाद्य जौ की सिंचित एवं देरी से बुआई, वर्षा आधारित समय से बुआई, द्वि उद्देशीय जौ एवं छिलका रहित भोज्य जौ की उच्च उत्पादक किस्मों के विकास की अत्याधिक आवश्यकता है। माल्ट जौ में द्वि पंक्ति किस्में में हॉट वाटर एक्सट्रैक्ट, छिलका मात्रा, माल्ट फ्राईबिलिटी, बीटा ग्लूकन मात्रा, प्रोटीन प्रतिशत में अधिक शोध की आवश्यकता है।

जौ एवं जई महत्त्वपूर्ण स्वास्थयवर्धक फसलें

विष्णु कुमार, दिनेश कुमार, जोगेन्द्र सिंह, आर सेल्वाकुमार एवं ए एस खर्ब

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

अनाज फसलों का मानव जीवन में प्राचीन काल से ही अनुपम योगदान है। विशेषतः भारत देश, जहां अनाज एवं मोटे अनाज पर भोजन के लिए निर्भरता अधिक है। हमारे यहां अधिकांशतः कार्बोहाइड्रेट एवं प्रोटीन की मात्रा की प्राप्ति अनाज एवं दलहनी फसलों से होती है। बदलते हुए जीवन परिवेश एवं अधिक भौतिक सुख–सुविधाओं के साथ मानव जीवन सरल जो हुआ है लेकिन कई रोग जैसे; मधुमेह, मोटापा, हृदय रोग आदि में काफी वृद्धि हुई है। शारीरिक परिश्रम के अलावा संतुलित भोजन एवं स्वास्थयवर्धक अनाजों का भोजन में समावेश उपरोक्त बिमारियों को कम करते हैं। बीटा–ग्लूकन एक महत्वपूर्ण गुणकारी कारक है एवं जौ और जई में अन्य अनाजों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। बीटा–ग्लूकन, कालेस्ट्रोल एवं ग्लूकोज की मात्रा को संतुलित रखने का कार्य करता है। जौ में बीटा–ग्लूकन की मात्रा (3–11 प्रतिशत) जई से (3–7 प्रतिशत) अधिक होती है।

जौ एवं जई दोनो में पोटैशियम, फास्फोरस एवं मैग्निशियम की पर्याप्त मात्रा होती है। इनमें खनिज लवण के अतिरिक्त, विटामिन्स (थायेमीन, राइबोफ्लेबिन, नियासिन, बी 6 आदि) भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। जौ में जई की अपेक्षा मुख्यतः वसा की मात्रा कम होती है एवं कार्बोहाइड्रेट, कुल फाईवर, पोटैशियम, सोडियम, राइबोफ्लेविन, नियासिन, बी 6 आदि अधिक होते हैं। इस प्रकार जौ को जई की अपेक्षा एक संतुलित आहार माना जाता है। जई में प्रोटीन की मात्रा आरयन, जिंक, फॉस्फोरस, मैग्निशियम, फोलेट आदि अधिक पाये जाते हैं। जौ एवं जई के कुछ मुख्य अवयवों का तुलनात्मक विवरण तालिका में दिया गया है।

तालिका : जौ एवं जई के अवयवों की तुलना (मात्रा प्रति 1000 ग्राम)

क्रं. सं.	अवयव	जौ	जई
1	जल (प्रतिशत)	9.44	8.22
2	ऊर्जा (किलो कैलेरी)	3.54	389
3	प्रोटीन (प्रतिशत)	12.48	16.89
4	लिपीड (ग्राम)	2.3	6.9

5	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	73.48	66.27
6	रेशों की मात्रा (ग्राम)	17.3	10.6
7	आयरन (मिली ग्राम)	3.6	4.72
8	जिंक (मिली ग्राम)	2.77	3.97
9	पोटैशियम (मिली ग्राम)	452	429
10	सोडियम (मिली ग्राम)	12	2
11	कैल्शियम (मिली ग्राम)	33	54
12	फॉस्फोरस (मिली ग्राम)	264	523
13	मैग्निशियम (मिली ग्राम)	133	177
14	थायमीन (मिली ग्राम)	0.646	1.19
15	राइबोफ्लेविन (मिली ग्राम)	0.285	0.217
16	नियासिन (मिली ग्राम)	4.60	1.49
17	विटामिन बी 6 (मिली ग्राम)	0.32	0.19
18	फोलेट (माइक्रो ग्राम)	19	87
19	विटामिन ए (आई यू)	22	0
20	वसा अम्ल (मोनोअनसैचुरेटेड ग्राम)	0.29	3.40

जौ एवं जई का भोजन में समावेश कर हम संतुलित आहार प्राप्त कर सकते हैं। जौ का उपयोग गेहूँ के साथ मिलाकर (15–20 प्रतिशत) चपाती बनाने में किया जा सकता है। इसके अलावा जौ का सत्तू, अन्य अनाज फसलों के साथ मिश्रण (मल्टीग्रेन), दलिया भी उपयोग में लाया जा सकता है। नवीन परीक्षणों के आधार पर जौ नेटवर्क, आई.आई.डब्ल्यू.बी.आर., करनाल में जौ के बिस्कुट बनाये गए (बाहरी सहयोग से) एवं स्वाद में अच्छे पाये गए। इस दिशा में अभी किस्मों का गुणों पर प्रभाव, अन्य अवयव मिश्रण आदि की आवश्यकता है।

इसी प्रकार जई के उत्पाद जैसे; अन्य अनाजों के साथ मिश्रण (मल्टीग्रेन), बिस्कुट, दलिया, फ्लेक्स आदि प्रचलित हैं। उपरोक्त उत्पादों (जौ एवं जई) को दिनचर्या में शामिल कर हम कुछ हद तक बिमारियों को नियंत्रित कर सकते हैं।

समेकित कृषि प्रणाली द्वारा अधिक आय अर्जन

रीतिका चौधरी, गिरीश चंद्र पाण्डेय, स्वाती वर्मा एवं ममृथा एच.एम.

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत में कृषि योग्य भूमि के औसत आकार में निरंतर गिरावट आ रही है और 105 मिलियन हैक्टर कार्यरत कृषि योग्य भूमि का 80 मिलियन हैक्टर भूमि का क्षेत्रफल 1 एकड़ से भी कम है जो एक खतरे का संकेत है। छोटे किसान कृषि से होने वाले आय से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाने में असमर्थ हैं। सन् 2010 के आंकड़े के अनुसार विश्व की 1.2 अरब जनसंख्या अत्यंत निर्धन है, जिसका एक–तिहाई भारत में निवास करती है। यह स्थिति दिन–प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है क्योंकि किसी ना किसी वर्ष मानसून की अनिश्चितता रहती है वहीं दूसरी तरफ जनसंख्या वृद्धि की वजह से प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि में गिरावट आ रही है। साथ ही उर्वरक, जलकर्षण एवं विद्युत के दरों में वृद्धि ने कृषि पर होने वाले खर्च में वृद्धि की है। भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि की संभावना नगण्य है जबकि विभिन्न कृषि संस्थाओं को समन्वित कर क्षेत्रफल में वृद्धि की जा सकती हैं (नागराजा जी एन, 1995)। इसी कारण कृषकों के सुनहरे भविष्य एवं आय में वृद्धि के फलस्वरूप उनका आर्थिक स्तर भी ऊँचा उठेगा।

मत्स्य पालन

कृषि योग्य भूमि का निरंतर घटता क्षेत्रफल किसानों के फसल उत्पादन पर सीधा प्रभाव डाल रहा है जो उन्हें अन्य विकल्पों के तरफ जाने के लिए प्रेरित कर रहा है। शिक्षित कृषक फसल के साथ–साथ मत्स्य एवं पशु पालन अपनाकर अपने आय में वृद्धि कर रहा है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि पशु अपशिष्ट को पुनरांतरण करके फसलों के लिए जैव खाद एवं मछलियों के लिए भोजन प्राप्त होता है जिससे कृषि में होने वाले खर्च को कम किया जा सकता है। मत्स्य पालन के लिए

कृषक के पास तालाब, जलाशय या अन्य जल स्त्रोत होने चाहिए जिसमें वह मत्स्य पालन कर सके। कृषक संस्थाओं को मत्स्य पालन के लिए सरकार द्वारा 40 से 90 प्रतिशत की सब्सिडी दी जा रही है जिसमें वे मत्स्य पालन में वृद्धि करके ग्रामीण युवाओं को रोजगार का अवसर प्रदार कर सकते हैं।

दुग्ध व्यवसाय

दुग्ध व्यवसाय किसी भी देश के कृषि अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण आधार स्तंभ है तथा सकल कृषि उत्पाद में इसका द्वितीय योगदान है। विगत वर्षो में ऑपरेशन फ्लड या श्वेत क्रांति के फलस्वरूप दूध उत्पादन में अद्वितीय वृद्धि हुई है। श्वेत क्रांति के द्वारा अनुसंधान संस्थाओं, विस्तार संस्थाओं, उत्पादन एवं विपणन नेटवर्क, बैंकिंग संस्थाओं द्वारा उचित ऋण की सुविधा तथा दुग्ध उत्पादकों द्वारा नवीन तकनीकों के प्रयोग से भारत विश्व का सर्वाधिक दुग्ध उत्पादक राष्ट्र बन गया है। दुग्ध व्यवसाय (फार्मिंग) ने ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक रोजगार उत्पन्न किया है तथा ग्रामीण समुदाय के कमजोर वर्गों को भी रोजगार के सुअवसर प्रदान किए हैं। इस व्यवसाय ने कृषकों के आय में अतिरिक्त रूप से वृद्धि की है।

गुजरात का अमूल डेरी इसका जीता–जागता उदाहरण है जो एक अंतर्राष्ट्रीय ब्रांड बन गया है।

मुर्गीपालन

यह एक उभरता हुआ व्यवसाय है जो कृषकों को रोजगार पोषण तथा अच्छी आमदनी प्रदान करता है जिससे गरीबी उन्मूलन तथा खाद्य सुरक्षा सुनिशिचित की जा सकता है। भारत का 85 प्रतिशत मुर्गीपालन छोटे किसानों द्वारा किया जाता है।

रेशम पालन

भारत का चीन के बाद कच्चे रेशम के उत्पादन में द्वितीय स्थान है, जबकि कच्चे रेशम एवं रेशमी वस्त्रों के सर्वाधिक उपभोक्ता भारत में ही है। यह व्यवसाय मुख्यतः कृषकों, संस्थाओं तथा बुनकरों के लिए पसंद का व्यवसाय है क्योंकि इसमें कम निवेश पर बहुत अच्छी आमदनी होती है तथा मलबरी के उद्यान का रख–रखाव भी सस्ता है। पूरे वर्ष के लिए ट्यूबवेल सिंचित भूमि में उपयोगी है जबकि वृक्षारोपण के लिए शुष्क भूमि उपयोगी है।

उद्यानिकी

भारत विश्व में फल एवं सब्जी के उत्पादन में द्वितीय है। फल, सब्जी, कंद एवं प्रकंद फसल, सजावटी पौधे, औषधीय पौधे, मसाले आदि लगाकर किसान अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट

कम्पोस्ट मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में वृद्धि के लिए अतिआवश्यक तत्व है। बायोमास जो किसानों को पुआल, पत्ती एवं तने के रूप में प्राप्त होता है का उपयोग पशुओं के चारा के रूप में तथा घरेलु ईंधन में होता है। पशुओं का गोबर भी एक अन्य बायोमास का उदाहरण है जो कि कुछ दिनों बाद जीवाणु अपघटन के फलस्वरूप जैविक खाद में परिवर्तित हो जाता है। गोबर का दूसरा उपयोग बायो गैस संयंत्रों द्वारा गाँवों में सस्ती बिजली उत्पादन उपलबध भी कराना है।

समन्वित कृषि तंत्र के लाभ

1. खाद्य उत्पादन में वृद्धि तथा जनसंख्या का भरण–पोषण
2. कार्बनिक अपशिष्ट रूपांतरण के द्वारा मृदा उपजाऊ शक्ति को टिकाऊ करना।
3. समन्वित कृषि व्यवस्था से मृदा क्षरण को भी रोका जा सकता है क्योंकि यह व्यवस्था कृषिवानिकी को बढ़ावा देती है।
4. उपरोक्त गैर रोजगार के साधनों से ग्रामीण जनता के आय में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप उनका जीवन स्तर ऊँचा होता है।

स्थायी कृषि हेतु पानी की उपयोग क्षमता में सुधार

ममता काजला, विनय कुमार यादव, आर.एस.छोकर, आर.के.शर्मा एवं अनुज कुमार

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जनसंख्या में बढ़ोत्तरी के कारण भोजन की जरुरत और उसके उत्पादन के लिए कृषि में सिंचाई जल की मांग में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। इसके साथ–साथ शहरी एवं उद्योग में बढ़ती हुई जल की मांग के चलते सिंचाई के लिए उपलब्ध जल में लगातार कमी हो रही है। कृषि में उपयोग होने वाले जल का कुछ अंश ही पौधों की वृद्धि में उपयोगी होता है तथा ज्यादातर अंश वाष्प उत्सर्जन के रुप में व्यर्थ हो जाता है जिसे न्यूनतम करने के प्रयास करने चाहिए व कम उपयोग से अधिक उत्पादन लेना चाहिए।

कृषि क्षेत्र में जल उपयोग क्षमता में बढ़ोत्तरी के लिए बड़े पैमाने पर कई वर्षों से शोध किया जा रहा है। जल उपयोग क्षमता में बढ़ोत्तरी, उपयुक्त फसल चुनाव, समुचित सिंचाई का समय निर्धारण, प्रभावी सिंचाई तकनीक और सिंचाई के अन्य वैकल्पिक स्त्रोतों के उपयोग के माध्यम से संभव है। जल उपयोग क्षमता में बढ़ोत्तरी न केवल कम पानी की आवश्यकता को दर्शाती है बल्कि कृषि में अन्य कई लाभ भी प्रदान करती है।

सिंचाई पद्धतियों में सुधार के फायदे

- पानी और पम्पिंग की लागत में कमी
- उर्वरकों और अन्य कृषि रसायनों की लगात में कमी
- मिट्टी की उच्च गुणवत्ता को बनाए रखना
- फसल पैदावार में बढ़ोत्तरी

जलवायु परिस्थितियां, मृदा के प्रकार और संरचना, फसल के प्रकार, सिंचाई तकनीकियां, सिंचाई की दक्षता और प्रभावशीलता को प्रभावित करने के मुख्य कारक हैं। किसी भी दिए गए स्थान, जलवायु और मिट्टी की स्थिति में सिंचाई पद्धतियों की दक्षता में सुधार के लिए सही निर्णय जैसे;

- सही फसल चुनाव
- सिंचाई का समय निर्धारण
- सिंचाई पद्धति
- मिट्टी की जल अवरोधक क्षमता में वृद्धि के उपाय

फसल की जल आवश्यकता

फसलों की जल आवश्यकता और उनका अवधि चक्र एक दूसरे से भिन्न होता है। नतीजन, विभिन्न फसलों की सिंचाई जल की जरुरत विभिन्न होती है। लम्बे अवधि वाली फसलों की अपेक्षा छोटी अवधि वाली फसलों की सिंचाई जल आवश्यकता कम होती है। इसलिए सिंचाई पानी की आवश्यकता में कमी करने के लिए फसलों की किस्मों का चुनाव करना एक महत्वपूर्ण कदम है। फसलों की किस्मों का चुनाव इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनकी पानी की आवश्यकता कम व उत्पादक क्षमता अधिक हो।

सिंचाई अनुसूची

सिंचाई का समय निर्धारण, अधिकतर फसलों में सिंचाई जल के प्रयोग की त्रुटियों को खत्म करने में मदद करता है। सिंचाई का सही समय अनुसूची में सम्मिलित है : फसल के जड़ क्षेत्र में नमी के आधार पर सिंचाई जल आवेदन, फसल की जल उपयोगीता, फसल का विकास चरण और मिट्टी में नमी की मात्रा का प्रत्यक्ष माप।

यह ध्यान में रखा जाए कि अधिक सिंचाई जल भी फसल की उत्पादकता को कम करती है, क्योंकि पौधे अतिरिक्त

पानी का उपयोग नहीं कर सकते, अधिक सिंचाई जल से मिट्टी में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है जो उनके विकास में बाधा डालती है। इस तरीके से न केवल हम पानी को व्यर्थ करते हैं बल्कि इससे ऊर्जा और पंम्पिग लागत भी बर्बाद होती है। इसलिए हमें सिंचाई की अच्छी योजना बनानी चाहिए, जिसमें सिंचाई जल की उपलब्धता और फसल का पानी की आवश्यकता मेल खाती हो। सिंचाई का समय निर्धारण के लिए हमें निम्न ज्ञान होना चाहिए–

- **सिंचाई के प्रति फसल की क्रांतिक अवस्थाएं**

सिंचाई का समय निर्धारण फसल की क्रांतिक अवस्थाओं को ध्यान में रखकर करना चाहिए क्योंकि इन क्रांतिक अवस्थाओं पर, नमी में कमी आने से फसल की उत्पादकता में भारी गिरावट आती है। विभिन्न फसलों की क्रांतिक अवस्थाएं एक दूसरे से भिन्न होती है जोकि निम्न सारणी में दी गई है।

विभिन्न फसल विकास चक्र में पानी की आवश्यकता

फसल की जल आवश्यकता उसके विकास चरण पर निर्भर होती है जैसे कि फसल के शुरुआती विकास चरण के दौरान पानी की आवश्यकता मध्य विकास चरण की तुलना में 50 प्रतिशत तक कम होती है तथा आखरी विकास चरण में उसकी पानी की आवश्यकता चरम सीमा पर पहुँच जाती है। इसलिए सिंचाई जल की मात्रा फसल के विकास चरण को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए।

- **मिट्टी में नमी दर और मिट्टी की जल धारण क्षमता**

सिंचाई क्षेत्र की मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। जैसे कि बालुई मिट्टी की जल धारण क्षमता बहुत कम होती है इसलिए इसमें हलका सिंचाई कम अंतराल पर लगाना चाहिए तथा ऐसी परिस्थितियों में सिंचाई का

फसल	क्रांतिक अवस्थाओं
गेहूँ	चंदेरी जड़ निकलने की अवस्था, कल्ले बनना, गांठ अवस्था, झंडा पत्ती अवस्था, पुष्पन अवस्था, दुग्ध अवस्था तथा दाने की पकने की अवस्था
धान	कल्ले बनने से पूर्व की अवस्था, पुष्पन का आना
दलहन	पुष्पन अवस्था, फली का आना
मटर	फूल के खिलने से पूर्व की अवस्था
बरसीम	हर एक कटाई के बाद
ज्वार	प्रारंभिक अंकुर अवस्था, पुष्पन से पूर्व की अवस्था, पुष्पन अवस्था, दाने के बनने की अवस्था
जौ	झंडा पत्ती अवस्था, दाने पकने की अवस्था
मक्की	शुरुआती वनस्पति अवस्था, टैसलिंग व सिलकिंग अवस्था

सबसे अच्छा विकल्प फव्वारा सिंचाई है। दूसरी तरफ दोमट मिट्टी की जल धारण क्षमता अधिक होती है इसलिए गहरी सिंचाईयां लंबे अंतराल पर लगाना चाहिए।

सिंचाई विधियाँ

सिंचाइ जल की मात्रा का अनुमान लगाने के उपरान्त, एक ऐसी विधि का चयन करना चाहिए जोकि प्रभावी रुप से पानी की उपलब्धता सुनिश्चित कर सकें। सिंचाई की तीन मुख्य विधियाँ चयनित है :

1 सतही सिंचाई
2 छिड़काव / फव्वारा सिंचाई
3 ड्रिप / टपका सिंचाई

सतही सिंचाई

सतही सिंचाई के माध्यम से खेत की सतह पर सिंचाई जल दिया जाता है। सतही सिंचाई के निम्न विभिन्न रुप है;

- बेसिन सिंचाई सम्पूर्ण खेत की सतह को सिंचाई जल से भर दिया जाता है।
- कुंड या सीमा सिंचाई–जहां सिंचाई छोटे नालियों व पट्टियों में की जाती है।

सतही सिंचाई सबसे आसान और कम लागत वाली विधि है परन्तु इसकी दक्षता बहुत कम है यानि इसके अंतर्गत केवल 30 प्रतिशत के लगभग इस्तेमाल किए गए जल का उपयोग फसल कर पाती है।

छिड़काव / फव्वारा सिंचाई

फव्वारा सिंचाई प्रणाली प्राकृतिक वर्षा की नकल है। यह प्रणाली सतही सिंचाई की अपेक्षा अधिक कुशल है। किन्तु इसका स्थापन और संचालन अधिक मंहगा है क्योंकि इसके संचालन में पानी के दबाव की जरुरत होती है। इस सिंचाई प्रणाली के अंतर्गत फसलों पर सीधे पानी की बूंदें डाली जाती है। यदि इस विधि को उपयुक्त कृषि तकनीक के साथ प्रयोग किया जाए, तो इसकी क्षमता 80–90 प्रतिशत तक संभव है।

ड्रिप सिंचाई (बूंद–बूंद सिंचाई)

ड्रिप सिंचाई में दबाव के प्रयोग से पौधो के समीप रखे पाईप अथवा ड्रिपर के माध्यम से सिंचाई की जाती है। ये पाईप अथवा ड्रिपर सिंचाई मिट्टी की सतह या जमीन के नीचे रखे जाते हैं। यह विधि अत्यधिक कुशल मानी जाती है क्योंकि इसमें जल का आवेदन तत्काल पौधे की जड़ क्षेत्र में किया जाता है। इस प्रणाली द्वारा पानी में घुलनशील उर्वरकों और अन्य कृषि रसायनों का उपयोग भी किया जा सकता है। ड्रिप सिंचाई के द्वारा पारंपरिक सिंचाई की अपेक्षा कम पानी का उपयोग करके अधिक क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है। इस प्रणाली की दक्षता 30–90 प्रतिशत तक संभव है।

- **उचित समतलीकरण**
  विशेष रुप से जल का बराबर वितरण प्रवाह की अधिकतम गति को बरकरार रखने हेतु खेत समतल करना अनिवार्य है।

- **मेंड़ का निमार्ण**
  यह अतिरिक्त सिंचाई जल और बारिश के पानी को कुंड में इकट्ठा करता है जिसके फलस्वरुप पानी का व्यर्थ बहना कम हो जाता है और सिंचाई की क्षमता में भी वृद्धि होती है।

- **फसल अवशेष प्रबन्धन और संरक्षण जुताई**
  इसके अंतर्गत फसल और पौधों के अवशेषों को जमीन की सतह पर बिखेरा जाता है। इस पद्धति के प्रयोग से मिट्टी की नमी धारण क्षमता में सुधार, क्षेत्र के अत्यधिक पानी प्रवाह में कमी और सतह का वाष्पीकरण कम हो जाता है। संरक्षण जुताई फव्वारा व ड्रिप सिंचाई में ज्यादा बेहतर मानी गई है।

जल वितरण प्रणाली में सुधार के उपाय

- नहरों को भूमिगत करने से जल के वाष्पीकरण नुकसान में कमी आती है।

वैकल्पिक जल स्त्रोत

- **वर्षा जल संचयन**
  वर्षा जल के लिए मृदा एक प्राकृतिक भण्डारण श्रोत है, जिसका भरपूर उपयोग करना चाहिए। वर्षा जल को मृदा में दो प्रकार से संचयन कर सकते हैं। सर्वप्रथम प्रयास यह रहना चाहिए की अधिक से अधिक वर्षा जल मृदा में समा सके, इसके लिए खेत का समतलीकरण, खरपतवार नियंत्रण एवं ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करने से मानसून पूर्व एवं मानसून की पहली–दूसरी भारी वर्षा का पानी मृदा की गहरी परतों में समा जाता है, जिसे फसलें दीर्घकालीन तक उपयोग करती रहती हैं। इसके अलावा अत्यधिक वर्षा के पानी का संग्रहण खेत के निचले हिस्से में आवश्यक आकार के तालाब का निर्माण करके किया जा सकता है, जिसका उपयोग आवश्यकता पड़ने पर फसलों की सिंचाई व पशुओं के लिए उपयोग किया जा सकता है। अन्यथा यह अत्यधिक जल खेत से बहकर व्यर्थ हो जाता है साथ ही मृदा के पोषक तत्वों को भी बहा ले जाता है।

- **उपचारित अपशिष्ट जल का उपयोग**
  अपशिष्ट जल को उपचारित करके उसके विषैले तत्वों को अलग कर इस जल को फसलों व सब्जियों की सिंचाई के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इस विधि में हमें अपशिष्ट जल से भी निजात मिल जाती व साथ ही सिंचाई जल की मात्रा भी बढ़ जाती है।

उन्नत सस्य क्रियाओं से फसलों में अधिक जल उपयोगी दक्षता

एस.के. गौरी, वी.के. यादव, ममता काजला, आर.एस.छोकर, अनुज कुमार,
एस.सी. गिल, एस.सी. त्रिपाठी, अनीता मीणा एवं ए.के. द्विवेदी
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

पृथ्वी के तीन चौथाई भाग पर जल उपस्थित होने के बावजूद इसके स्वच्छ जल सिर्फ 2.7 प्रतिशत है। स्वच्छ जल की अवश्यकता मानव और जीव प्रणाली की 30 प्रतिशत है जो एक भविष्य में संकट की और संकेत करता है। संसार में भारत की जनसंख्या 17 प्रतिशत जबकि स्वच्छ जल संसाधन 4 प्रतिशत है। न सिर्फ भूमि की उपलब्धता कम हो रही बल्कि जल उपलब्धता भी दिन प्रतिदिन घटती जा रही है। सन् 1951 में जल उपलब्धता 5300 मी^{3} से भी अधिक थी जो धीरे–धीरे कम 1999 में 1905 मी^{3} और 2015 तक 1500 मी^{3} से भी कम होने का अनुमान है।

जल संसाधन

भारत की खेती मुख्य रुप से मानसून पर आधारित है। भारत में लगभग प्रतिवर्ष 40 करोड़ है. मीटर वर्षा होती है जो विश्व की कुल वर्षा का 4 प्रतिशत है। दक्षिणी–पश्चिमी मानसून से देश के अधिकांश भाग में वर्षा होती है। आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक में उत्तरी–पूर्वी मानसून से वर्षा होती है। देश में 6 करोड़ है. संपूर्ण सिंचाई क्षेत्र है जिसमें विभिन्न प्रणाली से सिंचाई की जाती है जैसे नहर, कुआँ और ट्यूबवेल+खुले कुएं क्रमशः 30 प्रतिशत, 4 प्रतिशत और 62 प्रतिशत का सहयोग है।

सस्य क्रियाएं

मृदा में नमी संरक्षण

कृषि की प्रमुख समस्या मृदा के अंदर नमी का संरक्षण करना है। प्रति ईकाई क्षेत्र से अधिक पैदावार लेने के लिए मृदा में नमी को सुरक्षित रखने के प्रमुख उपाय–

- मृदा की अन्तः श्रवण क्षमता बढ़ाई जाए। इसके लिए इन क्षेत्रों में कम गहरी अर्थात् उथली जुताई हैरो या कल्टीवेटर की सहायता से की जाय। इस प्रकार मृदा में अधिक नमी सोखने व सुरक्षित रखने की क्षमता बढ़ेगी।
- कम वर्षा वाले क्षेत्रों में मेंड़ बन्दी कर दी जाए, जिससे वर्षा का अधिक से अधिक पानी खेतों में रोका जा सके।
- जीरो टिलेज पद्धति से खेती की बुवाई की जानी चाहिए जिससे जुताई का खर्च और नमी संरक्षण किया जा सकता है।
- मृदा की सतह से वाष्पीकरण द्वारा होने वाली नमी की मात्रा को नष्ट होने से बचाया जाएं। इसके लिए मल्च का प्रयोग उत्तम है।
- ढालू भूमियों पर कन्टूरिंग विधि से जुताई की जाए। आवश्यकतानुसार पट्टियों में खेती करनी चाहिए।

सारणी : देश में समय के अनुसार वर्षा का वार्षिक वितरण

वर्षा	समय	वार्षिक वर्षा प्रतिशत
अग्रिम मानसून	मार्च–मई	10.4
दक्षिणी–पश्चिमी मानसून	जून–सितंबर	73.7
देर से मानसून	अक्तूबर–दिसम्बर	13.3
सर्दी और उत्तरी–पूर्वी मानसून	दिसंबर–जनवरी	2.6

- फसल–चक्र ऐसे अपनाएं जो भूमि में अधिक से अधिक नमी संचित कर सकें।
- बलुई मृदाओं में जीवांश खाद डालकर नमी को सुरक्षित रखा जाए।

सिंचाई विधियां

- **मेंड़ पर सिंचाई**
  मेंड़ पर सिंचाई करने से 20–30 प्रतिशत पानी की बचत होती है। इसका कारण मेंड़ पर कम क्षेत्रफल की सिंचाई करने के साथ–साथ 25–30 प्रतिशत कम पानी उपयोग होता है। मेंड़ की सिंचाई पर पानी अधिकतर मेंड़ की बगल से सोखा जाता है जबकि समतल सिंचाई में गुरुत्वाकषर्ण के प्रभावस्वरुप बिरल जमीन होने के कारण पानी तीव्र गति से सीधे नीचे चला जाता है। इस तरह मेंड़ की सिंचाई के द्वारा कई फसलों के लिए समतल सिंचाई की तुलना में कम पानी की जरुरत पड़ती है।

- **एकान्तर कूंड**
  जब पानी की कमी हो तथा लवण जमा होते हो, वहां सिंचाई का यह तरीका विशेष उपयोगी है। इसमें सिंचाई हर दूसरे कूंड में करते हैं। लेकिन जब दूसरी सिंचाई करते है तो पहली बार सिंचाई किए गये कूंड को छोड़ देते हैं तथा छूटे हुए कूंड़ों में सिंचाई करते है। इस तरीके में कूंड नीचे की तरफ चौड़ी अर्थात् वी आकार की न बनाकर यू के आकार की बनाते हैं। क्रमिक कूंड द्वारा सिंचाई उन भूमियों के लिए विशेष उपयुक्त है जिनमें जल आसानी से डोल से रिस सकता है। जल की कमी होने पर भी यह तरीका उपयोगी है।

- **फव्वारा सिंचाई (स्प्रिंकलर)**
  इस पद्धति में स्वचलित यन्त्रों की मदद से जल फसल के ऊपर वर्षा की तरह छिड़का जाता है। बौछार की दर इस तरह नियंत्रित की जाती है कि जल की मात्रा मृदा में अन्तःस्यन्दन दर से अधिक न हो। फव्वारा सिंचाई निम्नलिखित दशाओं में उपयुक्त रहती है।

1. जहां भूमि की स्थलाकृति ऊँची–नीची हो जिसपर पृष्ठीय तराकों से सिंचाई संभव न हो।
2. रेगिस्तानी क्षेत्र जहां मृदा बहुत हल्की हो या पहाड़ी क्षेत्र जहां मृदा की पतली तह हो और नीचे कड़ी या पथरीली परत हो।
3. उन स्थानों पर जहां पर पानी की कमी हो।
4. विशेष गर्मी या अन्य परिस्थितियों में फसल के बीच एक आर्द्र वातावरण पैदा करना।
5. जहां श्रमिक आसानी से उपलब्ध न हो।
6. सिंचाई के साथ–साथ यदि पोषक तत्व, बीमारी दशक तथा कीटनाशक दवाओं का छिड़काव करना हो।

- **ड्रिप/टपका सिंचाई** : ड्रिप सिंचाई में ट्यूब तथा उसमें बने छिद्रों से जल प्रत्येक पौधे की जड़ के पास बूंद–बूंद करके रिसता है ताकि पौधे के सक्रिय मूल क्षेत्र में जल संतृप्तावस्था तथा क्षेत्र क्षमता के बीच बना रहे। इससे न तो पौधों में जल की कमी प्रतीत होती है और न ही जल फिजूल खर्च होता है। क्योंकि केवल पौध का मूल क्षेत्र ही गीला रहता है तथा बाकी मृदा सूखी रहती है। इस विधि में सिंचाई के पानी में 40–80 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है पंक्तियों के बीच का स्थान सूखा रहता है। अतः वाष्पन से जल हानि नहीं होती तथा खरपतवार भी नहीं उगते हैं।

- **फसल अवधि में नमी का संचय**
  खरीफ में उगाई गई फसलों में यदि सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो भूमि में नमी का शोषण शीघ्रता से होता है। क्योंकि नमी वाष्पीकरण तीव्र गति से होने लगता है। अतः दो कतारों के बीच मृदा की गुडाई कर देना चाहिए। ऐसा करने से भूमि की ऊपरी सतह में एक ऐसा मल्च तैयार हो जाता है जिससे नमी के वाष्पीकरण में रुकावट आ जाती है।

- **उचित समय पर फसलों की कटाई**

  आमतौर पर यह देखा गया है कि इन क्षेत्रों के किसान फसलों की कटाई ऐसी अवस्था पर करते हैं जब फसल पूरी तरह सूख जाती हैं ऐसा करने से फसल के साथ–साथ नमी भी सूख जाती है। जिनके कारण खेत की जुताई आसानी से नहीं की जा सकती है। इस संबंध में यह सोचने की बात है कि फसलों को उस अवस्था में काट लिया जाए जब दाना भली भांति बन गया हो और केवल दानों की सूखने की क्रिया पूरी होनी हो। इस अवस्था को भौतिक परिपक्वता कहा जाता है। इस अवस्था पर फसलों को काटने से भूमि की उस नमी को बचाया जा सकता है जो फसल के सूखने के साथ–साथ नमी भी सूख जाती है। इस बचाई गई नमी की मात्रा इतनी होती है जिसके सहारे खेती की जुताई आसानी से की जा सकती है और बोये गए बीजों का जमाव भी सुनिश्चित किया जा सकता है। प्रायः सभी फसलों में यह अवस्था फसल को पूरी तरह सूखने से लगभग 20–25 दिन पहले आती है। इस दिशा में जो भी अनुसंधान किये हैं, उनके परिणाम यह साबित करते है कि खरीफ फसलों के इस अवस्था पर कटाई करने से रबी फसलों को उचित समय पर बुआई कर सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

खरपतवार

खरपतवार फसलों से पानी, पोषक तत्व, हवा, स्थान आदि हेतु प्रतिस्पर्धा कर उपज में 30–70 प्रतिशत तक उपज कम करते है। खरपतवारों के नियंत्रण पर विशेष ध्यान दिया जाए अन्यथा खरपतवारों द्वारा फसलों को उपलब्ध कराये गये पोषक तत्वों का शोषण प्रायः होता रहेगा और नमी तथा प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होगी, जिसका सीधा प्रभाव फसल उत्पादन पर पड़ेगा। खरपतवारों के पूर्ण नियन्त्रण के लिए निम्न बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देना होगा :–

- खरपतवार रहित फसलों के बीज और खादों का प्रयोग।
- फसलों की बुवाई कतारों में करनी चाहिए ताकि खरपतवार निकालेने में आसानी हो।
- खरपतवारों में बीज बन जाने की अवस्था से पहले ही उन्हें नष्ट करना चाहिए।
- ऐसी मशीनों या औजारों का प्रयोग न करे जिनका प्रयोग खरपतवार वाली फसल में पहले किया गया है ताकि खरपतवार के बीजों से फैलने से रोका जा सके।

सारणी 2 : विभिन्न फसलों की सिंचाई क्रान्तिक अवस्थाएं एवं सिंचाई प्रबंधन

फसल	सिंचाई के निर्धारित मापदंड			गहराई (सें.मी.)	संख्या	आवश्यकता (सेमी.)	क्रान्तिक आवस्था
	आई.डी.	सी.पी.ई.	अन्य				
गेहूँ	08–1.50	(0.9)	बौनी लंबी	4–7 7–8	4–8 3–4	30–52 25–30	क्रान्तिक जड़ प्रारम्भ, कल्ले फूटना, गांठे बनना, फूल आना, दाना पड़ना
जौ	0.5–0.9	(0.6)		4.5–8	2–6	15–24	कल्ले फूटना, दाना पड़ना
धान	1.0–1.4	(1.2)		5+2	8–26	49–129	प्रारम्भिक कल्ले फूटना, बाली आना, फूल आना, दाना पड़ना
मक्का	0.75–1.2	(0.9)		5–8	3–6	24–28	पौध अवस्था, फूल अवस्था

प्रतिपारदर्शी रसायनों का प्रयोग

मृदा नमी का ह्रास अनेक कारणों से होता है। पौधों द्वारा लगातार उत्स्वेदन की क्रिया से मृदा नमी कम होती रहती है। वे रसायन जो पौधों की उत्स्वेदन दर कम करते हैं। "प्रतिपारदर्शी" रसायन कहलाते हैं। ये रसायन निम्न प्रकार के होते है;

- रन्ध्रकूपों को बन्द करने वाले रसायन
- पत्तियों पर लेपन / परत बनाने वाले रसायन
- पत्तियों पर सूर्य प्रकाश का परावर्तन बढ़ाने वाले रसायन

पौधों की पत्तियों में लेपन बनाने वाले रसायनों तथा पत्तियों की परिस्थितियों में परावर्ती किस्म के रसायन सस्ते एवं आसानी से उपलब्ध होने के कारण अधिक उपयुक्त है। परावर्ती रसायनों में केओलिनाइट, कैल्शियम कार्बोनेट, मैग्नीशियम कार्बोनेट, जलीय चूना व जिंक सल्फेट मुख्य हैं। इस सभी रसायनों में भी केओलिनाइट सस्ता एवं अधिक उपयुक्त है। केओलिनाइट का घोल सफेद होने के कारण पत्तियों पर प्रकाश परावर्तन बढ़ा देता है। जिसके कारण पत्तियों द्वारा अवपोषण के लिये उपलब्ध विकिरण ऊर्जा की मात्रा घट जाती है। इस प्रकार पत्तियों का तापमान घट जाता है तथा उत्स्वेदन दर कम हो जाती है।

केओलिन के 5–6 प्रतिशत घोल की 1000 लीटर मात्रा प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग की जाती है। पत्तियों पर घोल की स्थिरता बढ़ाने के लिए 'टी पौल' की कुछ बूंदे घोल में डाल देते हैं। पौधों पर जब पत्तियों अधिक मात्रा में हो तब कम अवधि वाली फसलों में बुवाई के 25–30 दिन बाद व मध्य अवधि वाली फसलों में 40–60 दिन बाद, घोल का छिड़काव करना चाहिए।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में विभिन्न फसलों–मूंग, गेहूँ व सरसों आदि पर केओलिन का प्रयोग करके 12–30 प्रतिशत तक फसल की उपज में वृद्धि प्राप्त की गई।

प्रसंस्कृत गेहूँ उत्पाद की गुणवत्ता पर प्रभाव एवं नियंत्रण

कीर्तिमणि त्रिपाठी एवं सुखदेव सिंह

स.व.भ.प. के.वी.के., बुलन्दशहर

गेहूँ एक ऐसा अनाज है जिसका उपयोग दुनिया के लगभग प्रत्येक कोने में खाद्य सामग्री के रूप में किया जाता है। इस अनाज की खास बात यह है कि इसके इतने अनोखे उत्पाद हैं जो बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को भाते हैं। रोजमर्रा की बात करें तो गेहूँ के आटे की रोटी हम सभी लगभग रोज खाते हैं। अब बात यह आती है कि गेहूँ को हम इसके अलावा किस तरह से उपयोग कर सकते हैं ताकि इसकी गुणवत्ता को बढ़ाया जा सके। ग्रामीण स्तर पर देखें तो गेहूँ का उपयोग आटा, दलिया व मैदा के रूप में किया जाता हैं और यदि हम शहरी परिपेक्ष्य में देखें तो बिस्कुट, फ्लेक्स, केक, पफ्स इत्यादि में इस्तेमाल किया जाता है। इस लेख में गेहूँ को पकाने में क्या–क्या परिवर्तन आते हैं तथा इसकी गुणवत्ता को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है पर प्रकाश डाला गया है।

गेहूँ में जो प्रोटीन पाये जाते हैं उन्हें ग्लूटेन कहते हैं। इसमें उपलब्ध ग्लूटेनिन और ग्लाएडिन नामक तत्व अनाजों के कुछ व्यंजनों के लिए उपयुक्त होते हैं। ग्लूटेनिन प्रोटीन कुछ कड़ापन तथा रबर की तरह प्रभाव देता है तथा ग्लाएडिन खिंचाव या इलास्टिक का प्रभाव देता हैं। जब आटा गूंथा जाता है, ग्लूटेनिन एक पंक्ति में सीधे धागों की तरह हो जाता है तथा ग्लाएडिन के अणुओं के साथ मिलकर एक मजबूत खिंचावपूर्ण परत बना लेता है तथा स्टार्च के दानों को पूरी तरह ढक लेता है। इस तरह गूंथा हुआ आटा लचीला हो जाता है और रोटी,पूरी व पराठा बनाने के लिए उयुक्त हो जाता हैं। गेहूँ के अलावा किसी और अनाज में यह ग्लूटेन बनाने की प्रकृति नहीं होती है।

बेकरी के बने उत्पाद जैसे केक, बिस्कुट आदि में ग्लूटेन का बहुत महत्व है तथा इसकी निश्चित मात्रा में ही उत्पाद अच्छा बनकर तैयार होता है।

ग्लूटेन (लस) बनने की क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक

यांत्रिक क्रिया

यदि आटा भलीभांति न गूंथा गया हो तो उसमें ग्लूटेन उत्पन्न नहीं हो पाता तथा वायु को पकड़ने की क्षमता भी कम हो जाती है। इसी वजह से रोटी या ब्रेड भारी बनती है और घनत्व भी कम हो जाता है। अत्याधिक गूंथने से ग्लूटेनिन का लचीलापन कम हो जाता है और गूंथा आटा चिपचिपा एवं घनत्व भी कम हो जाता है।

प्रोटियोलिटिक किण्वक (एन्जाईम)

ये ऐसे एन्जाईमों का समूह है जो कि गेहूँ के आटे में उपस्थित होता है तथा प्रोटीन के जल अपघटक के उत्प्रेरण का कार्य करता है। ये जौ के आटे व खमीर में भी मौजूद होते हैं। यदि यह एन्जाईम अधिक मात्रा में मौजूद होते हैं तो अधिक जल अपघटन होता है और आटा चिपचिपा हो जाता है। यह एन्जाईम कम होने की दशा में भी आटा कड़ा और लचीलापन रहित हो जाता है।

ऑक्सीकरण हेतु कारक

ऑक्सीकरण काफी हद तक ग्लूटेन को प्रभावित करता है। पोटाशियम ब्रोमेट, पोटाशियम आयोडेट, गूथे हुए आटे के अनुकूलक हैं। क्लोरीन, क्लोरीन डाइऑक्साइड स्वाद को सुधारते हैं। यदि यह कारक आटे में मिलाये जाएं तो ग्लूटेन की मात्रा बढ़ जाती है। खमीरीकरण, ऑक्सीकरण तथा गूंथना आटे की प्रोटीन की जड़ों को प्रभावित करते हैं।

अन्य कारक

कच्चा दूध प्रोटियोलिटिक एन्जाईम को घटा देता है तथा आटे में मिलाने से चिपचिपा हो जाता है जो कि कुछ व्यंजनों के लिये तो अच्छा है और कुछ पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। किसी प्रकार का अम्ल आटे में मिलाने से भी ग्लूटेन प्रभावित होता है। सिरका मिलाने से आटे में हवा को बॉधे रहने की क्षमता कम हो जाती है। जब कि थोड़ी मात्रा में वसा मिलाने से यही क्षमता बढ़ जाती है।

अनाजों का स्टार्च

अनाजों में मुख्य कार्बोहाइड्रेट स्टार्च ही है। इसे यदि पानी में घोला जाए तो गाढ़ेपन की प्रवृति उत्पन्न करता है। यह पानी में घुलनशील एमाइलोज के कारण होता है।

कुछ स्टार्चों में एमाइलोज का प्रतिशत

स्टार्च	एमाइलोज (प्रतिशत)
मक्का	0
चावल	16
आलू	20
गेहूँ	22

अनाज पर नम ऊष्मा का प्रभाव

जिलेटिनाईजेशन

अनाज में मौजूद स्टार्च ठन्डे पानी में भली प्रकार नहीं घुलते, थोड़ी देर रखने पर नीचे बैठ जाते हैं। पानी को गर्म करने या घोल को गर्म करने पर स्टार्च पानी सोखने के कारण फूल जाते हैं तथा उनमें एक प्रकार का गाढ़ापन आ जाता है जिसे हम आम भाषा में लेई कहते हैं। इस 74 से 88 डिग्री से. पर गर्म करने पर जिलेटिनीकरण हो जाता है। यह पूरी तरह निर्भर करता है कि स्टार्च का रवा या दाना कितना बड़ा और छोटा है, जैसे आलू में कम तापमान पर भी जिलेटिनीकरण हो जाता है क्योंकि उसका दाना बड़ा होता है।

अनाज पर शुष्क ऊष्मा का प्रभाव

दक्षिकरण (डेक्सिट्रनाईजेशन)

जब आटे को सूखा भूना जाता है जैसे हम पंजीरी को भूनते हैं तो भी उसमें मौजूद स्टार्च के कड़ों पर प्रभाव पड़ता है तथा बाद में जब इसे पानी या दूध में घोला जाता है तो स्वाद में एक प्रकार का मीठापन प्रतीत होता है। आटे की गंध में भी एक प्रकार का परिवर्तन आता है। इस प्रक्रिया को दक्षिकरण कहते हैं। ज्यादा भूनने पर आटे में मौजूद स्टार्च को गाढ़ा करने की क्षमता कम हो जाती है।

अनाजों को पकाने पर पोषक तत्वों पर प्रभाव

ब्रेड बनाने पर लगभग 30 प्रतिशत विटामिन की हानि होती है। जो कि सुदृढ़ीकरण (फोरटीफिकेशन) द्वारा पूरी की जा सकती है। बिस्कुट और केक में तुलनात्मक रुप से कम से कम 10–15 प्रतिशत विटामिन की हानि होती है। धुलाई में कुछ पोषक तत्वों की हानि होती है। यह तो हम सभी जानते हैं कि कच्चे अनाजों के मुकाबले पके अनाज ज्यादा सुपाच्य होते हैं। अन्य अनाजों में मौजूद थायमीन, राइबोफ्लेविन भी दो बार धोने से कम हो जाते हैं।

आटा व मैदा आदि को पकाते समय ध्यान रखने योग्य बातें

ढेले या पिण्ड बनने से बचाव

सूखे आटे या मैदे को यदि सीधे गरम पानी में मिला दिया जाए तो छोटे पिण्ड या ढेले बन जाते हैं। जिससे घोल अपेक्षाकृत नहीं बनता। गरम पानी डालने पर बाहरी

परत सख्त हो जाती है और अन्दर सूखा आटा ही रहता है। जो कि छोटे पिन्डों के रूप में दिखाई देता है। इस पक्रिया को निम्न तरीकों से बचाया जा सकता हैं जैसे–

- **लगातार हिलाना** : धीरे–धीरे सूखे आटे को गर्म पानी या दूध में डालें और तेजी से लगातार हिलाते रहें ताकि जिलेटिनाइजेशन होने से पहले वह अच्छी तरह आपस में मिल जाए।
- **आटे की पपड़ी या रवा के रूप में उपयोग** : यदि सूखे आटे की जगह यानी महीन दानों के बजाय बड़े दानों का प्रयोग किया जाए तो फिर पिन्ड बनने की सम्भावना कम हो जाती है। दाने बड़े होने की वजह से तुरन्त जिलेटिनाइजेशन नहीं होते इसी वजह से पिन्ड जल्दी नहीं बनते। घोल को हिलाने का समय मिल जाता है।
- **गाढ़ा घोल बनाकर डालना** : यदि गरम पानी में डालने से पहले ठन्डे पानी में डालकर और अच्छी तरह मिलाकर गाढ़ा घोल बना लिया जाए और उसके बाद गरम पानी में डाला जाए तो पिण्ड बनने की सम्भावना कम रहती है।

तापमान को उबाल बिन्दु से कम रखना

यदि आटे को कम तापमान के पानी या दूध में घोला जाए तो भी पिन्ड बनने की सम्भावना कम रहती है।

- **वसा का उपयोग करना** : यदि आटे को घी में भून दिया जाय तो प्रत्येक कण के पास एक वसा की परत बन जाती है और गर्म पानी डालने पर पिन्ड बनने की सम्भावना कम हो जाती है।
- **शर्करा मिलाना** : चीनी के प्रयोग से भी जिलेटिनाइजेशन धीमा पड़ जाता है और पिन्ड बनने की प्रक्रिया भी धीमी पड़ जाती है।
- **सूखा भूनना** : जब स्टार्च के कणों को भूना जाता है तो दक्षिकरण की प्रक्रिया होती है। तब बाहरी कणों का जिलेटिनाइजेशन (लस बनना) कम हो जाता है इस प्रकार गरम पानी में डालने या मिलाने से पिण्ड कम बनते हैं।

पाकशास्त्र में गेहूँ की भूमिका

गेहूँ मुख्य आहार का अभिन्न अंग है तथा ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन की जरूरतों को पूरा करने वाला मुख्य श्रोत है। गेहूँ लगभग हम सभी के आहार का हिस्सा है तथा इसको खाने से संतुष्टि का भाव भी आता है।

गेहूँ का प्रयोग गाढ़ा करने के लिये किया जाता है जेसे मैदा घोलकर सूप को या मैक्रोनी के द्वारा सूप को गाढ़ा करना। गेहूँ के आटे का उपयोग ऊपरी आवरण की परत बनाने के लिए भी किया जाता है जैसे पकौड़े बनाने के लिए मैदे के घोल में डुबोकर तेल में सेंकना। मीठे के रूप में प्रयोग किया जाता है आटा जैसे आटे का हलवा, लडडू व पंजीरी आदि। तुरन्त आसानी से बनाए जाने वाले उत्पाद जैसे सेवई, नूडल्स, पास्ता, मैक्रोनी में गेहूँ के आटे का उपयोग होता है। भरवा वयंजन बनाने के लिए गेहूँ के आटे का उपयोग होता है जैसे विभिन्न तरह के भरवा पराठे, कचौरी, समोसे व पोरनपोली। गेहूँ को अंकुरित करके भी खाया जाता है, तथा यह बहुत पौष्टिक है। पूरी दुनिया में हजारों प्रकार से गेहूँ उपयोग किया जाता है। भारत में इसके विशेष रूप देखने को मिलते हैं।

रबी फसलों में समन्वित खरपतवार प्रबंधन

एस.आर. वर्मा[1], राजपाल मीना[2], हेमराज गुर्जर[3], एवं तारेश कुमार झा[4]

1. कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
2. भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
3. विज्ञान केन्द्र, बून्दी कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
4. ग्राह्य परीक्षण केन्द्र., छत्रपुरा बूंदी

देश खाद्यानों के लिए एवं कई औद्योगिक इकाईयाँ कच्चे माल के लिए कृषि पर निर्भर हैं। इसलिए खाधान्न उत्पादन में वृद्वि करना अतिआवश्यक हैं। खाधान्न फसलों में गेहूँ एवं जौ का महत्वपूर्ण स्थान है इसलिए गेहूँ एवं जौ को नुकसान पहुंचाने वाले कारक जैसे खरपतवार, कीड़े एवं बिमारियों का समुचित नियंत्रण करना आवश्यक है। खरपतवार, कीट एवं व्याधियों से हमारी फसलों को लगभग 1 लाख करोड़ रूपये की हानि प्रति वर्ष होती है परन्तु सर्वाधिक हानि खरपतवारों की उपस्थिति के कारण होती है। अकेले खरपतवार 37000 हजार करोड़ रूपये की वार्षिक क्षति पंहुचाते हैं। खरपतवार फसलों के साथ पोषक तत्व, जल, प्रकाश एवं स्थान आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करते है, साथ ही साथ ये फसलों के लिए हानिकारक रोग व कीटों को शरण देकर भी क्षति पहुंचाते हैं जिससे फसलों की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। खरपतवारों के कारण उत्पादकता में कमी के साथ–साथ फसल उत्पादों की गुणवत्ता में भी कमी आती है जिससे किसानों को उसके उत्पाद का सही बाजार मूल्य नहीं मिलता है अतः कृषकों को फसलों से भरपूर उपज लेने हेतु उन्नत बीज, संतुलित उर्वरक एवं सिंचाई प्रबन्धन के साथ ही खरपतवारों का सही समय पर नियंत्रण करना भी अतिआवश्यक है।

विभिन्न फसलों की पैदावार में खरपतवारों द्वारा 5 से 85 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। खरपतवार शुष्क पदार्थ एवं फसल उपज प्रति पौधे में नकारात्मक संबन्ध पाया गया है। खरपतवार फसलों की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं जोकि स्थान, प्रजाति, समय, खरपतवारों की सघनता, शस्य–जलवायुवीय स्थितियों एवं प्रबन्धन के स्तर आदि कारकों पर निर्भर करता है।

खरपतवारों से परोक्ष रूप से भी बहुत सी हानियां होती है जैसे फसलों के बीजों में गुणवत्ता में कमी, फसलों में रोग कीटों को शरण देना, दुधारू पशुओं से प्राप्त होने वाले खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता में कमी होना, फसल उत्पादन लागत मूल्यों में वृद्धि आदि। उन्नत किस्म के बीज, उपयुक्त उर्वरक, सिंचाई एवं फसल सुरक्षा के उपाय जैसे आधुनिक तरीकों को अपनाकर भी कृषक फसलों की भरपूर पैदावार नहीं ले पाते हैं जिसका मुख्य कारण है खरपतवारों का सही समय पर एवं उचित विधि द्वारा नियंत्रण नहीं कर पाना। अतः विभिन्न विधियों द्वारा खरपतवारों को नियंत्रण कर फसलों की अधिक उपज एवं लाभ लिया जा सकता है। खरपतवारों द्वारा होने वाली हानियों का वर्णन निम्न प्रकार है।

मृदा नमी पर प्रभाव

फसलों के पौधों की भांति खरपतवारों के पौधे भी मृदा से नमी का उपयोग करते हैं। कभी–कभी खरपतवारों की जल मांग मुख्य फसल की जल मांग से भी अधिक होती है। पी.सी. रेहजा के अनुसार शुष्क क्षेत्रों में ज्वार का जलोत्सर्जन गुणांक 430 है जबकि दूब का 313, कुन्दा (556) और टेफरोजिया परप्यूरिया का 1108 है।

मृदा में पोषक तत्वों पर प्रभाव

मृदा में विभिन्न पोषक तत्व जो फसल के पौधों के लिये उपयोगी होते हैं, खरपतवारों द्वारा औसतन 7–20 प्रतिशत तक ग्रहण कर लिये जाते हैं। विभिन्न अनुसंधान परिणामों के अनुसार खरपतवार 22–162 किग्रा. नत्रजन, 3–24 किग्रा. फास्फोरस एवं 21–203 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर तक अवशोषित कर लेते हैं। विभिन्न रबी खरपतवारों के पोधों में शुष्क भार के आधार पर 1.01–3.16 प्रतिशत नत्रजन, 0.06–1.63 प्रतिशत फास्फोरस एवं 1.32–4.51 प्रतिशत पोटाश की मात्रा पायी जाती है। रबी फसलों में खरपतवारों द्वारा मुख्य पोषक तत्वों का अवशोषण सारणी–1 में तथा खरपतवारों में मुख्य पोषक तत्व संगठन का विवरण सारणी–2 में दिया गया है।

फसलों की उपज पर प्रभाव

विभिन्न फसलों में खरपतवारों के द्वारा 10–80 प्रतिशत तक पैदावार में कमी आ जाती है। रबी फसलों में खरपतवारों द्वारा पैदावार में कमी का विवरण सारणी 3 में दिया गया है।

सारणी 1 : रबी फसलों में खरपतवारों द्वारा मुख्य पोषक तत्वों का अवशोषण

क्र. सं.	फसल	खरपतवारों द्वारा पोषक तत्व अवशोषण (कि.ग्रा./है.)		
		नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश
1.	गेहूँ	21.7	2.9	28.2
2.	गन्ना	162.2	23.8	202.9
3.	मसूर	71.0	14.0	105.0
4.	मटर	76.0	8.0	21.0

सारणी–2: रबी के विभिन्न खरपतवारों में पोषक तत्व संगठन (शुष्क भार के आधार)

क्र. स.	खरपतवार		पोषक तत्व संगठन (प्रतिशत)		
	सामान्य नाम	वानस्पतिक नाम	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश
1.	बथुआ	*चिनोपोडियम एल्बम*	2.59	0.37	4.34
2.	सत्यानाशी	*आरजीमोन मेक्सिकाना*	1.01	1.36	1.33
3.	हिरणखुरी	*कोन्वोल्वुलस आर्वेंसिस*	2.02	1.01	2.00
4.	सफेद सैंजी	*मेलिलोटस एल्बा*	2.45	1.53	1.85
5.	बैंगनी कंटेली	*सोलेनम जेंथोकारपम*	2.56	1.63	2.12
6.	जगंली चौलाई	*अमेरेन्थस वीरिडिस*	3.16	0.06	4.51
7.	दूब घास	*साइनोडोन डेक्टीलोन*	1.72	0.25	1.75
8.	मोथा	*साइप्रस रोटेन्डस*	2.17	0.26	2.73

सारणी 3 : विभिन्न रबी फसलों में खरपतवारों द्वारा उपज में कमी

फसलें	उपज में कमी (प्रतिशत)	फसलें	उपज में कमी (प्रतिशत)
खाद्यान्न फसलें		नगदी फसलें	
गेहूँ	20-40	गन्ना	20-30
जौ	10-30	आलू	30-60
दलहनी फसलें		तिलहनी फसलें	
चना	15-25	सरसों	15-30
मटर	20-30	सूरजमुखी	30-50
मसूर	20-30	कुसुम	35-60
		अलसी	30-40
		रामतिल	35-60

फसलों के गुणों पर प्रभाव

विभिन्न फसलों के दानों में तेल एवं प्रोटीन प्रतिशत में कमी हो जाती है। गन्ने के पौधे में चीनी की मात्रा कम हो जाती है एवं सब्जियों के गुणों पर भी कुप्रभाव होता है। चारे की फसल के गुण भी नष्ट हो जाते हैं। इन सभी कारणों से फसलों की कीमत गिर जाती है।

रोग एवं कीटों को आश्रय

खरपतवारों के पौधे, फसल के पौधों पर आक्रमण करने वाले विभिन्न कीट पतंगों व बिमारियों के जीवाणुओं को शरण देकर फसलों को हानि पहुंचाते हैं। गेहूँ, जौ व जई पर लगने वाली तने की रोली नामक बीमारी के रोगाणु जंगली जई व क्वैक घास पर शरण लेते हैं।

कृषि यन्त्रों एवं मशीनों पर प्रभाव

जिन खेतों में खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है उनकों नष्ट करने के लिये बार–बार जुताई व गुड़ाई करनी पड़ती है, जिसके कारण कृषि यन्त्र व मशीनों में घिसावट होती है।

भूमि की उत्पादकता पर प्रभाव

मृदा से खरपतवार पोषक तत्वों का ह्रास करके मृदा उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। कुछ खरपतवार मृदा में अपनी जड़ों द्वारा विषैले पदार्थ छोड़ते हैं जो आगामी फसलों के लिये बहुत हानिकारक होते हैं जैसे क्वेस घास की जड़ों से निकले हुये विषैले पदार्थ विशेष रूप से गेहूँ व मटर की फसलों के अंकुरण व वृद्वि पर कुप्रभाव डालते हैं।

कृषक की आय पर प्रभाव

खरपतवारों को नष्ट करने में अतिरिक्त धनराशि खर्च करने के साथ–साथ अतिरिक्त खाद व सिंचाई में भी व्यय होता है अतः खरपतवार कृषकों की आय को कम करते हैं।

नहर एवं सिंचाई की नालियों में पानी का ह्रास

खरपतवार नहरों एवं सिंचाई की नालियों में उगकर पानी के बहने में रूकावट डालते हैं तथा साथ ही साथ इनकी जड़ों के सहारे पानी रिसकर नष्ट होता रहता है। खरपतवार पानी का कुछ भाग स्वयं ग्रहण कर नष्ट करते हैं इससे सिंचाई क्षमता घटती है।

पशु उत्पादित पदार्थों पर प्रभाव

कुछ खरपतवार जैसे हुलहुल दुग्ध वाले पशुओं द्वारा खाने पर उनके दूध में एक विशेष प्रकार की अवांछित गंध आती है। भेड़ की ऊन में गोखरू चिपक जाने से उनके गुणों में कमी आती है। यदि धतुरा अनजाने में पशुओं द्वारा खा लिया जाये तो पशु की मृत्यु तक हो सकती है।

खरपतवार मनुष्यों के लिये हानिकारक

पशुओं के स्वास्थ्य के अतिरिक्त खरपतवार मनुष्यों की त्वचा में खुजली, चिड़चिड़ापन आदि रोग पैदा करते हैं। कभी–कभी खरपतवारों के ग्रहण करने पर मनुश्यों की मृत्यु भी हो सकती है। जैसे गाजर घास मनुश्यों के शरीर पर फफोले कर देते हैं ।

रबी फसलों के मुख्य खरपतवार एवं उनकी पहचान

रबी फसलों में फसल विशेश खरपतवार ही उगते हैं जिनका विवरण नीचे सारणी 4 में दिया गया है तथा उनकी पहचान एवं विशेशताओं का विवरण सारणी 5 में दिया गया है।

सारणी–4 : रबी फसलों में पाये जाने वाले मुख्य खरपतवार

क्र.स.	फसल	मुख्य खरपतवार
1.	गेहूँ एवं जौ	बथुआ, कृष्णनील, चटरी–मटरी, गेगला, मुनमुना, हिरनखुरी, सैंजी, प्याजी, मंडूसी या गेहूँसा, कंटीली, जंगली जई, मोथा व दूब घास आदि।
2.	चना, मटर एवं मसूर	बथुआ, कृष्णनील, चटरी–मटरी, गेगला, हिरनखुरी, गजरी, सैंजी, प्याजी, कंटीली, मोथा व दूब घास आदि।
3.	सरसों	ओरोबंकी (भुई फोड़), प्याजी, सैंजी, हिरनखुरी, मोथा व दूब घास आदि।

सारणी 5 : रबी फसलों के मुख्य खरपतवार एवं उनकी पहचान

क्र. स.	खरपतवार का नाम	वानस्पतिक नाम	पहचान
1.	गेहूँ का मामा / गुल्लीडंडा / गेहुँसा / मंडूसी	फैलेरिस माइनर	गेहूँ व जौ की फसल के पौधों से मिलता– जुलता नकलची खरपतवार है। इसके नीचे की गांठे हल्की लाल रंग की होती है। बालियां 3–6 से.मी. लम्बी, बीज काले व अण्डाकार तथा प्रसारण बीज द्वारा।
2.	बथुआ	चिनोपोडियम एल्बम	एक वर्षीय, चौड़ी पत्ती, 2–3 सें.मी. आकार की चिकनी पत्तियां। फूल व फल जनवरी में, बीजों द्वारा प्रसारण।
3.	खरबाथु	चिनोपोडियम मुरेल	वार्षिक, पत्तियां अधिक चौड़ी, बथुआ से लम्बे पौधे, पुश्प हरे गुच्छों में लगते हैं। प्रसारण बीज द्वारा।
4.	जंगली जई	एविना फटुआ	एक वर्षीय, संकरी पत्ती, औसतन 6000 बीज प्रति पौधा, गेहूँ, जौ, जई से मिलता जुलता नकलची खरपतवार।

5.	हिरणखुरी	कोन्वोल्वुलस आर्वेंसिस	पूरे वर्ष रहने वाला बहुवर्षीय, पत्तियाँ हिरण के खुर के समान, बेल के रूप में, जड़ें अधिक गहरी होती है। बेल के रूप में अन्य फसलों के तनों से लिपटा रहता है। प्रजनन बीज व जड़ द्वारा।
6.	कृष्णनील	एनागेलिस आरवेंसिस	चौड़ी पत्ती वाले, थोड़ा फैलने वाले शाकीय तने, छोटे चमकीले नीले फूल, प्रसारण बीज द्वारा।
7.	सत्यानाशी	आरजीमोन मेक्सिकाना	चौड़ी पत्ती वाले, पौधें की ऊँचाई 60 से 90 सें.मी. फूलों व फलों पर कांटे, तने से पीला रस निकलता है। बीज देखने में सरसों जैसा व प्रसारण बीज द्वारा।
8.	प्याजी	एस्फोडिलस टेन्यूफोलियस	एक वर्षीय, संकरी पत्तियां प्याज के जैसी, जड़ें पतली व रेशेदार।
9.	मोथा	साइप्रस रोटेन्डस	संकरी पत्ती वाला, बहुवर्षीय खरपतवार है तने के नीचे जडों में गाँठ होती है काटने पर बार–बार उग जाता है।
10.	चटरी–मटरी	लेथाइरस अफाका	तना कमजोर, आधार से टेंड्रिल्स निकलते है, जिनके सहारे यह अन्य पौधों के तनों से लिपट्कर ऊपर चढ़ता है। फूल पीले रंग के व प्रसारण बीज द्वारा।
11.	सफेद सैंजी	मैलिलोट्स एल्बा	एक वर्षीय, चौड़ी पत्ती, फूल सफेद रंग के, प्रजनन बीज द्वारा, चारे के लिए उपयोगी।
12.	पीली सैंजी	मैलिलोट्स इंडिका	एक वर्षीय, चौड़ी पत्ती, फूल पीले रंग के, प्रजनन बीज द्वारा, चारे में उपयोगी।
13.	बैंगनी कंटेली	सोलेनम जेंथोकारपम	तने सख्त भूमि पर फैलकर चलने वाले, तनों पर हल्के पीले रंग के कांटे, पत्तियां 5 से 10 से.मी. लम्बी, पत्तियों पर भी कांटे, फूल बैंगनी रंग के, प्रजनन बीज द्वारा।
14.	आग्या / बांदा / औरोबंकी	औरोबंकी एजिप्टियाना	तम्बाकू, टमाटर, बैंगन व सरसों में उगने वाला जड़ों का सम्पूर्ण पराश्रयी भूरे रंग का खरपतवार है जिसकी ऊँचाई 30 सें.मीं एवं प्रसारण बीज द्वारा।
15.	जंगली गोभी	लॉनिया एस्प्लेनिफोलिया	यह एक द्विवर्षीय खरपतवार है। तने लम्बे कमजोर, पत्तियां फैली हुई, पत्तियों के किनारें कटे–फटे, प्रसारण बीज द्वारा।
16.	जंगली पालक	रूमेक्स डेन्टाटस	काफी चौड़ी पालक जैसी पत्तियां होती हैं।
17.	मैना / जंगली रिजका	मेडीकागो डेन्टीकुलाजा	पौधे छोटे, फैलने वाले, तीन संयुक्त पत्तियों वाला तथा फलियां गोल होती हैं।
18.	गजरी / वनसोया / पित्तपापड़ा	फयूमेरिया पारविफलोरा	एक वर्षीय, तने फैलने वाले, अधिक शाखाएँ, पतियाँ बारीक गाजर जैसी कटी हुई ।

19.	कटैली	सिरसियंम आरवेन्स	बहुवर्षीय, पत्तियों पर नुकेले कांटे, किनारे कटे फटे, गुलाबी–बैगनी फूल ।
20.	दूब घास	साइनोडोन डेक्टीलोन	संकरी पत्ती वाला, बहुवर्षीय, पत्तियां लम्बी व सकरी, पतली तथा गांठों से जड़ें निकलती है जिससे भूमी पर तेजी से फैलती हैं।

खरपतवारों का नियंत्रण कब करें

प्रायः यह देखा गया है कि कीट व व्याधि लगने पर उनके निदान के लिये किसान तुरंत ध्यान देते हैं लेकिन खरपतवारों की ओर ध्यान नहीं देते हैं और उनकों जब तक बढ़ने देते हैं जब तक कि ये हाथ से पकड़कर उखाड़ने योग्य न हो जायें। कभी–कभी तो किसान खरपतवारों को पशुओं के चारे के रूप में उपयोग करते हैं तब तक खरपतवार फसल को नुकसान कर चुके होते हैं। फसलों की प्रारंभिक अवस्थाएं खरपतवारों के प्रति अधिक संवेदनशील होती है जिस अवस्था में यह प्रतिस्पर्धा सर्वाधिक होती है उसे ''क्रान्तिक अवस्था'' कहते हैं। यदि इस अवस्था पर खरपतवारों का नियंत्रण नहीं किया गया तो उसकी क्षति पूर्ति बाद में नहीं की जा सकती है। प्रमुख रबी फसलों में खरपतवारों की क्रान्तिक अवस्था सारणी 6 में दी गई है।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन

विभिन्न विधियों के संयुक्त प्रयोग द्धारा खरपतवारों का नियंत्रण करना एवं उनके द्धारा होने वाली हानि को आर्थिक स्तर से नीचे रखना समन्वित खरपतवार प्रबंधन कहलाता है। समन्वित खरपतवार प्रबन्धन में खरपतवारों व परिस्थितियों को देखते हुए किसी एक या एक से अधिक विधियों द्वारा खरपतवार नियंत्रण किया जाता है। समन्वित खरपतवार प्रबंधन का मुख्य उददेश्य सभी विधियों का सामंजस्य कर काम में लेना है ताकि फसलों को होने वाली हानि को कम करने के साथ–साथ पर्यावरण को भी क्षति नहीं पहुचें। खरपतवारों की रोकथाम में ध्यान देने योग्य बात यह है कि खरपतवारों का सही समय पर नियंत्रण किया जाये। खरपतवारों की रोकथाम निम्नलिखित विधियों से की जा सकती है।

सारणी 6 : विभिन्न रबी फसलों में फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रान्तिक समय

फसलें	क्रान्तिक समय (बुआई के बाद दिन)	फसलें	क्रान्तिक समय (बुआई के बाद दिन)
खाद्यान्न फसलें		नगदी फसलें	
गेहूँ	30-45	गन्ना	30-120
जौ	15-45	आलू	20-40
दलहनी फसलें		तिलहनी फसलें	
चना	30-60	सरसों	15-40
मटर	30-45	सूरजमुखी	30-45
मसूर	30-60	कुसुम	15-45
		अलसी	20-45

निरोधक विधि

इस विधि में वे क्रियायें शामिल की गई हैं जिनके द्वारा खेत में खरपतवारों को फैलने से रोका जा सकता है जो इस प्रकार हैं

1. साफ तथा खरपतवार रहित बीजों का ही उपयोग करना चाहिए।
2. गोबर की खाद या कम्पोस्ट को अच्छी तरह से सड़ा कर ही प्रयोग करें, जिससे उनमें उपस्थित खरपतवारों के बीजों की अंकुरण क्षमता समाप्त हो जाये।
3. प्रक्षेत्र मशीनों, कृषि यंत्रों का प्रयोग आवश्यक साफ–सफाई के बाद ही करना चाहिये।
4. रोपाई वाली फसलों की पौधशाला में ही खरपतवारों को उखाड़कर बाहर कर देना चाहिये।
5. खाली पड़ी भूमि, सिंचाई नालियों, नहरों, मेड़ों तथा सड़कों पर खरपतवार न उगने दें।
6. बीज बनने से पहले खरपतवारों को अवश्य नश्ट कर दें।

यांत्रिक विधियां

यह विधि खरपतवारों की रोकथाम की सबसे पुरानी प्रचलित, सरल व प्रभावी विधि है। इस विधि में खरपतवारों की रोकथाम हेतु विभिन्न यंत्रों व मशीनों का प्रयोग किया जाता है। यांत्रिक विधि के अन्तर्गत निम्न क्रियाऐं अपनायी जाती है।

भू परिष्करण

भू परिष्करण में वे सभी कर्षण क्रियाऐं शामिल होती हैं जो कि फसल के विकास व वृद्धि के लिये आवश्यक है। यह विधि खरपतवारों की रोकथाम में बहुत ही सहायक है। खेतों में समय–समय पर कर्षण कार्य जैसे जुताई एवं गुड़ाई करने से खरपतवार उखड़कर या टूटकर नष्ट हो जाते हैं। इस विधि के द्वारा वार्शिक तथा बहुवर्षीय खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है अतः खरपतवारों पर प्रभावी रोकथाम हेतु समय–समय पर जुताई व अन्य भूपरिष्करण करते रहना चाहिये। समय–समय पर जुताई करने से खरपतवारों के बीजों का अंकुरण प्रभावित होता है क्योंकि कुछ बीज अधिक गहराई पर चले जाने पर अंकुरण के पश्चात् मर जाते हैं तथा कुछ बीज सूखी मिट्टी में बाहर आ जाते हैं जिससे पर्याप्त नमी न मिलने पर अंकुरण नहीं होता है।

निराई–गुड़ाई

यह खरपतवार नियंत्रण की सर्वोत्तम विधि है। फसलों की प्रारंभिक अवस्था में बुवाई के 15–35 दिन के मध्य का समय खरपतवारों से प्रतियोगिता की दृष्टि से क्रांतिक समय है परिणामस्वरूप, प्रारंभिक अवस्था में ही फसलों को खरपतवारों से मुक्त करना लाभदायक होता है। बुवाई के 15–35 दिन के मध्य फसल की क्रांतिक अवस्था के अनुसार खुरपी या कुदाली द्वारा निराई–गुड़ाई करके खरपतवार निकालना चाहिये। इस विधि से न केवल खरपतवार नष्ट होगें बल्कि मृदा के वायु संचार में भी वृद्धि होगी। इस विधि से कतारों में बोई गई फसलों के खरपतवारों को सफलतापूर्वक नष्ट किया जा सकता हैं। रबी फसलों में निराई–गुड़ाई का उपयुक्त समय की विस्तृत जानकारी सारणी 7 में दी गई है।

सारणी 7 : विभिन्न रबी फसलों में निराई–गुडाई का उपयुक्त समय

क्र. स.	फसल का नाम	निराई–गुड़ाई का समय (दिनो में)
1.	गेहूँ	30.35
2.	चना	25.35
3.	सरसों	20.25
4.	अलसी	20.25
5.	सूरजमुखी	30.45
6.	राजमा	30.35
7.	गन्ना	30.40

हाथ द्वारा होइंग

इस विधि से खेतों में बड़े–बड़े आकार के खरपतवार नष्ट किये जाते हैं। हाथ द्वारा चलने वाले गुड़ाई के यंत्रों से खरपतवारों को काफी सीमा तक नियंत्रित किया जाता है। यह विधि कतारों में बोई गई फसलों में अधिक कारगर रहती हैं। फसल बोने के 15–35 दिन के मध्य दो कतारों के बीच हैंण्ड हो, व्हील हो, डोरा व द्वि व्हील चलाना चाहिये।

जलाना

इस विधि के द्वारा गर्मियों में खाली खेतों में खड़े खरपतवारों को आग लगाकर नष्ट किया जाता है। भूमि के अन्दर स्थित जड़ का प्रोटोप्लाज्म उच्च तापक्रम के कारण नष्ट हो जाता है जिससे भूमि के अन्दर स्थित पौधों के भाग पुनः नये पौधे को जन्म नहीं दे पाते। इस विधि द्वारा भूमि की सतह पर उपस्थित खरपतवारों के वानस्पतिक भाग व बीज जल कर नष्ट हो जाते हैं। खड़ी फसल में इस विधि का उपयोग कभी नहीं करना चाहिये तथा समीप के वृक्षों को आग से बचाना चाहिये।

मृदा सौरीकरण

खेत में एक ही फसल को लगातार लेते रहने के कारण विशेश खरपतवारों की संख्या में लगातार वृद्धि होती रहती है साथ ही इन खरपतवारों की रोकथाम हेतु रसायनों का उपयोग भी बढ़ता जाता है इसीलिए आजकल गैर रासायनिक विधियों के उपयोग पर बल दिया जा रहा है। ऐसी ही एक गैर रासायनिक विधि है मृदा का सौरीकरण जो गर्म जलवायु, शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रो में ज्यादा प्रभावशाली हो सकती है। गर्मी के दिनों में जब तापमान 40–50 डिग्री सेन्टीग्रेड तक पहुंच जाता हैं परन्तु खरपतवारों के बीज कठोर होने के कारण सुरक्षित रह जाते हैं अतः इस विधि से पतली पारदर्शी प्लास्टिक (पोली इथाईलीन) की परत (50 माइक्रोन) बिछाकर 10–20 दिनों के लिये भूमि का तापमान 15–20 डिग्री सेन्टीग्रेड बढ़ाया जाता है तथा बढ़े हुये तापक्रम से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। इस विधि का प्रयोग गर्मी के दिनों में माह अप्रैल–जून में करना चाहिये। इस विधि में पहले खेत को जोतकर समतल करने के बाद सिंचाई करनी चाहिये। एक या दो दिन बाद पारदर्शी पोली इथाईलीन की परत (50 माइक्रोन) से हवा की दिशा में ढक देना चाहिये तथा परत चढ़ने की अवधि गर्मी की प्रचण्डता को देखते हुये 10–20 दिनों तक रखते हैं।

शस्य विधियां

खेतों की ग्रीष्मकालीन जुताई

इस विधि में सर्वप्रथम हल्की मिट्टी में डिस्क प्लाऊ तथा मध्यम से भारी मिट्टी में एम.बी. प्लाऊ से गर्मियों में खेतों की गहरी जुताई कर खुला छोड़ देते हैं। गर्मियों में अधिक गर्मी से मृदा के तापमान में वृद्धि होती है जिससे कई खरपतवार जलकर नष्ट हो जाते हैं तथा उनके बीजों की अंकुरण क्षमता नष्ट हो जाती है और आगामी फसलों में खरपतवार नहीं उगते हैं। कुछ नकारा खरपतवारों जैसे दूबघास, मोथा व कांस आदि की जड़ें व वानस्पतिक भाग खेतों की गहरी जुताई करने से उखड़ कर नष्ट हो जाते हैं।

ग्रीष्मकालीन जुताई

समय पर कर्षण क्रियाएँ

उपयुक्त समय पर जुताई करने से भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। जैसे फसल कटने के तुरंत बाद गहरी जुताई कर देना चाहिये। इस विधि से काफी सख्यां में खरपतवारों की रोकथाम की जा सकती है।

बुवाई की विधि

बुवाई हमेशा कतारों में करना चाहिये ताकि दो कतारों के बीच में निराई–गुड़ाई व अन्य कर्षण क्रियाऐं करने में आसानी रहे और खरपतवारों का प्रभावी ढंग से नियंत्रण किया जा सके। उपयुक्त विधि से बुवाई करने पर पौध संख्या पर्याप्त रहती है तथा पौधे प्रारम्भ से ही ठीक से वृद्धि करने लगते हैं और उनमें खरपतवारों से प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता बढ़ती है। गेहूँ में आड़ी तिरछी विधि (क्रिस–क्रॉस बुवाई) बुआई करने पर खरपतवारों का प्रभाव कम होता है।

बुवाई का समय

फसल को ऐसे समय पर बुवाई की जाये कि खरपतवारों के निकलने से पहले ही खेत को ढक ले या खरपतवारों को एक बार पहले उगने देवे, फिर जुताई कर नष्ट करने के बाद फसल की बुवाई थोड़ी देर बाद करें। अतः परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त बुवाई के समय में हेर–फेर करने से खरपतवारों से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है। इससे खरपतवार प्रतिस्पर्धा नहीं कर पायेंगे तथा फसल सरलता से बढ़कर बाद में उगने वाले खरपतवार को हानिकारक नहीं होने देती है।

उपयुक्त बीज दर व दूरी

बीज दर व दूरी का खरपतवारों की वृद्धि पर बहुत असर पड़ता है। कतारों की दूरी कम होने पर फसल छायादार रहेगी जिसके कारण प्रकाश तथा वायु भूमि पर नहीं पहुंचेगा और खरपतवार प्रकाश की अनुपस्थिति में वृद्धि नहीं कर पाते हैं। इसी प्रकार यदि बीज की मात्रा बढ़ा दी जाये तो पौधों की आपस की दूरी कम हो जायेगी और खरपतवारों को प्रकाश व वायु नहीं मिल पायेगी जिससे खरपतवारों की वृद्धि कम होगी। गेहूँ की कतारों की दूरी 15 से.मी. दूरी करने से खरपतवारों की वृद्धि पर विपरीत असर पड़ता है। गेहूँ में बीज की मात्रा 125 किग्रा प्रति हैक्टर करने पर खरपतवारों के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

उपयुक्त फसल–चक्र

उपयुक्त फसल–चक्र अपनाना ही खरपतवार नियंत्रण की एक आधारभूत विधि है। फसल–चक्र में फसलों को बदल–बदल कर लेने से खरपतवारों की वृद्धि व प्रजनन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। फसल–चक्र में दलहनी फसलें जैसे चना, मसूर एवं मटर आदि शामिल करने से खरपतवारों पर प्रभाव तो कम होगा साथ ही भू–क्षरण भी बचेगा और मृदा उर्वरकता बढ़ेगी। एक ही फसल को बार–बार खेत में लेने से उस फसल के खरपतवारों का प्रकोप बढ़ जाता है। जैसे एक ही खेत में बार–बार गेहूँ की फसल लेने से बथुआ व गेहूँ का मामा का प्रकोप बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप कुछ समय बाद इनकी संख्या इतनी बढ़ जाती है कि उस खेत में गेहूँ की फसल लेना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं रहता है। अतः ऐसे खेत में विपरीत स्वभाव वाली फसल उगाने से वह खरपतवार कम होते हैं। जैसे–जिस खेत में गेहूँ का मामा (फेलिरस माइनर) तथा जंगली जई (ऐवेना फटूवा) अधिक हो तो उस खेत में बरसीम या सरसों लगाने से लाभ होता है।

उपयुक्त उर्वरक प्रबंधन

खरपतवार फसलों में दिये गये पोषक तत्वों के लिये प्रतिस्पर्धा करते हैं। यदि उर्वरक उचित समय व विधि से नहीं दिये जाते हैं तो उर्वरको का अधिकतम हिस्सा खरपतवार ग्रहण कर लेते हैं और इस स्थिति में अधिक वृद्धि कर फसल को हानि पहुंचाते हैं अतः उर्वरक छिटकवा विधि की अपेक्षा कूंड में बीज के नीचे देना

उचित रहता है। यदि उपयुक्त विधि से उर्वरक दिया गया हो तो फसल के पौधे प्रारम्भिक लाभ उठा लेते हैं तथा उर्वरकों के कारण पौधों में वानस्पतिक वृद्धि अधिक होने लगती है और बाद में उगने वाले खरपतवार दब जाते हैं।

उपयुक्त सिंचाई व्यवस्था

उपयुक्त सिंचाई व्यवस्था खरपतवारों की रोकथाम में सहायक हो सकती है। यदि खरपतवारों को पर्याप्त नमी मिलती है तो यह वृद्धि कर फसल से अधिक प्रतियोगिता करते हैं। सिंचाई विधियां भी खरपतवारों की सघनता को प्रभावित करती है। बूंद–बूंद सिंचाई विधि से सिंचाई करने पर थाला विधि की अपेक्षा खरपतवारों की रोकथाम ज्यादा अच्छी होती है क्योंकि बूंद–बूंद सिंचाई से पानी पौधे की जड़ों के पास दिया जाता है और बाकी का खेत सूखा रहता है इस तरह से खरपतवार बिना नमी के पनप नहीं पाते हैं।

रासायनिक विधियां

यदि यांत्रिक एवं सस्य क्रियाओं द्वारा प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों जैसे लगातार वर्षा होने या समय पर मजदूरों के न मिलने के कारण अधिक क्षेत्रों में श्रमिकों द्वारा खरपतवार निकालना संभव नहीं होता है ऐसी परिस्थितियों में रासायनिक विधि ही कारगर है। खरपतवारनाशकों द्वारा खरपतवारों के नियंत्रण में कम लागत, समय की बचत तथा अधिक क्षेत्र में आसानी से नियंत्रण संभव हो जाता है। खरपतवारनाशी दवायें खरपतवारों को उगते ही शीघ्र नष्ट कर देती हैं जिससे उनकी पुनः वृद्धि एवं फूल व बीज नहीं बनने से प्रसारण नहीं हो पाता है जिससे अगले वर्ष फसलों में खरपतवारों का प्रकोप काफी कम हो जाता है। खरपतवारनाशी रासायनों का प्रयोग करते समय ध्यान रखना चाहिए कि सिफारिशनुसार उचित मात्रा में, सही विधि एवं उपयुक्त समय पर प्रयोग करें अन्यथा गलत तरीके से प्रयोग करने पर फसलों को नुकसान हो सकता है।

विभिन्न फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु अलग–अलग खरपतवारनाशक दवाओं की सिफारिश दी गयी हैं। उपरोक्त खरपतवारनाशक दवाओं को मुख्यतयाः तीन वर्गों में विभक्त किया गया है तथा उनकी मात्रा व उपयोग सम्बन्धी विवरण सारणी 8–13 में विस्तृत रुप से दी गई है।

बुवाई से पूर्व प्रयुक्त खरपतवारनाशी (पी.पी.आई.)

इस प्रकार के खरपतवारनाशी बुवाई से पूर्व खेत की अंतिम जुताई के समय छिड़काव कर भूमि में मिला दिये जाते हैं जो कि खरपतवारों के बीजों को उगने से रोकते हैं या कुछ उग भी जाते हैं तो शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इनका प्रयोग नैपसेक स्प्रेयर, पावर स्प्रेयर एवं ट्रैक्टर माउन्टेड स्प्रेयर से भी किया जा सकता है। ध्यान रहे कि ये ज्यादातर उड़नशील प्रकृति के होते हैं अतः इन्हें छिड़काव के साथ ही या तुरन्त पश्चात् भूमि में जुताई द्वारा अच्छी तरह मिलाना अति आवश्यक है अन्यथा इनका प्रभाव कम हो जाता है। जैसेः फ्लूक्लोरेलीन व ट्राईफ्लूरेलीन इत्यादि।

अकुंरण पूर्व एवं बुवाई के तुरन्त बाद प्रयुक्त खरपतवारनाशी (पी.ई.)

इस प्रकार के खरपतवारनाशी बुवाई के तुरन्त बाद (24–36 घण्टे तक) एवं अंकुरण से पूर्व प्रयोग में लिए जाते हैं। चूंकि खरपतवार फसल से पहले उग आते हैं अतः यह उगते हुए या उगे हुए खरपतवारों को नष्ट कर देते हैं तथा अन्य खरपतवारों को उगने से रोकते हैं। इन खरपतवारनाशकों के प्रयोग के समय भूमि में नमी होना अतिआवश्यक है जिससे इनकी क्रियाशीलता बढ़ जाती है। यह चयनित प्रकार के होते हैं अतः फसल को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं। जैसेः पेन्डीमेथालीन, एलाक्लोर व एट्राजीन इत्यादि ।

अंकुरण पश्चात् खड़ी फसल में प्रयुक्त खरपतवारनाशी (पी.ओ.ई.)

इस प्रकार के खरपतवारनाशी फसल उगने के पश्चात् खड़ी फसल में छिड़के जाते हैं। यह चुनिंदा प्रकार के होते हैं जो खरपतवारों को विभिन्न रासायनिक क्रियाओं द्वारा नष्ट करते हैं तथा फसल को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं। कई बार लगातार बुवाई की प्राथमिकता होने या लगातार बारिश होने या किन्ही अन्य कारणों से बुवाई पूर्व (पी.पी.आई.) या अंकुरण पूर्व (पी.ई.) खरपतवारनाशकों का प्रयोग नहीं किया जा सके तो बुवाई पश्चात खड़ी फसलों में (पी.ओ.ई.) खरपतवारनाशकों का प्रयोग कर सकते हैं। चूंकि यह खरपतवारनाशक खड़ी फसल में प्रयुक्त होते हैं अतः इनके प्रयोग में कुछ विशेष सावधानियाँ रखनी चाहिए जैसे विशिष्ट खरपतवारों के लिए सिफारिशनुसार उचित खरपतवारनाशक की सही मात्रा, सही समय पर एवं सही विधि द्वारा छिड़काव करें अन्यथा फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। खड़ी फसल में खरपतवारनाशकों का प्रयोग करते समय चिपकने वाला पदार्थ (सरफेक्टेन्ट) जैसे–साबुन, शैम्पू, सेन्डोवीट या धानुवीट आदि का 0.5 प्रतिशत (500 मिलीलीटर प्रति हैक्टर) को मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवारों की सम्पूर्ण पत्तियों पर फैलकर चिपक जाते हैं एवं उनकी क्रियाशीलता को बढ़ाते हैं। इस प्रकार खरपतवारनाशकों के साथ "सरफेक्टेंट'' मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण होता है। यह ध्यान रखें कि स्प्रेयर की टंकी में पहले खरपतवानाशक मिलायें तथा बाद में सरफेक्टेंट को डाल कर छिड़काव करें। जैसेः 2,4–डी, मेटसल्फूरोन मिथाइल, सल्फोसल्फ्यूरान, क्यूजालोफोप इथाईल, क्लोडीनोफोप व इमाजिथापायर इत्यादि फसल विशेश खरपतवारनाशक हैं।

खरपतवारनाशी की मात्रा कैसे ज्ञात करें

कई बार कृषकों को खरपतवारनाशकों की सही मात्रा ज्ञात करने में परेशानी होती है अतः स्वयं किसान भी सूत्र के द्वारा सही मात्रा ज्ञात कर सकते हैं। खरपतवारनाशक के डिब्बे पर उसकी सान्द्रता (प्रतिशत) ई.सी., डब्ल्यू.पी., जी.एस.पी., डब्ल्यू.एस.पी., एल. या एस.एल. के रूप में लिखी रहती है। इनकी सान्द्रता को ध्यान में रखकर निम्नलिखित सूत्र द्वारा सही मात्रा की गणना की जा सकती है।

खरपतवारनाशक के प्रयुक्त किये जाने वाले दवा की मात्रा

$$\text{खरपतवारनाशक की व्यापारिक मात्रा (किग्रा. या लीटर प्रति है.)} = \frac{\text{सक्रिय तत्व कि.ग्रा. प्रति है.}}{\text{खरपतवारनाशक की सान्द्रता (प्रतिशत)}} \times 100$$

उदाहरण– गेहूँ की फसल में चौड़ी पत्ती कुल के खरपतवारों के नियत्रंण हेतु मेटसल्फूरॉन 20 प्रतिशत ड़ब्ल्यू पी नामक खरपतवारनाशक की 4 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से कितनी व्यापारिक मात्रा की जरूरत पड़ेगी।

$$= \frac{4}{20} \times 100 = 20 \text{ ग्राम प्रति हैक्टर}$$

छिड़काव से संबंधित सावधानियाँ

खरपतवारनाशी आधुनिक कृषि विज्ञान की परम आवश्यकता है लेकिन वे एक प्रकार के जहर हैं अतः इनके प्रयोग में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। जिस प्रकार यह खरपतवारों व अन्य जीवों के लिए घातक है उसी प्रकार मानव शरीर पर भी इनका कुप्रभाव पड़ता है। इस प्रकार ये रसायन जो कृषि के लिए वरदान सिद्ध हो रहे हैं, असावधानी और अज्ञानतापूर्वक प्रयोग करने पर प्राणघातक भी सिद्ध हो सकते हैं। अतः खरपतवार–नाशकों के छिड़काव में कतिपय सावधानियों की आवश्यकता होती है साथ ही उचित प्रकार के छिड़काव यंत्र काम में लेने से इनका प्रयोग अधिक प्रभावी व सुगमता से किया जा सकता है। जिससे खरपतवारनाशी रसायनों की कम मात्रा भी अधिक प्रभावी होती है।

फसल	खरपतवारनाशी	सक्रिय तत्व मात्रा (ग्राम/है.)≠	व्यापारिक उत्पाद मात्रा (ग्राम/है.)	प्रयोग का समय	खरपतवारों का नियंत्रण
गेहूँ	पेन्डीमेथालीन (30 ई. सी.)	1000	3325	अंकुरण से पूर्व	घास एवं चौड़ी पत्ती के खरपतवार
	मेटसल्फूरोन मिथाइल (20 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.)	4–6	20–30	बुआई के 30–35 दिन बाद	सिरसियंम आरवेन्स और रुमेक्स सहित केवल चौड़ी पत्ती के खरपतवार
	क्लोडीनोफोप (15 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.)	60	400	बुआई के 30–35 दिन बाद	संकरी पत्ती के खरपतवार
	मैट्रीब्यूजिन (70 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.)	150–200	210–280	बुआई के 30–35 दिन बाद	सभी प्रकार के (संकरी व चौड़ी पत्ती) खरपतवार
	मेटाक्सिरॉन (80 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.)	750–1250	940–1560	बुआई के 30–35 दिन बाद	घास एवं चौड़ी पत्ती के खरपतवार
	सल्फोसल्फ्यूरान (75 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.)	25	33	बुआई के 30–35 दिन बाद	संकरी पत्ती (जंगली जई, गुल्ली डंडा) तथा अन्य चौड़ी पत्ती के खरपतवार
	मेथाबेन्जथायोजूरॉन (70 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.)	750–1250	1070–1780	बुआई के 30–35 दिन बाद	संकरी पत्ती के खरपतवार (जंगली जई, गुल्ली डंडा)
	फिनोक्साप्रोप इथाईल (10 ई.सी.)	100–120	1000–1200	बुआई के 30–35 दिन बाद	घास कुल विशेषकर जंगली जई
	ट्रालकोक्सीडीम (10 ई.सी.)	340	3400	बुआई के 30–35 दिन बाद	केवल संकरी पत्ती के खरपतवार
जौ	2,4–डी ई ई (34 प्रतिशत ई. सी.)	500	1470	बुआई के 30–35 दिन बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
	2,4–डी अमाइन साल्ट (72 प्रतिशत डब्ल्यू. एस.सी.)	750	1040	बुआई के 30–35 दिन बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार

आइसोप्रोटूरॉन (50 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.)	750–1250	1500–2500	बुआई के 30–35 दिन बाद	संकरी पत्ती के खरपतवार (जंगली जई, गुल्ली डंडा)
मेथाबेन्जथायोजूरॉन (70 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.)	750–1250	1070–1780	बुआई के 30–35 दिन बाद	संकरी पत्ती के खरपतवार (जंगली जई, गुल्ली डंडा)

≠ हल्की मृदा हेतु कम सान्द्रता तथा भारी मृदा हेतु अधिक सान्द्रता का प्रयोग करें।

छिड़काव यंत्रों के प्रयोग में सावधानियाँ

छिड़काव यंत्र के उचित प्रयोग एवं सावधानी के अभाव में मनुष्य के स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल असर पड़ता है अतः फसलों में खरपतवारनाशियों के छिड़काव के लिए उपयोगी यंत्रों का चयन, रखरखाव तथा सावधानियाँ अत्यंत आवश्यक है। छिड़काव से पहले, छिड़काव के समय व छिड़काव के बाद भी कई प्रकार की सावधानियों की आवश्यकता होती है।

छिड़काव की दिशा

खरपतवारनाशी का छिड़काव से पहले यह पता लगाना जरूरी है कि हवा की दिशा क्या है। इसके बाद जिस दिशा से हवा आ रही है उसी छोर से छिड़काव शुरू करना चाहिए। वायु के विपरीत दिशा में छिड़काव न करें ताकि रसायन शरीर पर न गिरे।

छिड़काव के समय मौसम संबंधी सावधानियाँ

खरपतवारनाशी रसायनों के छिड़काव के समय मौसम का अनुकूल होना अतिआवश्यक है अन्यथा खरपतवारनाशी व्यर्थ ही चला जायेगा। छिड़काव के समय निम्न प्रकार का मौसम अनुकूल माना जाता है।

- छिड़काव के समय कभी भी तेज हवा नहीं होनी चाहिए। तेज हवा के कारण दवा की बारीक बूंदें उडकर दूसरी जगह चली जाती है।
- वातावरण में तापमान व धूप अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा रसायन की बूंदे वाष्प बनकर उड़ जाएगी। अतः सायं का समय छिड़काव कार्य के लिये सर्वोत्तम होता है क्योंकि इस समय वातावरण का तापमान, धूप व हवा की गति कम होती है।
- सर्दियों में सुबह के समय अधिक ओस रहती है ऐसे समय में भी छिड़काव नहीं करना चाहिए। इससे खरपतवारनाशी ओस की बूंदों के साथ मिलकर जमीन पर गिर जायेगा।

छिड़काव यंत्रों के उपयोग में सावधानियाँ

यदि छिड़काव करते समय तथा बाद में उचित सावधानियाँ बरती जाए तो जन हानि नहीं होगी। खरपतवारनाशी छिड़काव यंत्रों के उपयोग के दौरान सावधानियों को निम्न वर्गों में बांटा गया है:–

प्रयोग से पूर्व सावधानियाँ

- खरपतवारनाशी के उपयोग से पहले उस पर लिखी अंकित अवधि की जांच करें। अवधि पार खरपतवारनाशी का उपयोग कभी भी न करें क्योंकि इनका असर कम हो जाता है एवं खरपतवार मरने की सम्भावना भी कम हो जाती है।
- खरपतवारनाशी के डिब्बे पर लिखें निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़ें व समझें। किसानों की जानकारी के लिए डिब्बे पर बने पैरलेलोग्राम (ऊपर एवं नीचे बने हुए त्रिभुज) से जहर की तीव्रता का पता चलता है। ऊपर के त्रिभुज में जहर की तीव्रता को शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है जबकि निचले त्रिभुज में चार निम्न तरह के रंग भरे होते हैं जैसे–लाल रंग

अत्याधिक, पीला रंग अधिक, नीला रंग मध्यम एवं हरा रंग कम जहरीला होने की सूचना देता है।

- हमेशा निर्देशित मात्रा का ही उपयोग करें। अधिक मात्रा में उपयोग करने से वह फसल को नुकसान पहुंचा सकता है।

प्रयोग के दौरान सावधानियाँ

- खरपतवारनाशी मिलाते समय शरीर के किसी कटे भाग में स्पर्श नहीं होना चाहिये।
- खरपतवारनाशी को हमेशा खुली जगह पर ही मिलाना चाहिये।
- घोल सदैव साफ बर्तन में बनाएं।
- खरपतवारनाशी रसायन की संस्तुत मात्रा को 500–600 लीटर पानी में प्रति हैक्टर की दर से मिलाकर फ्लेट फैन नोजल से छिड़काव करें।
- खरपतवारनाशियों का छिड़काव करते समय सक्रिय तत्व की मात्रा व खरपतवार नियंत्रण की क्रांतिक अवस्था का ध्यान रखें।
- टंकी में उचित दबाव बनाने लिए उसे तीन चौथाई भाग तक ही भरें।
- छिड़काव पूरे खेत में समान रूप से करें।
- खरपतवारनाशी का छिड़काव करते समय सिर पर टोपी, आंखों पर चश्में, मुंह पर मास्क, हाथों में दस्ताने (प्लास्टिक या रबर के), पैरों में बूट, फुल आस्तीन की शर्ट व पैंट तथा ऐप्रेन पहनना चाहिये।
- दवाई के खाली डिब्बे को घर वापस न लायें। खाली डिब्बे को खेत में सुरक्षित गहराई पर गाड़ देना चाहिए।
- छिड़काव के दौरान किसी प्रकार का धूम्रपान, तम्बाकू व गुटखा आदि का उपयोग न करें।
- छिड़काव करते वक्त ध्यान रखें कि दवाई के छींटे आस–पास की फसलों या जीव जन्तुओं पर ना जाए।
- छिड़काव पूर्ण होने के तुरन्त बाद साबुन से अच्छी तरह पहने गये कपड़ों एवं हाथों को साफ करे।
- छिड़काव करते समय यदि नोजल में कोई कचरा फंस जाए तो उसे मुह से फूंक मारकर कदापि साफ न करें।

इस कार्य हेतु कोई पिन या बारीक सुई से ही साफ करें।

- छिड़काव करते समय कभी भी पसीने की शर्ट को बांह या दस्ताने से न पोछें।
- छिड़काव के समय किसी प्रकार की घबराहट, बैचेनी, उल्टी, चक्कर आना व खुजली चलने आदि शिकायत होने पर तुरन्त चिकित्सक से सम्पर्क करें। प्रभावित व्यक्ति को हवादार और छाया में लिटाकर उसके मुँह पर बंधा कपड़ा हटा दें। डॉक्टर के आने पर उसे खरपतवार दवाई का लेबल व साहित्य पूरा दिखाएं।

प्रयोग के बाद की सावधानियाँ

- स्प्रेयर की सफाई सुरक्षा किट पहन कर ही करें।
- स्प्रेयर को कभी–भी पानी की नहर एवं तालाब में साफ न करें।
- सुरक्षा किट की भी सफाई करें तथा ध्यान रहे कि कोई अन्य व्यक्ति उसके हाथ न लगाए।
- छिड़काव के बाद जिस खेत में छिड़काव किया गया है उसमें बोर्ड लगा दें जिससे पता रहे कि खरपतवारनाशक रासायन का प्रयोग हुआ है।
- हमेशा खरपतवारनाशी रसायन के लिए संस्तुत एण्टीडोट का परचा सम्भाल कर रखें।
- खरपतवारनाशी रसायनों के छिड़काव में फसल चक्र का ध्यान रखें।
- खरपतवारनाशी व पौध संरक्षण रसायनों के उपयोग हेतु अलग–अलग स्प्रेयर का प्रयोग करें।
- कभी भी उर्वरकों व अन्य रसायनों को खरपतवारनाशियों के साथ मिलाकर छिड़काव नहीं करें।

- खरपतवारनाशी के द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण करते समय लाभ–लागत अनुपात की गणना करके ही उपयोग करें।

छिड़काव यंत्रों की देखभाल तथा रख–रखाव

सामान्यतः किसान द्वारा देखभाल तथा रख–रखाव में कमी होने के कारण व अज्ञानतावश स्प्रेयर जल्दी खराब हो जाते हैं। ठीक करवाने से धन, समय तथा फसल आदि सभी का नुकसान काश्तकार को उठाना पड़ता है। यदि काश्तकार निम्न बिन्दुओं का ध्यान समय–समय पर करें तो आर्थिक हानि से बच सकते हैं।

- किसी भी यंत्र को उपयोग में लाने से पूर्व यह देखें कि उनके कल पुर्जों के सभी जोड़ ठीक से कसे हों।
- आपस में रगड़ कर चलने वाले सभी पूर्जों को निर्धारित मात्रा में तेल या ग्रीस दिया जाना चाहिए।
- यंत्रों में लगने वाले पट्टे, बेल्ट, कमानी आदि के कसाव की जांच करना चाहिए ।
- दवा का घोल सदैव साफ पानी में बनाना चाहिए।
- टंकी में दवा का घोल डालते समय छलनी या महीन सूती कपड़े का प्रयोग करना चाहिए।
- स्प्रेयर को प्रयोग में लाने से पूर्व पम्प, हॉज पाइप, बूम, कट ऑफ वाल्व तथा नोजल की टूट–फूट की जाँच कर लेनी चाहिए तथा एक बार पानी डालकर चलाकर देख लेना चाहिए।
- छिड़काव करने से पूर्व नोजल को साफ तथा ढीला कर लेना चाहिए।
- छिड़काव पूरा हो जाने के पश्चात कभी–भी स्प्रेयर में दवा का घोल नहीं छोड़ना चाहिए।
- कृषि यंत्रों को उपयोग करने के बाद छायादार स्थान पर रखना चाहिए।
- स्प्रेयर को यदि लम्बी अवधि के लिए भण्डार में रखना है तो जोड़ों में थोड़ा सा ग्रीस अवश्य लगाना चाहिए।

रबी फसलों के लिए बीजोपचार

अनिता मीणा, रेखा मलिक, सोनिया श्योराण, राज पाल मीना, अनुज कुमार,
आर.एस. छोकर एवं आर.के. शर्मा

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

वर्तमान परिदृश्य

किसानों के पास पहुँचने वाला 70% बीज अनुपचारित होता है। इस तरह बीज का बड़ा प्रतिशत अनुपचारित है भले ही वह बीज निजी या सार्वजनकि एजेंसियों से मिले। जबकि विकसित देशों में शत प्रतिशत उपचारित बीज बोया जाता है।

बीज उपचार से न केवल बीज और मृदा जनित बिमारियों से बचाया जा सकता है बल्कि फसल की प्रारंभिक विकास को प्रभावित करने वाले रस चूसने वाले कीटों से भी बचाया जा सकता है। देश के अधिकतर किसान इस सामान्य प्रकिया से अनभिज्ञ हैं जिनके कारण कम खर्चीले उपाय होने के बावजूद इसका उपयोग नहीं कर पाते हैं।

बीजोपचार

बीजोपचार एक महत्वपूर्ण क्रिया है जो बीज व पौधे को मृदा एवं बीज जनित बिमारियों व कीटों द्वारा होने वाले नुकसान से बचाता है। हालांकि भारत में बहुत से किसान

या तो बीजोपचार के बारे जानते ही नहीं या फिर इसको अपनाते नहीं हैं।

बीजोपचार संभावित रोग कीट प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। किसानों द्वारा इस महत्वपूर्ण कार्य को अपनाने के लिए पूरे देश में प्रचार–प्रसार की आवश्यकता है जिसमें कीट व रोग नाशक रासायनों, जैविक नियन्त्रण में शोध वृद्धि नियामकों एवं इनकी उपलब्धता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है, जिससे किसान बीज व पौधे से संबंधित सामग्री को संरक्षित रख सकें।

बीजोपचार की मुख्य विधियाँ

1 **बीज प्रसाधन**

बीजोपचार की मुख्य रुप से प्रयोग की जाने वाले विधि है। इससे बीज को सूखे या गीले पदार्थ से उपचारित किया जाता है जो बीज की पैकिंग के समय की जाती है कम लागत की इस विधि में मिट्टी के साफ बर्तन या पोलीथीन की शीट को बीज व रासायनों या जैव नियंत्रकों को मिलाने के काम में ले सकते हैं। आवश्यक मात्रा बीज पर छिड़क कर उसे दस्ताने पहनकर हाथ से या यांत्रिक रुप से मिला दिया जाता है।

2 **बीज आवरण**

इस विधि में बीज को उपचारित करते समय दवा के साथ एक चिपकने वाला पदार्थ भी काम में लिया जाता है जो बीज के चारों तरफ एक समान रसायन का आवरण बना देता है। इसके लिए गुड़ के घोल का भी इस्तेमाल कर सकते हैं। इसमें उन्नत तकनीक की आवश्यकता होती है यह कार्य मुख्यतः बीज उत्पादक कम्पनियों द्वारा ही अपनाई जाती है।

फसल का नाम	बीमारी	बीज उपचार	विवरण
गेहूँ एवं जौ	ईयर कोकल एवं टुण्डु रोग	बीजों को 20 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोकर नीचे बचे स्वथ्य बीज को अलग छांटकर साफ पानी में धोएं और सुखाकर बोने के काम में लें।	ऊपर तैरते हुए हल्के एवं रोग ग्रसित बीजों को निकाल कर अलग कर दें एवं जलाकर नष्ट कर दें।
	अनावृत व पत्ती कण्डुवा रोग	कार्बोक्सिन/कार्बेण्डाजिम 20 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से बीज को उपचारित करे या टेबुकोनाजोल 1 ग्राम/किलोग्राम बीज दर से उपचारित करें।	ग्लोयोक्लोडियम विरेन्स 40 ग्राम+विटावेक्स 125 प्रति किलोग्राम बीज भी प्रभावी है।
	करनाल बंट	बीज को 2.5 ग्राम वीटावेक्स प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करके बोने से बीज द्वारा फैलने वाला संक्रमण नहीं होता है।	
	दीमक	फिप्रोनिल 5 एस.सी. 6.0 मिली.लीटर या क्लोथियेनिडीन 50 डब्ल्यू डी.डी. 1.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर छाया में सुखाकर बुवाई करें।	बीजोपचार के बाद 2 घंटे में बुवाई अवश्य करें अन्यथा अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।
सरसों	तुलासिता व सफेद रोली	एप्रोन 25 एस.सी. 6.0 ग्राम या मैन्कोजेब 2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।	
	तना गलन रोग	10 ग्राम बाविस्टिन या 6.0 ग्राम ट्राईकोडरमा प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से बीजोपचार करें।	2.5 किलोग्राम ट्राईकोर्डरमा 50 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलाकर बुआई से पहले खेत में मिलाएं।
	पेन्टेड बग, मोयला रोग एवं एफिड	इमीडाक्लोप्रिड 600 एफ.एस. 8 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करें।	
चना	उकटा रोग एवं सूखा जड़ गलन	कार्बेण्डाजिम 1.0 व थायराम 2.5 ग्राम व 6. 0 ग्राम ट्राइकोडरमा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।	2.5 किलोग्राम ट्राईकोडरमा 50 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलाकर 15 दिन तक छाया में रखने के बाद से बुआई से पूर्व अंतिम जुताई के समय खेत में मिलाए।
	दीमक	क्लोरोपाइरिफास 20 ईसी या फिप्रोनिल 5 एस.सी 100 मिली प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करके बोना चाहिए।	सर्वप्रथम कवकनाशी फिर कीटनाशी व बाद में कल्चर से उपचारित करें।

	राइजोबियम	तीन पैकेट कल्चर एक हैक्टर के लिए उपयोग करें।	बीज उपचार हेतू आवश्यकता अनुसार पानी में गर्म करके गुड़ घोले व ठंडा करके कल्चर में भली भांति मिलाकर छाया में अच्छी तरह सुखा कर शीघ्र बुवाई करे।
मटर	जड़ गलन रोग	थाइराम 1.25 ग्राम एवं ट्राईकोडर्मा विरीडी 6.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।	
धनिया	झुलसा	ट्राईकोडर्मा विरीडी 4.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।	

3 **बीज गोलियाँ**

बीजोपचार की यह सबसे जटिल तकनीक है, परिणामस्वरुप बीज का भौतिक आकार बदल जाता है व बीज आवरण के कारण बीज की कठोरता व रख–रखाव बढ़ जाता है। इसके लिए विशेष उपकरणों व तकनीकों की आवश्यकता होती है। यह काफी मंहगी तकनीक है।

4 **बीज को भिगोकर उपचार करना**

इस विधि में बीजों को एक निशचित सांद्रता वाले (500 पीपीएम) जैव नियामक रसायन जैसे थायोयूरिया से उपचारित करने पर अंकुरण या पौध का जमाव अच्छा होता है तथा पैदावार में वृद्धि होती है।

विभिन्न रसायनों एवं जैविक कारकों द्वारा बीज उपचारित करते समय इस बात को सुनिश्चित करना चाहिए कि उपचार क्रम सही हो अन्यथा लाभ के विपरीत हानि भी हो सकती है। इसके लिए सही क्रम है कीटनाशक रसायनों का उपयोग सर्वप्रथम होना चाहिए उसके पश्चात् फफूंदनाशक दवाओं का उपयोग तत्पश्चात् जैव कारक जैसे कि ट्राईकोडर्मा राईजोबियम इत्यादि से उपचारित करें।

बीजोपचार के लाभ

- बीज अकुंरण में वृद्धि व सुधार
- बीजोपचार द्वारा पौधो की अंकुर उदय को सुनिश्चित किया जा सकता है ताकि पौधे के विकास में सुधार के साथ–साथ बिमारियों व कीटों द्वारा होने वाले नुकसान को नियंत्रित किया जा सके।
- पादप वृद्धि कारक हार्मोन का उपयोग कर पौधों की वृद्धि को बढ़ाया जा सकता है।
- राइजोबियम कल्चर द्वारा नत्रजन स्थीरिकरण क्षमता के बढ़ने के साथ फसल का उत्पादन बढ़ता है।
- बीजोपचार द्वारा पादप आबादी और इसकी उच्च उत्पादकता को बढ़ावा मिलता है।

सावधानी

- उपचारित बीज को छाया में सुखाने के तुरंत बाद बुवाई की जानी चाहिए।
- उपचारित बीज को ज्यादा देर ना रखें अन्यथा बीज खराब हो जाएगा।
- बीज उपचार करने से पहले फंजीसाइड लेवल को सावधानीपूर्वक पढ़ें तथा दिशा निर्देशों का पालन करें।

- उपचारित बीज का थोड़ा सा हिस्सा भी जानवरों के खाने में ना मिलाये अन्यथा जानवरों के स्वास्थ्य पर गहरा असर होगा और अत्यधिक मात्रा में सेवन करने पर मृत्यु भी हो सकती है।

अभियान : 100 प्रतिशत बीज उपचार के लिए अभियान

- बीजोपचार की जागरुकता के लिए, जागरुकता निमार्ण सामग्री जैसे पोस्टर, पर्चे और योजना विभाग में अधिकारियों–किसानों, आदि के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करवाने चाहिए।
- जिला स्तर पर कृषि क्षेत्र की सभी एजेंसियों की भागीदारी के साथ एक समन्वय समिति का गठन किया जाय।
- पेस्टिसाइड उद्योग के साथ परामर्श किया जाए और कीटनाशकों और बीज उपचार मशीनरी की व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाय और प्रत्येक कंपनी द्वारा डिजिटल माध्यम से विशिष्ट क्षेत्रों को अपनाया जाय और एक डॉक्यूमेंटरी तैयार की जाय।
- बीजोपचार अभियान में आत्मा, कृषि विज्ञान केन्द्र किसान, क्लबों, जैसे–बैंकों/नाबार्ड और अन्य किसान संगठनों को शामिल किया जाय।
- जन संचार माध्यमों जैसे; दूरदर्शन, समाचार पत्र, रेडियो आदि पर चर्चा साक्षात्कार और बीज उपचार विधियां और इसके कार्यों को किसानों को बताया जाय।
- ग्राम स्तर पर गावों में समूहों में बुआई से पहले बीज उपचारित करने वाली मशीनों की व्यवस्था की जाएं। इस कार्य के लिए पेस्टिसाइड कंपनियों को आमंत्रित किया जा सकता है।
- 100 प्रतिशत उपचारित बीज, बीज उत्पादन कंपनियों, प्रमाणीकरण एजेन्सियों के माध्यम से उपलब्ध करवाया जाय।
- किसान काल सेंटर को बीजोपचार संदेश प्रसार के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

अनाज फसलों में सूत्रकृमि प्रबंधन की आवश्यकता

मुजीबुर रहमान खान, पौध संरक्षण विभाग, कृषि विज्ञान संकाय

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़–202002

सारांश

अनाज के पर्याप्त उत्पादन में एवम् सुरक्षा और गुणवत्ता प्राप्त करने में कीट और रोगजनक संभावित बाधा हैं। कीट और रोग लगभग 50% फसल उत्पादन को नष्ट कर देते हैं और इसका एक–चौथाई रोगों के लिए रोगजनकों को जिम्मेदार ठहराया गया है। अनाज फसलों में सूत्रकृमि संक्रमण से 5–17% उपज गिरावट हो सकती है और फसल आधारित खाद्य पदार्थ में 2–7% का शुद्ध घाटा हो सकता है। चावल, गेहूँ और मक्का जैसे सबसे महत्वपूर्ण अनाज लगातार पादप कृमि से संक्रमित होते रहे हैं। आमतौर पर फसल क्षति, सूत्रकृमि के विशिष्ट लक्षणों की अनुपस्थिति की वजह से किसान समझ नहीं पाते हैं। इसके उपरांत सूत्रकृमि के सीधे संक्रमण से मृदा जनित रोगजनक या रोगवाहक प्रकृति, मिश्रित रोग से संक्रमण की गंभीरता को बढ़ा देते हैं। उपज के नुकसान को रोकने और फसल की उपज, उत्पादकता और गुणवत्ता में सुधार करने के लिए, उत्पादकों को पादप कृमि का आर्थिक महत्व का ज्ञान आवश्यक है। उत्पादकतों के लिए पर्याप्त विस्तार कार्यक्रम सुझाव/प्रदर्शन के द्वारा पादप कृमि के उचित प्रबंधन के तरीकों को लागू किया जाना चाहिए। प्राथमिकता ऐसे सूत्रकृमि को दी जा सकती है जो खाद्य फसलों के लिए सबसे महत्वपूर्ण सूत्रकृमि पीढ़ी जैसे मेलाइडोगाइनी, प्रेटीलिंकस, डाइटीलिंकस और हेटेरोडेरा की हो, जो फसलों की भारी नुकसान का कारण हैं। आम सांस्कृतिक तरीके अर्थात् गहरी जुताई, जलमग्नता, गर्मियों में जुताई, सफाई, पिछले खेती के खरपतवार और अवशेष को जला देना, प्रमाणित और विसंक्रमित रोपण सामग्री, प्रतिरोधी या सहिष्णु फसल की खेती के द्वारा सूत्रकृम के कारण होने वाले अनाज फसलों के नुकसान को रोका जा सकता है।

परिचय

आजादी के बाद भारतीय कृषि ने कई चुनौतीपूर्ण स्थितियों को दूर किया है और विशेष रुप से अनाज, दलहन, तिलहन आदि स्वदेशी उत्पादन हमारे लोगों के भोजन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए अपर्याप्त था और हमें 8–10 लाख टन के वार्षिक खाद्य आयात पर निर्भर होना पड़ा। 1950 के दशक के दौरान कई कृषि उत्पादों में आत्मनिर्भरता हासिल की है। कृषि को बढ़ावा देने पर जारी सकारात्मक योजना और सरकार की नीति हमारे शुद्ध उत्पादकता भी है खाद्य उत्पादन और रोग प्रबंधन की तकनीक की प्रगति के साथ ही 1950 की तुलना में खेती के तहत शुद्ध राष्ट्रीय क्षेत्र में कुछ 20% की एक अच्छी वृद्धि है, जो खाद्यान्न में लगभग 3.5 गुना, फल में 1.75 गुना और सब्जियों में 2.25 गुना की वृद्धि हुई। जिसके तहत वर्तमान में हम खाद्य फसलों के उत्पादन में आत्मनिर्भर हैं और मौजूदा आबादी को खिलाने के लिए सक्षम हैं।

भारत की विस्तृत फसल पद्धति में खाद्यान्न की खेती फसल उत्पादन में प्रमुख है। खाद्य फसलों में मुख्य रुप से अनाज की खेती अंतर्गत 150 मिलियन हैक्टर, जो खेती योग्य कुल क्षेत्रफल का 72.2% में खेती की जाती है (चित्र 1)।

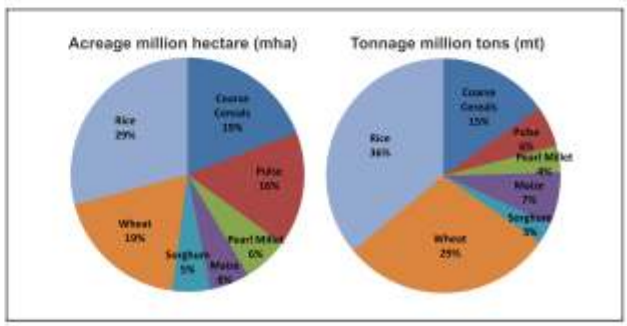

चित्र 1. भारत में खाद्य फसलों की खेती क्षेत्र और उत्पादन प्रदर्शित करता पाई चार्ट

भारत में महत्वपूर्ण खाद्य फसलें चावल, गेहूँ, बाजरा, मक्का, दालों आदि हैं इनमें चावल सबसे बड़े क्षेत्र में (43. 7 मि.है.) इसके बाद गेहूँ (28.15 मि.है.)।

खाद्य फसलों का कुल वार्षिक उत्पादन 26.75 करोड़ टन है (चित्र 2)। राष्ट्रीय खाद्य भण्डारण में चावल और गेहूँ का योगदान क्रमशः 36 और 29.3% है जोकि कुल वार्षिक उत्पादन का लगभग 96.43 करोड़ और 7.84 करोड़ टन है (चित्र 2)।

भारत में आत्मनिर्भरता और खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के बाद, उदारीकृत वैश्विक व्यापार में उत्पादन की मौजूदा प्रतिस्पर्धा को पूरा करने के लिए और 1.3 अरब आबादी के भोजन की मांग को पूरा करने के लिए फसलों के उत्पादन बढ़ाने के लिए और गुणवत्ता सुनिश्चित करने के क्रम में लिए ध्यान केंद्रित किया गया है तथा निर्यात को प्रोत्साहित किया गया। कीट और रोगजनक की कमी से फसल उत्पादकता में महत्वपूर्ण सुधार लाया जा सकता है। भारत सहित विकासशील देशों में कुल उत्पादन का लगभग 50% फसल की मात्रात्मकता या गुणात्मकता पूर्व और बाद के फसल चरणों में कीट और रोगों की वजह से नष्ट हो जाते है। (चित्र 2)। विभिन्न रोगजनक कवक, जीवाणु, वायरस, सूत्रकृमि आदि के कारण 25% का नुकसान, कीट और रोगजनकों द्वारा दिए गए कुल नुकसान के लिए उत्तरदायित्व माना गया है। रोगों में सबसे बड़ा नुकसान रोगजनक कवक (42%) तत्पश्चात् बैक्टीरिया (27%), वायरस (18%) और सूत्रकृमि (13%) ही हानि करते हैं (चित्र 2)।

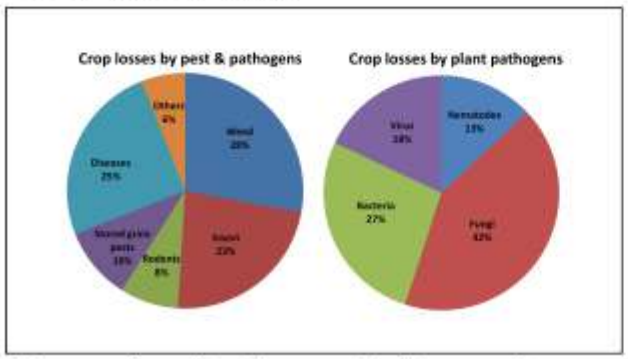

चित्र 2. कीट और रोग जनकों की वजह से फसल का नुकसान प्रदर्शित करता पाई चार्ट

पादप कृमि

सूत्रकृमि के रुप में या धागे के समान दिखने वाले जीव हैं उनका शरीर पतला, लचीला, आमतौर पर लम्बा और दोनों सिरों पर चपटा होता है। पादप कृमि के वयस्क 0. 3–11 मिमी लंबा हो सकता है। सूत्रकृमि, सभी बहुकोशिकीय जीवों का 80–90% भाग होते हैं। सामान्यतया सूत्रकृमि पानी में सबसे अच्छा संपन्न जलीय जानवर हैं, लेकिन वे स्थलीय निवास के लिए अनुकूल हैं। सौभाग्य से इस संख्या का केवल एक अंश पौधों पर पराश्रयी होने की क्षमता रखते हैं और अन्य मुक्त रहते हैं तथा विभिन्न परतों पर जीवित हैं।

परजीवी, पादप कृमि कई कृषि फसलों के लिए महत्वपूर्ण रोगजनक माना जाता है। सूत्रकृमि पौधों को घायल और जड़ के मूल रोम बाल, वाह्य कोशिकाओं, छाल और स्टीलर कोशिकाओं का भक्षण करके हानि पहुंचाते हैं (खान, 2008)। सूत्रकृमि की एक बड़ी संख्या जड़ सतह पर वाह्य परजीवी के रुप में रहते हैं जैसे टाइलेंकस, रोटीलेंकस, टाइलेंकोरिंकस, बेलोनोलेमस, होप्लोलेमस, ट्राइकोडोरस, लौंगीडोरस आदि। यद्यपि सूत्रकृमि काफी संख्या में पूरी तरह से पोषित पौधे की जड़ के अंदर प्रवेश कर जाते हैं, इस प्रकार के परजीवी को अंतः परजीवी कहते हैं, जैसे गाँठ सूत्रकृमि (मेलाइडोगाइनी प्रजाति), पुटी के गठन सूत्रकृमि (हेटेरोडेरा प्रजाति) और जड़ घाव सूत्रकृमि (प्रेटीलिंकस प्रजाति) जबकि कुछ सुत्रकृमि जैसे सिट्रस सूत्रकृमि (टाइलेंकस सेमीपेनेट्रांस) और रेनिफोर्म सूत्रकृमि (रोटीलेंकस रिनिफोर्मिस) आंशिक रुप से पोषित पोधे की जड़ के ऊतक के अंदर प्रवेश कर जाते हैं इस प्रकार के परजीवी को अर्द्ध अंतः परजीवी कहते हैं। किसी भी लक्षण की उपस्थिति के बिना पौधे की दुर्बलता सूत्रकृमि की परजीविता का सबसे आम लक्षण हैं प्रत्यक्ष क्षति अलावा सूत्रकृमि अकसर कवक, बैक्टीरिया और वायरस से होने वाली बीमारी को उत्तेजित करने में सहायता देता हैं या रोगजनक पौधे की किस्म के प्रतिरोध को तोड़ सकता है। एग्रीबैक्टिरियम राइजोजींस की वजह से गुलाब के हेयरी रुट बीमारी का मामूली महत्व

है, लेकिन बीमारी प्रेटिलेंकस बुल्नस की उपस्थिति में गंभीर हो जाती है (सितारमैया और पाठक 1993)।

कपास की फ्यूजेरियम से प्रतिरोधी किस्में जड़–गाँठ सूत्रकृमि की उपस्थिति में अतिसंवेदनशील बन जाती हैं। (एटकिंसन, 1892)। पादप कृमि भी बैक्टीरिया, कवक और वायरस के लिए वाहक के रुप में कार्य कर सकते हैं। एंग्यूइना ट्रिटिसी, क्लैवीबैक्टर ट्रिटिसी और डाइलोफॉस्पोरा एलोपेक्यूरी गेहूँ के तना के विभाज्योतक तक ले जाता है (खान एवं दास गुप्ता, 1993)। रिंग स्पॉट वायरस (एनइपीओ वायरस) जैसे तंबाकू रिंग स्पॉट वासरस जिफिनेमा और लांगीडोरस प्रजाति से फैलता है। ट्राइकोडोरस और पाराट्राइकोडोरस प्रजाति ऐसी टोब्रा वायरस के लिए संवाहक के रुप में कार्य करते हैं और तंबाकू रैटल और पी अर्ली ब्राउनिंग रोग का कारण बनते हैं (टेलर और ब्राउन, 1997)।

अनाज फसलों में सूत्रकृमि संक्रमण

पादप परजीवी सूत्रकृमि खाद्य फसलों सहित सभी प्रकार के अनाज फसलों के संभावित परोपजीवी हैं। वे जड़, तना, पत्ते, मुकुट, पुष्पक्रम, विकासशील फूल और अनाज को प्रभावित करते हैं (वेबस्टर, 1972)। सूत्रकृमि संक्रमण से फसल क्षति पौधे के किस्म, प्रजातियों, मिट्टी के स्तर और मौजूदा पर्यावरण की स्थिति पर निर्भर करता है। आमतौर पर सूत्रकृमि मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार से पौधों की वृद्धि और उपज में भारी कमी के कारण बनते हैं।

गेहूँ की मोल्या (हेटेरोडेरा एवेनी), चावल की उफरा (डाइटीलेंकस एंगस्टस), मक्का की जड़ सड़ांध (प्रेटीलेंकस जीआ), जड़–गांठ (मेलाइडोगाइनी प्रजाति) आदि कुछ बिमारियाँ अनाज फसलों को भारी आर्थिक हानि का कारण हैं (खान और जयपुरी, 2010)। कृषि पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव के बावजूद, सूत्रकृमि अनाज फसलों विशेष रुप से फसलों के प्रमुख परजीवी के रुप में मान्यता प्राप्त नहीं है। यह शायद इसलिए है क्योंकि सूत्रकृमि की वजह से नुकसान, कवक या अन्य रोगजनकों के कारण होने वाली हानि से भी कम स्पष्ट है जिसके फलस्वरुप सूत्रकृमि संक्रमण या बीमारी अनदेखी बनी हुई है। इसके अलावा, अनाज फसलों के पत्ते परिपक्वता पर सूख जाता है और जमीनी स्तर के काट लिया जाता है फिर भी पौधों जड़ों की में सूत्रकृमि कारण कुछ पहचानने योग्य लक्षणों को देखा जा सकता है। सूत्रकृमि की कारण शिथिलता लक्षण (पौधों की वृद्धि में रुकावट और हल्के पीले पत्ते) पोषक तत्वों की कमी के साथ सदृश (चित्र 3), जिसके फलस्वरुप एक सूत्रकृमि नाशक (निमैटीसाईड्स) की जगह उर्वरक लागू किया जाता है जिसका परिणाम अप्रभावी और गैर आर्थिक साबित होता है। एक क्षेत्र में विस्तृत रुप में सूत्रकृमि संक्रमण से विरल और हल्के हरे या हल्के पत्ते दिखाई देते हैं (लक एवं सहयोगी, 2005)। पीड़ित पौधों त्वरित जड़ क्षय प्रदर्शित करते हैं, पर्याप्त मात्रा में नमी और धूप की बावजूद कमजोर दिखाई पड़ते हैं, लेकिन रात में ठीक हो जाते हैं। इसके अलावा, निमाटोड द्वारा क्षतिग्रस्त जड़ें इतनी कमजोर हो जाती हैं कि कई बैक्टीरिया और कवक आसानी से संक्रमण कर देते हैं। यह माध्यमिक क्षति भी तत्काल ध्यान आकर्षित नहीं करती हैं और तुरंत ही लाइलाज स्तर पर उपज के गंभीर नुकसान का कारण बनते हैं। हालांकि, भारी प्रभावित क्षेत्रों में इनके लक्षण जड़ों या तने पर दिखाई देते हैं। सूत्रकृमि के कारण लक्षण अधिकतर जड़ पर होते हैं क्योंकि सूत्रकृमि प्रायः जड़ पर आक्रमण करते हैं। इसके जड़–घाव, जड़–सड़ांध, जड़ छंटाई, खान, पत्ती टिप दांत, बीज घाव, पुष्प गुच्छ विकास आदि की समाप्ति विशिष्ट लक्षण हैं (खान, 2008)।

चित्र 3

एक क्षेत्र में सूत्रकृमि के संक्रमण से सामान्य लक्षण पैच मे पौधों में करंज (पीलापन) पत्ते के साथ विकास में अवरोध प्रदर्शित रहा है। (सौजन्यः खान और जयपुरी, 2010)। कृषि महत्व के अनुसार पादप परजीवी सूत्रकृमि, कवक, जीवाणु, वायरण और कीट के बाद आता है। विभिन्न फसलों में सूत्रकृमि के कारण 7–12% औसत उपज का नुकसान होता है। उपज के नुकसान रोगाणु स्तर और पोषित प्रजातियों के आधार पर बदलती है (खान एवं सहयोगी)

संक्रमण एक क्षेत्र में 80–90% तक उपज में गिरावट हो सकता है, और कभी–कभी पौधों किसी आर्थिक मूल्य की उपज देने के लिए असफल हो जाते हैं। सूत्रकृमि के कारण फसल के नुकसान विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में अधिक है। इसका कारण अनियोजित कृषि पद्धतियों, सूत्रकृमि और सूत्रकृमिनाशियों के बारे में किसानों की अज्ञानता है। विकसित देशों में जहां प्रबंधन तरीकों को ठीक से लागू किया जाता है वहां सूत्रकृमि के कारण अपेक्षाकृत कम फसल क्षति होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में केवल सूत्रकृमि के कारण होने वाले वार्षिक मौद्रिक नुकसान 6.0 अरब डॉलर से अधिक अनुमानित है (एग्रीओस, 2005)। भारत में, 10–12% फसल के नुकसान सूत्रकृमि संक्रमण की वजह से होते हैं। इसके उच्च जनसंख्या के स्तर पर, ये अतिसंवेदनशील फसलों में बहुत अधिक हानि पहुंचा सकती है। सूत्रकृमि से संवेदनशील अनाज फसल में उपज गिरावट आर्थिक मूल्य अधिक प्रदर्शित करती है (तालिका 1)

उपरोक्त आंकड़ा भारत में सूत्रकृमि संक्रमण से अनाज फसलों की उत्पादकता को सीमित करने में और एक संभावित कारक के रुप में प्रदर्शित किया गया है। भारतीय दृष्टिकोण से, अनाज में महत्वपूर्ण सूत्रकृमि रोगों के तहत वर्णित हैं। इन रोगों के कारण अनाज की उपज में महत्वपूर्ण हैं, इसलिए देश में अनाज की उपज में सुधार करने के लिए उनका प्रबंधन अनिवार्य रुप से किया जाना आवश्यक है।

तालिका 1. खाद्यान्न फसलों के लिए सूत्रकृमि के कारण फसल के नुकसान।

फसल	उपज हानि (%)
अनाज	7–22
गेहूँ	7–19
चावल	10–22
मक्का	6–10
जौ	17–77
जई	3–32

गेहूँ

मोल्या रोग

मोल्य रोग, अनाज पुटी सूत्रकृमि, हेटेरोडेरा एवेनी की वजह से होता है। भारत में यह रोग लगभग सभी गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों में है। इससे प्रभावित पौधों छोटे, पीले और कम पत्तियों के साथ, अविकसित होते हैं। डालियाँ और दाने कम विकसित होते हैं और बाली का उद्भव देर से होता है। संक्रमित जड़ें लम्बी और अंत में गुच्छेदार हो जाती है। मोल्या रोग गेहूँ की अनाज पैदावार में 15–100% की कमी कर सकती है।

बीज पित्त, बीज पिटिका या सीड गॉल रोग

बीज पित्त या सीड गॉल रोग, एंग्यूइना ट्रिटिसी के कारण होता है। अविकसित और विकासशील देशों, भारत, पाकिस्तान, इथोपिया, रोमानिया, इराक, सीरिया और यूगोस्वालिया आदि में यह एक महत्वपूर्ण रोग है। भारत में बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में कान बल रोग होता है। यह रोग सामाजिक रुप से पिछड़े और आदिवासी क्षेत्रों या जहां प्रमाणित बीज प्रयोग नहीं किया जाता है, विस्तृत रुप में फैला हुआ है।

चित्र 4

चित्र 5

रोगग्रस्त पौधों में तने के आधार पर (निचले भाग पर) सूजन, पत्तियों का सिकुड़ना, घुंगराली घुमी हुई अधिक डालियाँ और विकास में अवरुद्ध प्रदर्शित करते हैं। रोगग्रस्त बाली छोटी, सामान्य से चौड़े, बाल के साथ या बाल के बिना और प्रारंभिक स्थिति में इन बालों में अनाज के बदले बीज घाव (कॉकल) बनता है तथा बाद में हरे रंग से भूरे रंग और परिपक्वता पर काले हो जाते हैं। इनमें अत्यधिक मात्रा में मौन अवस्था में दूसरे चरण के अवयस्क एंग्यूइना ट्रिटिसी होते हैं (चित्र 5)। यह सूत्रकृमि क्लेवीबैक्टर ट्रिटिसी जीवाणु के साथ पीला कीचड़ (येलो स्लाइम) या टुण्डु रोग भी करता है। भारत में इस सूत्रकृमि के रोग की वजह से गेहूँ की उपज में और औसत गिरावट 1–50% के रुप में सूचित की गई है।

चावल

धान कई तरह के सूत्रकृमि से आसानी से प्रभावित होने वाला आश्रयी पौधा है अर्थात्, डाइटीलेंकस, एंगस्टस, हर्षमैनिएला, ओराइजी, एच. ग्रैसिलिस, एच, म्यूक्रोनाटा, एम. इनकोग्निटा, एम जावानिका, एम अरनेरिया, एम ग्रैमिनिकोला, एम. ट्रिटिकोराइजी, एम ओराइजी एवं एम सालासी, धान के प्रमुख रोग कारक हैं।

उफरा रोग

तना सूत्रकृमि, डाइटिलेंकस एंगस्टस उफरा रोग का कारक है, और मलाया, मलेशिया, म्यांमार, फिलीपींस, मिश्र, दक्षिणी थाईलैंड, मेडागास्कर, वेस्ट कोस्ट और वियतनाम के कुछ हिस्सों तथा भारत में, असम, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में पाया जाता है। उफरा रोग को युवा पत्तियों और क्लोरज़ या पत्ती म्यान पर धूम स्वरुप या सफेद धारियाँ में व्यवस्थित मलीन किरण की तरह पच्चीकारी लक्षण द्वारा वर्णन किया जा सकता है। पत्ती पूरी मुड़ी हुई या गंभीर रुप से विकृत या नई पत्तियां निचले भाग पर झुर्रीदार और सफेद–हरे रंग की हो जाती है (चित्र 6)। गंभीर संक्रमण में पत्ती किनारे पर ऐंठ और नोक मुड़ जाती हैं। जिससे भरता पुष्पगुच्छ

चित्र 6

चित्र 7

विकृत हो जाता है और आधार पर बाँझ या खाली केवल ऊपरी भाग पर के पास सामान्य अनाज पैदा करता हैं। उफरा रोग के कारण उपज में नुकसान 5–100% के रुप में सूचित की गई है।

प्रबन्धन

गहरे पानी वाले चावल के पारिस्थितिकी तंत्र की प्रकृति के कारण डी. एंगस्टस का प्रबंधन मुश्किल है। प्रबंध आवेदन में कठिनाई, संदूषण की चिंता और कम आर्थिक लाभ निमैटीसाईड्स के उपयोग पर प्रतिबन्ध, प्रजातीय प्रतिरोध और सस्य क्रियाओं द्वारा प्रबंधन इस पारिस्थितिकी तंत्र में उपलब्ध सबसे प्रभावी विकल्प है।

रुट सड़ांघ रोग

रुट सड़ांघ रोग हर्षमैनिएला ओराइजी की वजह से होता है और यह चावल का एक अन्य महत्वपूर्ण सूत्रकृमि रोग है और थाईलैंड, भारत, चीन, पाकिस्तान, फिलीपींस, बांग्लादेश, क्यूबा, मेडागास्कर, श्रीलंका, संयुक्त राज्य अमेरिका, पूर्वी एशिया, ताइवान, न्यूजीलैंड, नाइजीरिया, वियतनाम, यूरोप और जापान जैसे देशों से प्रतिवेदित हैं। भारत में यह सूत्रकृमि हैदराबाद, केरल, अदातुरै, कुम्बकोनम, वृद्धाचलम और तमिलनाडु राज्यों में चावल की फसल को प्रभावित करता है। पीड़ित पौधे कम विकसित तथा छोटे टिल्लर वाले होते हैं। पत्तियों का कम विकास तथा पुष्प उद्‌भव देर से होता हैं। जड़ों पर परिगलित क्षेत्र विकसित करने लगता है। हर्षमैनिएला प्रजाति का प्रकोप 10–70% उपज हानि कर सकता है।

प्रबंधन
जैविक नियंत्रण

जैक और फार्चुनर (1979) ने देखा की एच. ओराइजी की जनसंख्या स्तर धान के उन खेतों में कम थी जहां पर सल्फेट अपचयन जीवाणु की अधिकता थी। उन्होंने सुझाव दिया वे सूत्रकृमि जनसंख्या में कृत्रिम रुप से जीवाणु वृद्धि करके कम कर सकते हैं। यह विधि चावल के लिए हानिकारक नहीं है, और अच्छी तरह सूत्रकृमि जनसंख्या को करती है तथा उपज को बढ़ा देती है। स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस की उपस्थिति में मिगुला स्टेन पीएफ–1 की बीज उपचार के रुप में 10 ग्राम/कि.ग्रा. बीज से उपचार बेहतर था और पौध उपचार मृदा उपचार के बिना या साथ में कार्बोफुरान 3 जी 1.3 ग्राम सक्रिय तत्व/मी^{2} की दर से डालने से नियंत्रण के साथ फसल में वृद्धि होती है।

सस्य क्रियाओं द्वारा नियंत्रण

एच. ओराइजी की संख्या मध्य जून में बोये गए धान में अधिक होते है जबकि मध्य जुलाई में बोए गए धान में न्यूनतम होती है (रंधावा, 1991)। सेस्बानिया रोस्ट्राटा ब्रेम तथा एसाइनोमीन एफ्रास्पेरा एल के साथ हरित खाद प्रभावी रुप से एच. ओराइजी और एच. म्यूक्रोनाटा की जनसंख्या को कम कर सकता है।

नीम की खली 1 टन/हैक्टर और प्रेस मड 10 टन/हैक्टर (जोनाथन और पांडियराजन, 1991) और अरंडी के तेल केक और सरसों के तेल केक डालने पर अर्थपूर्णता से एल. ओराइजी की जनसंख्या कम कर सकते हैं। टैजेटस एरेक्टा एल के मेथनॉल से टी. पैटुला. एल. का मेथनॉल में एल. ओराइजी के विरुद्ध कृमिनाशी गतिविधि अधिक थी। प्रयोगों में चावल का गोभी और तंबाकू के साथ चक्रण धान के खेतों में 83–88% एल. ओराइजी की जनसंख्या कम कर देता है लेकिन सर्दियों में जुताई और परती में एक हद तक कम प्रभावी थे।

रासायनिक नियंत्रण

स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस और ट्राइकोडर्मा प्रजाति जैविक कीटनाशी का बीज पर लगाना स्वस्थ नर्सरी का उगाने में लाभदायक है। फोस्फोमिडोन और क्लोरपाइरीफोस 0.02% 20 मिनट के लिए बोने से पहले जड़ डुबकी कराने से एच. ओराइजी के प्रभाव से चावल पौधों की रक्षा

कर सकते हैं, संक्रमण के बाद क्लोरपाइरीफोस, ट्राइऐजोफॉस यूसी51762, बीपीएमसी बौर फेनॉमिफोस रोगनिवारक उपचार के रुप में सूत्रकृमि आक्रमण के विरुद्ध अत्यधिक प्रभावी है। लाहन एव सहयोगी (1999) के अनुसार जड़ डुबकी उपचार के रुप में कार्बोसल्फान और फास्फोमिडोन @ 0.3% एच. ओराइजी की जनसंख्या क्रमशः 46.2% और 40% कम कर देता है और अनाज पैदावार 35.1 और 34.7 कुंतल/हैक्टर तक अनुपचारित नियंत्रण की तुलना में बढ़ा देता है।

कार्बोफ्युरान 1.275% किग्रा सक्रिय तत्व/है. की दर से नर्सरी में तदुपरांत 1 कि.ग्रा. स.त. मृदा में डालने से धान को सूत्रकृमि से संरक्षित कर सकते हैं। यह उपचार पानी और कीचड़ हालत में लागू नहीं किया जाना चाहिए।

जड़ गाँठ रोग

यह रोग मेलाइडोगाइनी ग्रेमिनीकोला की वजह से होता है और वर्षा सिंचित और ऊँचे (अपलैंड) क्षेत्रों में आम है। भारत में चावल की जड़ गाँठ रोग विशेष रुप से पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश में अपलैंड और सिंचाई वाले धान के क्षेत्रों में छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, जम्मू, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और हरियाणा में देखा गया है। सूत्रकृमि संक्रमण का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण जड़ों पर घाव के गठन है, घाव जड़ के अंतिम छोर सर्पिल या घोड़े की नाल के आकार के होते हैं (चित्र 8)। फसल दुर्बल, पुष्प कम संख्या में और कम पुनरुत्पादक होती है। सूत्रकृमि के कारण वर्षा सिंचित और ऊपरी चावल में 16–32% उपज हानि हो सकती है। सूत्रकृमि का संक्रमण नर्सरी में पौधे के विकास के अवरुद्ध संयंत्र शक्ति में कमी और पत्तियों में करंज उत्पन्न करते हैं।

प्रबंधन

धान की किस्में जैसे; लोकनाथ 505, एम–36, टी के एम 3, टी के एम 7, टी के एम 8, टी के एम 9, एम डी यू1, एम डी यू 2, टी के एम 11 और पी वाई 1 चावल जड़–गाँठ सूत्रकृमि के विरुद्ध प्रतिरोधिता प्रदर्शित करती है और इनका उपयोग मामूली पीड़ित क्षेत्रों में किया जा सकता है।

रासायनिक नियंत्रण

फोरेट, कार्बोफुरान या क्लोरपाइरीफोस से बीज ड्रेसिंग करने से स्वस्थ नर्सरी उगाने में मदद मिल सकती है। अत्यधिक प्रभावित क्षेत्रों में बुआई से पहले नर्सरी की मिट्टी में फोरेट या कोर्बोफुरान की 4–6 किलोग्राम स.त./हैक्टर मात्रा डालकर नर्सरी को उगाने, उपचार और रोग मुक्त करने में अत्यधिक प्रभावी साबित होगा। चावल की जड़–गाँठ सूत्रकृमि का नियंत्रण दो गहरी जुताई, सौरीकृत (3–4) करने और बाद रोपण से पूर्व फोरेट या कार्बोफुरान (2–3 किलोग्राम स.त./हैक्टर) और रोपण के उपरान्त (15 दिनों के बाद) कार्बोफुरान के आवेदन से किया जा सकता है।

सफेद पत्ती नोक रोग

एफेलेंकोयडिस बेसी, चावल का सफेद पत्ती नोक सूत्रकृमि के रुप में लोकप्रिय है। यह रोग पत्ती के सफेद होने से जाना जाता है। इस सूत्रकृमि से होने वाले रोग को अलग–अलग नामों जैसे चावला का सफेद पत्ती रोग, 'काला अनाज', इटैलियन बाजरा का 'कान तुशार' और चावल की 'दिल तुषार' से जाना जाता है। ए. बेसी व्यापक रुप से आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, हिमाचल प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, तमिननाडु, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल में फैला है और पुष्पों में भूसे को बढ़ा देता है (चित्र 8)। ए. बेसी धान के मिश्रित रोग, एक्रोसिलिंड्रियम (सारोक्लैडियम) ओराइजी, कर्वुलेरिया प्रजाति के भागीदारी से विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। (राव एवं प्रकाश, 2002)। सूत्रकृमि से प्रभावित चावल के खेतों में उपज की हानि 10 से 71% की हो सकती है।

पौधे की ऊपर से तीसरी पट्टी पर सफेद धब्बा या कोड़े

चित्र 8

चित्र 9

की तरह कुरुपता प्रदर्शित होती है (चित्र 8)। पुष्प आने के समय पर कुछ पौधे के तने असामान्य रुप से लम्बे, कुछ मोटे व लम्बे हो जाते हैं। पौधे कमजोर, कम लंबाई व वजन वाले तथा इनमें दानों की संख्या कम हो जाती है (चित्र 9)।

गंभीर संक्रमण के समय पौधे का पुष्पीय भाग असामान्य बिखराव दर्शाता है (प्रसाद एवं सहयोग, 2007)। कुछ चावल की किस्मों में सिर्फ छोटे दानें और काम पत्तियों की अधिक बड़ी हो जाने का लक्षण उत्पन्न करते हैं जबकि पत्तियों पर सफेद धब्बे नहीं पड़ते हैं। चित्र 9 पत्ते, अंडाशय और बाली पर सफेद टिप सूत्रकृमि से क्षति (सौजन्यः खान, मटियार, 2010)

प्रबंधन एवं रोकथाम

भौतिक तरीकों में ए. बेसी से पीड़ित बीज क भंडारण के लिए 20 दिनों के लिए 25डिग्री सेल्सियस पर विनियमित गैस मध्य (97.5% नाइट्रोजन और 2.5% ऑक्सीजन) मौन लार्वा को मारता है। बीज उपचार का एक संयोजन इथोप्रोफॉस 20 ईसी 0.5% की दर से या 15 मिनट के लिए 53–54 डीग्री सेंटीग्रेड से गर्म पानी के साथ या तो उपचार भी बीज में संक्रमण कम कर सकता है। गर्म पानी के उपचार के अलावा, बेनोमिल (0.3% बीज वनज दर से) और छिड़काव (2.5 ग्राम/मी^{3} दर से रोपाई के बाद 1 या 15 दिनों में ए. बेसी के संक्रमण से चावल पौधों की सुरक्षा करता है। थायोबेन्डाजोल, बेनोमिल या फेनिट्रोथियॉन के साथ बीज उपचार एक बहुत कम स्तर तक सूत्रकृमि संक्रमण कम कर रहे हैं, लेकिन सूत्रकृमि को पूरी तरह से समाप्त करने में असक्षम हैं। ऑक्सामिल के साथ बीज के पूर्व भिगोने या गर्म पानी के उपचार से की भी सूत्रकृमि को नियंत्रित करने में कारगर साबित होते हैं।

हालांकि सूत्रकृमि का बीज जनित प्रकृति को देखते हुए, सबसे अच्छी रणनीति चावल के प्रमाणित बीजों का उपयोग हैं।

पत्ता कर्ल और विल्ट रोग

यह बीमारी होप्लोलेमस इंडिकस के कारण होता है और यह प्रत्येक देश के सभी राज्यों में चावल की फसल पर हमला करता है। रोग का सामान्य लक्षण पौधे का छोटापन, करंज, नई पत्तियों का मुड़ना और फसलों के प्रारंभिक दौर में पुराने पत्ते की नोक कमजोर पड़ जाना है। सूत्रकृमि जड़ों के आंतरिक संवहनी बंडलों की व्यवस्था में विकृति उत्पन्न कर देता है। फसल का नुकसान सूत्रकृमि आबादी पर निर्भर करता है। एच. इंडिकस का संक्रमण सामान्यता ऊपरी चावल की फसल के क्षेत्रों होता है, अन्य अनाज साथ चावल आधारित फसल प्रणाली में 18% तक घाटे के कारण हो रहे हैं।

मक्का

अनेक सूत्रकृमियों में से हेटेरोडेरा जीआ, एच. एवेनी, प्रैटिलिंकस और मेलाइडोगाइनी प्रजाति मक्का की फसल पर हमला करते हैं और इनका आर्थिक महत्व है। भारत में एच. जीआ प्रमुख मक्का उत्पादक क्षेत्रों जैसे

हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में होता है। रोग का लक्षण पौधे के जमीन के ऊपरी भाग में गैर विशिष्ट है। संक्रमित पौधा पहले गुच्छा लेकिन अपेक्षाकृत साथ छोटे भुट्टे और कम अनाज का होता है। जड़ सतह पर एच. जीआ के अल्सर की उपस्थिति मक्का पर सूत्रकृमि संक्रमण का सबसे महत्वपूर्ण और विशेष लक्षण है। संक्रमित मक्का पौधे की जड़ प्रणाली घनी और कम विकसित होती है। एच. जीआ और एच. एवेनी के कारण उपज को 40% तक हानि हो सकती है।

जौ

जो को संक्रमित करने वाले सूत्रकृमि हेटेरोडेरा प्रजाति, प्रैटीलेंकस प्रजाति, मेलाइडोगाइनी प्रजाति, एन्ग्यूइना ट्रिटिसी एवं डाइटीलेंकस डिप्सेली आर्थिक महत्व के हैं। हेटेरोडेरा प्रजाति समशीतोष्ण अनाज पर प्रमुख रोगजनक प्रजाति है, और भारत में भी पाया गया है। पौधों के विकास में अवरुद्ध और पीला हो जाना रोग क विशेषता है। पीड़ित पौधों पतली और संकीर्ण पत्तियों, टिलर्स की कम, कान की देरी उद्भव, बाली का गठन और अनाज की बहुत कम संख्या, जड़ प्रणाली झाड़ तथा गुच्छा के समान, जड़ की नोक के पास सूजन, उथले की वजह से प्रसार मामूली हो जात है। इस तरह के पौधों को आसानी से जमीन से बाहर निकाला जा सकता है। हेटेरोडेरा एवेनी संक्रमित गेहूँ की जड़ एक 'झाड़ गांठ' की दिखाई देने वाली जड़ के रुप में वृद्धि करने लगता है। सूत्रकृमि की कारण अनुमानिक उपज हानि का 15–87% होती है।

चारा

चारा पुटी सूत्रकृमि हेटेरोडेरा सोर्घी, टाइलेकोरिंकस बुल्गेरिस, होप्लोलैमस प्रजाति और जड गाँठ सूत्रकृमि भारत में चारा फसल के साथ जुड़े महत्वपूर्ण पादप सूत्रकृमि है। चारा हेटेरोडेरा सोथी की पुटी सूत्रकृमि रोग हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में काफी प्रचलित है। रोग का सबसे आम लक्षण जड़ों पर हल्के गहरे भूरे रंग के अल्सर की उपस्थिति है। जड़–गाँठ सूत्रकृमि (एम.इनकोग्निटा), एक और महत्वपूर्ण रोग है यह सूत्रकृमि संक्रमित पौधों की हरिद्रोग और बौनेपन और जड़ों पर सूजन का कारण बनता है।

रुट घाव रोग, प्रैटिलेंकस जीआ की वजह से भारत मे चारा के उपज लिए काफी हानि का कारण बनता है। पीड़ित पौधों की वृद्धि में अवरुद्ध और पीले रंग के हो जाते हैं। जड़ो पर, पीरगलित घावों की उत्पत्ति हो जाती है। टाइलेंकोरिंकस बुल्गोरिस भी एक महत्वपूर्ण सूत्रकृमि है जो चारा की जड़ों का भोजन करते हैं। सूत्रकृमि आक्रमण से पोषक जड़ों का क्षय और नोक पर सूजन का कारण बनता है।

भविष्य की संभावनाएं

सूत्रकृमि के कारण दुनिया भर में वार्षिक मौद्रिक घाटा 21 महत्वपूर्ण फसल प्रजातियों पर व्यापक आधार पर 800 करोड़ डॉलर का अनुमानित किया गया है (एग्रिओस, 2005)। सभी फसलों सालाना वास्तविक आंकड़ा 1000 करोड़ डॉलर से अधिक हो सकता है (खान, 2008)। यह अनुमान लगाया गया कि लगभग 1.2 करोड़ डॉलर (यानी, कुल नुकसान के कम से कम 0.2%) सूत्रकृमि विज्ञान शिक्षण, अनुसंधान और विस्तार पर खर्च किया गया। विशेष रुप से विकासशील देशों में, सूत्रकृमि प्रबंधन प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर खर्च फसल हानि और व्यय के बीच असंतुलन सूत्रकृमि क्रमण करने के लिए किसानों की अचेत या लापरवाही की दिशा में योगदान करने के लिए प्रकट होता है।

भारत में अनाज उत्पादन में सुधार करने के लिए, यह सूत्रकृमि प्रबंधन कार्यक्रमों और विस्तार सेवाओं पर अधिक पैसे का निवेश करने के लिए आवश्यक है।
भारत में कई पादप सूत्रकृमि की प्रजातियां अनाज

तलिका 2 खाद्य फसलों के साथ जुड़े महत्वपूर्ण सूत्रकृमि पीढ़ी।

क्रमांक	सूत्रकृमि जनक	संवेदनशील फसल
1	रुट गाँठ सूत्रकृमि (मेलाइडोगाइनी प्रजाति)	सभी फसलें
2	रुट गाँठ सूत्रकृमि (प्रैटिलेंकस प्रजाति)	मक्का, चावल, जौ, दालें
3	पुटी सूत्रकृमि (हेटेरोडेरा प्रजाति)	गेहूँ, मक्का, दालों जौ, चारा फसलें
4	तना और बल्ब सूत्रकृमि (डाइटीलेंकस प्रजाति)	चावल, जौ, चारा फसलें
5	रेनिफोर्म सूत्रकृमि (रोटीलेंकस प्रजाति)	दालें
6	स्टंट सूत्रकृमि (टाइलेंकोरेंकस प्रजाति)	दालें

फसलों पर हमला संक्रमित करती हैं। लेकिन अपेक्षाकृत सूत्रकृमि समुदाय की एक बहुत छोटे अनुपात में संभावित परजीवी हैं और आर्थिक क्षति और खाद्य फसलों की उपज की गिरावट का कारण है। इसलिए, विशेष ध्यान आर्थिक रुप से महत्वपूर्ण सूत्रकृमि की पीढ़ी अर्थात् इनकी जनसंख्या कम करने को दी जानी चाहिए। जबकि, आर्थिक रुप से सबसे महत्वपूर्ण सूत्रकृमि जैसे मेलाइडोगाइनी प्रैटिलेंकस, हेटेरोडेरा, डाइटिलेंकस और एफेलेंकस को नियंत्रित किया जाना चाहिए। प्रतिरोधी या सहिष्णु फसल उगाने से फसल–चक्र में सूत्रकृमि को नियंत्रित करने का सबसे सरल उपाय है।

रासायनिक आवेदन कई खतरों का कारण है, इसलिए पर्यावरण हितैषी तरीकों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। भारतीय कृषि प्रणाली में सौरीकरण के साथ गहरी जुताई और बोने के लिए भूमि तैयार करना रोग प्रबंधन के एक अभिन्न रणनीति के रुप में लिया जाना चाहिए। खेत की स्वच्छता का विशेष रुप से अनाज की कटाई के बाद सूत्रकृमि को आश्रय और प्रजनन के लिए स्थान देने वाले जड़ अवशेष हो हटा देना चाहिए। आस–पास के प्रभावित क्षेत्र से पानी के आगमन को रोकना चाहिए। इसके अलावा प्रमाणित और विसंक्रमित नर्सरी (चावल) और बीज इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इस प्रकार के उपायों से क्षेत्र में सूत्रकृमि आबादी को कम करने, संरोपण के प्रसार और प्रवेश को रोकने में मदद करेगा। बुआई के समय में जैविक कीटनाशक बीज/अंकुर ड्रेसिंग उपचार के रुप में लागू किया जा सकता है। यदि सूत्रकृमि, संक्रमण मध्य सत्र के दौरान पता चला है तो अन्य प्रबंधन रणनीति आर्थिक लाभ नहीं देंगे इस स्तर पर प्रबंध के रुप में निमैटीसाईड्स लागू किया जा सकता है। परामर्श के अनुसार हालांकि, निमैटीसाईड्स उचित देखभाल और सावधानियों के साथ विवेकपूर्ण तरीके से लागू किया जाना चाहिए।

सस्य क्रियाओं द्वारा कीट नियंत्रण–लागत कम, उत्पादन ज्यादा

आर.के. बैरवा[1], बी.एल.ढाका[2], एन.एल. मीणा[3], एवं राजपाल मीना[4]

[1-3]कृषि विज्ञान केन्द्र, पोक्स बॉक्स नं. 4, बून्दी–323001 (राज.)
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

कृषक अपना उत्पादन व आमदनी बढ़ाने हेतु फसल उत्पादन की समस्त विधियां व तकनीकों का उपयोग करता है। इसके अन्तर्गत फसल की किस्म, बुआई का समय व विधि, भू–परिष्करण, खेत व फसल की स्वच्छता, उर्वरक प्रबंधन, जल प्रबंधन, खरपतवार प्रबंधन, कीट प्रबंधन व कटाई का समय आदि का समावेश होता है। कीट से होने वाली हानि से बचने के लिये शस्य क्रियाओं मे हेर फेर करना ही शस्य क्रियाओं या कृषिगत नियंत्रण कहा जाता है। ये परिवर्तन कीटों की प्रजनन शक्ति अथवा वृद्धि को रोकते हैं या पौधों के अन्दर कीट अवरोधी गुण उत्पन्न कर कीटों को पौधों से दूर रखते हैं। कृषिगत क्रियाओं से कीटों की रोकथाम करने के लिए कीट की पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है। तभी इस विधि से कीट की रोकथाम की जा सकती है। शस्य क्रियाएँ कीट की संख्या को कम करने की परम्परागत अथवा व्यवहारिक विधि है। फसल उत्पादन में विविध शस्य क्रियाओं में हेर–फेर करने से कीटों का जीवन–चक्र प्रभावित होता है जो इस प्रकार है :–

ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई

गर्मी मे गहरी जुताई करने से खेतों में कीटों के अण्डे, प्यूपा इत्यादि सूर्य की प्राकृतिक गर्मी से नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार गर्मी की जुताई से कृषक अपने खेतों में कीटों की प्रारम्भिक संख्या को नियंत्रित कर सकते हैं। इस तरह की शस्य क्रिया द्वारा हम चना व तम्बाकू की इल्ली, कपास की डेटू छेदक, धान का तना छेदक व गंगई, डायमण्ड बैक मौथ, सोयाबीन की गर्डिल बीटल एवं तने की मक्खी, ज्वार व मक्का का तना छेदक, मक्खी व इल्ली, तिल हॉक मौथ, गन्ने का तना छेदक एवं शीर्ष वेधक, मूंगफली की सफेद गिडार इत्यादि एवं अन्य अनेक कीटों का गर्मी में गहरी जुताई करके भू–परिष्करण द्वारा प्रभावी नियंत्रण कर सकते हैं।

उचित फसल–चक्र

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन में उचित फसल–चक्र अपनाने की कार्य विधि इस तथ्य पर आधारित है कि किसी कीट को यदि भोजन की निरन्तर उपलब्ध रहती है तो वह कीट अपनी संख्या में गुणोत्तर वृद्धि कर विकराल रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार की स्थिति मे फसल अदल–बदल कर बोनी चाहिये। यदि एक ही खेत मे लगातार एक फसल किस्म उपयोग करते हैं तब उस क्षेत्र में कीट विशेष महामारी का रूप धारण कर लेती है। जैसे धान में गंगई तथा भूरा माहू, फूल गोभी व पत्ता गोभी को डायमण्ड बैक मौथ इत्यादि। अतः उचित फसल–चक्र अपनाते हुये बहुजातिय आधारित खेती करना चाहिये। कपास के बाद रात्रि, मक्का, धान, मूंगफली, लोबिया आदि फसलों के फसल–चक्र में शामिल करे तो कपास में कीट का प्रकोप कम हो सकता है। सोयाबीन व मूंगफली के बाद अफलीदार फसलों को फसल–क्रम में शामिल करे तो इनके कीट कम हो सकते हैं।

फसल अवशेष एवं खरपतवार प्रबंधन

कीटों को नुकसान पहुंचाने वाली एवं सुसुप्तावस्था की अवस्थाएँ मुख्य फसल की अनुपस्थिति में खेत के आस–पास उगने वाले खरपतवारों अथवा पूर्व फसल के अवशेषों पर अपना जीवन–चक्र पूर्ण करती हैं। इन कीटों के नियन्त्रण हेतु खेत के आस–पास तथा खेत में पूर्व में बाई गई फसल के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। इस विधि को अपनाकर सोयाबीन की गर्डल बीटल, ज्वार व मक्का में तना छेदक, स्वच्छ खेती करने से कई रोगजनक, हाइपर्स, पत्ती मोड़क, धान का हिस्पा, गॉल

मिज, तना भेदकों की संख्या को कम किया जा सकता है। ज्वार की फसल से वैकल्पिक परजीवी पौधे को निकाल देने पर भेदक व भुट्टा की मक्खी का प्रकोप कम किया जा सकता है। धान के ठूंठ इकट्टा कर नष्ट कर देने से धान के कीटों को समाप्त किया जा सकता है।

बुआई के समय में परिवर्तन करके

बुआई के समय में परिवर्तन करने से फसलों को कीट व बिमारियों के प्रारम्भिक प्रकोप से बचाया जा सकता है। जल्दी बुआई करने से धान में गालमिज पति मोड़क, ज्वार की सूट फ्लाई, हेड बग, मूंगफली में सफेद गिडार, सरसों में आरा मक्खी एवं माहू, तिल में पत्ती मोड़क, फली छेदक, अलसी मे फली मक्खी, लौकी का लाल भृंग आदि कीटों के प्रकोप से फसलों को बचाया जा सकता है। उचित समय पर बुआई करने से कपास में बॉल वर्म तथा गन्ना मे तना बेधक का प्रकोप कम होता है।

कषर्ण क्रियाएँ

फसल उत्पादन के लिये आवश्यक कषर्ण क्रियाएँ जैसे जुताई, निराई, गुड़ाई व खरपतवार नियंत्रण समय पर करने से कीट नियंत्रण में सहायता मिलती है। जैसे दीमक व कटुआ इल्ली कीटों का नियंत्रण इन विधियों से किया जा सकता है।

उचित बीज दर

उचित बीज दर उपयोग करने से उपयुक्त पौध संख्या उचित दूरी तथा पौध धनत्व संतुलित रहता है। जिससे अनचाहे पौधों की बढ़वार को रोका जा सकता है। मक्का व ज्वार में प्रस्तावित बीज दर से अधिक बीज उपयोग करने से क्रमश : भेदक कीट व सूट फ्लाई के प्रकोप से बचा जा सकता है।

उचित फसल ज्यामिति

छिटकाव पद्धति से बुआई करने पर पौधों की संख्या कम ज्यादा होने पर कीट आसानी से छिप सकते हैं और प्राकृतिक शत्रु व परभक्षी कीटों से आसानी से बच जाते हैं। उचित पौध दूरी का मुख्य उद्देश्य प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिकतम उपज प्राप्त करना है। लेकिन पौध संख्या, पौध स्वास्थ्य, वृद्धि व विकास तथा पकने की अवधि को प्रभावित करती है। अधिक धनत्व वाली पौध संख्या धान में भूरा फूंदका, सफेद फूंदका, गालमिज व पत्ती मोड़क का अधिक प्रकोप होता है। कपास में भी अधिक धनत्व वाली पौध संख्या होने पर रस चूसक व बॉल वर्म का प्रकोप बढ़ता है। लेकिन अधिक पौध संख्या से मूंगफली में एफिड, थ्रिप्स तथा लीफ माइनर का प्रकोप कम होता है। सोयाबीन में भी अधिक पौध धनत्व की पौध संख्या होने पर कीट अधिक नुकसान पहुंचाते हैं।

अर्न्तवर्ती फसल (अन्तरा सस्य)

मुख्य फसल के साथ अर्न्तवर्ती फसल लेने से कुछ कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है। यह फसलें मुख्य फसल में कीटों को आकर्षित कर मुख्य फसल पर प्रकोप कम होता है। कुछ अन्तर्वर्ती फसलों के कीटों के परजीवी व परपक्षी कीट अधिक मात्रा में आकर्षित होकर आश्रय पाते हैं जैसे अरहर की फसल पर लेडी वर्ड बीटल अधिक मात्रा में आती है जो माहू का भक्षी कीट है। कुछ कम ऊंचाई की फसलों के बीच ऊँचे पौधे वाली फसले, पक्षियों के बैठने के स्थान के रूप में काम आती है। जहां पक्षी फसल पर लगने वाली सूंडियों इत्यादि को चुनकर उन्हें खाते हैं। गन्ना के साथ धनिया उगाने पर गन्ना के वेधकों का प्रकोप कम होता है।

सरसों की फसल के साथ तारामीरा की अन्तवर्ती खेती करने पर माहू का प्रकोप कम होता है। चने की शुद्ध खेती की अपेक्षा इसकी अर्न्तवती खेती गेहूँ, जौ अलसी व सरसों के साथ करने पर चने की इल्ली का प्रकोप कम हो जाता है। जबकि चने के साथ मटर व मसूर की अन्तर्वर्ती खेती करने पर इसका प्रकोप बढ़ जाता है। सोयाबीन मे अरहर व मक्का की अंतवर्ती खेती करने पर सोयाबीन के कीटों का प्रकोप कम होता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

फसलों में संतुलित मात्रा में उर्वरक उपयोग करना अति आवश्यक है। इसके द्वारा पौधों में कीट व व्याधियों से लड़ने की क्षमता का विकास होता है। तब हम फसलों में कीट रोधी क्षमता का लाभ कीट नियंत्रण में संतुलित पोषक तत्वों के उपयोग द्वारा ले सकते हैं। नाइट्रोजन अत्यधिक प्रयोग करने से फसलों मे कीट अधिक आक्रमण की स्थिति निर्मित होती है। धान में तना छेदक, पत्ती मोड़क, गॉल मिज, हरा फूंदका, भूरा फूंदका, धान का हिस्प, मेगट आदि का प्रकोप नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग करने से बढ़ जाता है। गन्ना में भी बेधक कीटों व पाइरिल्ला का प्रकोप बढ़ता है। कपास में पत्ती मोड़क, सफेद मक्खी तथा वॉल वर्म का प्रकोप भी अधिक नाइट्रोजन देने से बढ जाता है। पोटाश व फास्फोरस का प्रयोग करने से कीटों का प्रकोप कम होता है। अतः फसलों को प्रस्तावित संतुलित उर्वरक देना चाहिये ।

जल प्रबंधन

उचित जल प्रबंधन कीट नियंत्रण में सहायक हो सकता है। उदाहरणार्थ धान की फसल के रस चूसक कीट जैसे भूरा माहू, हरा, माहू एवं गंगई का सफलतापूर्वक नियंत्रण किया जा सकता है। खेत से पानी निकाल देने से माहू व गंगई आदि कीट बहकर खेत से निकल जाते हैं। इसी प्रकार कटुआ, इल्ली, आर्मी वर्म, दीमक, सफेद गिडार आदि खेत में पानी भरने से नष्ट हो जाते है। गन्ना फसल में भूमि में अधिक नमी होने पर पाइरिल्ला की संख्या बढ़ जाती है। जबकि काली बग असिंचित अवस्था में अत्यधिक प्रकोप करती है।

ट्रैप फसलें

ट्रैप फसलें लगाने का उद्देश्य हानिकारक कीटों, व्याधियों से मुख्य फसल को बचाना है। ट्रेप फसलें सामान्यतः उसी कूल की या ऐसी होती है जो मुख्य फसल के हानि पहुंचाने वाले कीटों, रोगजनकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। जैसे गन्ने के बीच बीच में ज्वार के पौधे लगाने से गन्ना पर तना छेदक का प्रकोप नहीं होता है। फूलगोभी में सरसों सेमीलूपर को आकर्षित कर मुख्य फसल को बचाती है। कपास के खेत में भिण्डी के पौधे लगाने से कीट पहले भिण्डी पर प्रकोप करते हैं। सिमित भिण्डी के पोधों पर कीट नियंत्रण करना सुलभ व किफायती होता है एवं कपास जैसे महत्वपूर्ण नगदी फसल को कीटों के प्रकोप से बचाया जा सकता है। ट्रैप फसल के पौधे जैसे ही अधिक प्रकोपित हो जाए उन्हें उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिये ।

गेहूँ व जौ में कीट एवं व्याधि प्रबंधन

अशोक कुमार मीणा एवं एस. एल. गोदारा

पादप रोग विज्ञान विभाग
स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान

गेहूँ व जौ रबी मौसम की मुख्य अनाज की फसलें हैं। इन फसलों में कई प्रकार के कीट व रोग लगते हैं जो इन फसलों में बहुत हानि पहुंचाते हैं। इन का समय पर उचित प्रबन्धन करना अति आवश्यक है। उचित प्रबन्धन के अभाव में ये कीट व रोग बहुत नुकसान कर देते हैं तथा कभी–कभी पूरी फसल को नष्ट कर देते हैं।

प्रमुख कीट

मोयला

मोयले का प्रजनन ठण्डे मौसम में शुरू होता है तथा फरवरी–मार्च में इसकी सबसे अधिक संख्या होती है। यह कीट कोमल पत्तियाँ तथा बालियों से रस चूस कर नुकसान करता है। इसका प्रकोप ठण्डे आर्द्र तथा बादल वाले मौसम में अधिक होता है।

प्रबन्धन

- बालियाँ निकलते समय या जब कीट का प्रकोप हो तब **क्राइसोपरला** प्रजाति या लेडी भृंग की 500 लटें प्रति हैक्टर मोयला ग्रसित फसल पर छोड़कर इसका प्रबन्धन किया जाता है।
- 375 मि.ली. डायमेथोएट 30 ई.सी. या ऑक्सीडिमेटोन मिथाईल 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करके इसका प्रबन्धन किया जा सकता है या थायोमिथोक्साम (25 डब्ल्यू. जी.) 50 ग्राम प्रति बीघा की दर से छिड़काव करें। समय पर बुवाई करने से भी इस कीट के प्रकोप से बचाव होता है।

सैन्य कीट

वयस्क शलभ का रंग पीला–भूरा होता है। यह सूखे या हरे पौधे या फिर मिट्टी में अण्डे देती है। इसका शंकु मिट्टी में 0.5 से 5 से.मी. की गहराई पर या सूखी पत्तियों में बनता है। इस कीट का अधिकतम प्रकोप मार्च में होता है। यह कीट पहले पौधे की बीच की कोमल पत्तियों को खाता है तथा बाद में पुरानी पत्तियों को खाता है एवं पूरी पत्ती को जालीनुमा कर देता है। कीट का अधिक प्रकोप होने पर यह कीट पूरी पत्ती को खा जाता है तथा खेत में फसल ऐसे दिखती है जैसे कोई पशु चर गया है।

प्रबन्धन

- प्रकोप कम होने की अवस्था में कीट की लटों को हाथ से इकट्ठा करके नष्ट करना चाहिए।
- मैना, घरेलू चिड़िया, बगुला आदि पक्षियों को इस कीट की लटों को खाने के लिए आकर्षित करना चाहिए। 500 मि.ली. लीटर डाइक्लोरफॉस 85 एस. एल. या एक लीटर क्यूनालफॉस 25 ई.सी. या एक किलोग्राम कार्बरिल।
- 50 डब्ल्यू. पी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करके रासायनिक प्रबन्धन किया जा सकता है।

गुजिया सुण्डी (वीविल)

गुजिया सुण्डी का रंग मिट्टी जैसा भूरा होता है। इसका प्रकोप दिसम्बर माह तक रहता है। यह अण्डे मिट्टी में ढेलों के नीचे या दरारों में देती है तथा शंकु मिट्टी में 15 सें.मी. से अधिक गहराई पर बनता है। यह गेहूँ व जौ की फसलों को उगते समय खा जाती है। इस कीट के वयस्क कोमल पत्तियों व तनों को खाते हैं। फसल उगने के समय अक्तूबर से नवम्बर में इस कीट का प्रकोप अधिक रहता है। यह पौधों को जमीन की सतह के पास से काट कर नष्ट कर देती है।

प्रबन्धन

इस कीट का रासायनिक कीट प्रबन्धन कार्बरिल 5 प्रतिशत या मिथाईल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या मैलाथियॉन 5 प्रतिशत धूलकण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करके किया जा सकता है।

दीमक

दीमक गेहूँ व जौ की फसल में बुवाई के तुरन्त बाद तथा फसल पकने के समय नुकसान करती है। दीमक द्वारा खाया हुआ पौधा पूरा सूख जाता है तथा आसानी से उखड़ जाता है। जिन पौधों में देर से प्रकोप होता है उनमें बाली सफेद हो जाती है।

प्रबन्धन

- दीमक प्रबन्धन के लिए खेत में से पुरानी फसल के सभी अवशेष हटा देनी चाहिए।
- अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद का उपयोग करना चाहिए। वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग करके इसका प्रकोप रोका जा सकता है।
- क्लोरपाईरीफॉस 20 ई.सी. 4 मि.ली. प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीज उपचार करना चाहिए।
- मिथाईल पैराथियॉन 2 प्रतिशत धूल कण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से भूमि उपचार करना चाहिए।
- खड़ी फसल में 4 लीटर क्लोरपाईरीफॉस 20 ई.सी. प्रति हैक्टर सिंचाई के पानी के साथ देना चाहिए।

गेहूँ की बरूथी

सूखे की अवस्था में बरूथी का प्रकोप अधिक होता है व बारानी और सिंचित दोनों क्षेत्रों में नुकसान करती है। इसका शिशु तथा वयस्क दोनों पत्ती के ऊपरी व नीचे की सतह पर, पत्ती की शीर्ष तथा बालियों पर रस चूस कर नुकसान करते हैं। पत्तियाँ ऊपर से सूखते हुए नीचे की ओर बढ़ती है। पौधा पीला पड़ जाता है। पौधे की बढ़वार रूक जाती है तथा पौधे में विकृति आ जाती है। बरूथी विषाणु रोग भी फैलाती है और फसल में भारी नुकसान होता है।

प्रबन्धन

1. सूक्ष्म तत्व जस्ता व बोरोन को भूमि में मिलाकर बरूथी का प्रबन्धन किया जा सकता है।
2. ईथियोन (0.05 प्रतिशत), डाईमेथोएट (0.03 प्रतिशत) तथा मोनोक्रोटोफॉस (0.04 प्रतिशत) के छिड़काव से बरूथी का प्रभावी प्रबन्धन हो जाता है।

प्रमुख रोग

इस फसल में अनेकों प्रकार की व्याधियाँ लगती हैं जिनमें निम्न व्याधियाँ प्रमुख हैं :–

अनावृत कण्ड

रोगी पौधों में बालियाँ प्रायः स्वस्थ पौधों की अपेक्षा कुछ पहले निकलती हैं तथा सभी बालियाँ काले चूर्ण का रूप ले लेती हैं और उनमें दाने नहीं बनते हैं। यह काला चूर्ण रोग जनक कवक के असंख्य कंड बीजाणु है। बीजाणु बालियों से आसानी से अलग हो जाते हैं एवं शुष्क मौसम में लगभग सभी बीजाणु वायु में उड़ जाते हैं। कभी–कभी ऐसी बालियाँ भी बनती हैं जो केवल आंशिक रूप से काले चूर्ण में बदल जाती हैं।

नियंत्रण के उपाय

- रोग रहित प्रमाणित बीज बोई जानी चाहिए।
- बीजों को कार्बोक्सिन या कार्बेन्डजिम जैसी सर्वांगी कवकनाशी दवाओं से 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा के हिसाब से उपचारित करके इस रोग को अच्छी तरह से रोका जा सकता है।
- रोगी बालियों को कागज के लिफाफे से ढककर तोड़नी चाहिए तथा उन्हें जला देना चाहिए।
- सौर उपचार विधि से गर्मी के दिनों में सुबह 4 घंटे के लिये पानी में भिगोकर दोपहर 12 से 4 बजे तक 4

घंटे के लिए कड़ी धूप में सुखा देना चाहिए। पानी में भिगोने से बीज में स्थिर कवक क्रियाशील हो जाता है, जो कड़ी धूप में सुखाने पर मर जाता है।

रोली / किट्ट रोग

गेहूँ की फसल पर तीन प्रकार की रोली लगती है–पीली रोली, भूरी रोली और काली रोली! ये तीन विभिन्न कवकों द्वारा उत्पन्न होती हैं। परन्तु भूरे एवं पीली रोली से क्षति अधिक होती है।

काली / तना रोली

तनों, पत्तियों एवं पर्णाच्छदों पर लंबे, लाल भूरे रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। तनों पर इनकी संख्या अधिक होती है। ये धब्बे लम्बाई में 5–7 मि.मी. या इससे अधिक एवं प्रायः एक–दूसरे से मिले रहते हैं। इन धब्बों के फटने पर इनमें से भूरा चूर्ण निकलता है। रोग के भयंकर प्रकोप में पौधे अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं। दाने नही बनते हैं और यदि बनते भी हैं तो हल्के एवं सिकुड़े हुए होते हैं।

इस रोग में पत्तियों पर छोटे–छोटे अंडाकार हल्के पीले रंग के धब्बे कतारों में पाये जाते हैं। यह रोग गेहूँ में बालियाँ लगने के पहले ही प्रकट होता है। अतः नुकसान अधिक एवं दाने सिकुड़े हुए होते हैं। अत्याधिक प्रकोप हो जाने पर भी पौधें की पत्तियॉ सूख जाती हैं। रोगी पौधों की जड़ों की बढ़वार कम होती है, जिससे उपज घट जाती है।

भूरी रोली

इसके लक्षण पत्तियों पर ही पाए जाते हैं परन्तु कभी–कभी पर्णाच्छदों एवं तनों पर भी देखे जाते हैं।

नियंत्रण के उपाय

- देर से बोई या देर से पकने वाली गेहूँ की किस्मों पर भूरे एवं काले किट्ट से अधिक हानि होती है अतः फसल समय पर बोनी चाहिए।
- नत्रजन प्रधान उर्वरकों की अत्यधिक मात्रा किट्ट रोगों को बढ़ाने में सहायक होती है, अतः उर्वरकों के संतुलित अनुपात में पोटाश की उचित मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।
- आवश्यकता से अधिक सिंचाई भी रोग बढ़ाने में सहायक हो सकती है। अतएव रोग नियंत्रण की दृष्टि से सिंचाई यथावश्यक मात्रा में करनी चाहिए।
- रोग के प्रारंभिक अवस्था में मेन्कोजैब (डाइथेन एम–45) नामक कवकनाशी के छिड़काव से तीनों किटों का नियंत्रण किया जा सकता है। छिड़काव के लिए पानी की मात्रा फसल की बढ़वार पर निर्भर करती है।

मोल्या रोग

गेहूँ तथा जौ का मोल्या रोग सर्वप्रथम भारत के राजस्थान प्रांत के सीकर जिले में देखा गया, तत्पश्चात् इसकी उपस्थिति पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, दिल्ली, जम्मू–कश्मीर आदि सभी गेहूँ तथा जौ उत्पादक राज्यों में देखी गई है। मोल्या रोग के कारण इन फसलों की पैदावार में भारी नुकसान का आंकलन किया गया है। इस रोग का प्रमुख लक्षण खेत का चप्पेदार हिस्सों में बंट जाना है। अधिक संक्रमण पर पूरा खेत पोषण अभाव के लक्षण दर्शाने लगता है। यह रोग सूत्रकृमि जनित रोग है। यह सूत्रकृमि जड़ पर जिस किसी स्थान पर आक्रमण करता है, पौधा उस स्थान पर नई जड़ें छोड़ देता है। इस प्रकार कई पतली पतली नई जड़ों के बनने से पौधों की जड़े गुच्छेदार हो जाती है। सूत्रकृमि इन जड़ों में प्रवेश कर पौधे से पोषक तत्व तथा जल इत्यादि का अवशोषण करता रहता है, जिससे पौधे बोने रह जाते हैं और उनमें पीलापन आ जाता है। गुच्छेदार जड़ों में ध्यान से जड़ों को पानी में धोकर देखा जाए तो मोतियों की तरह चमकती हुई, सफेद रंग की, छोटी–छोटी, गोल आकार की सूत्रकृमि की मादाएं चिपकी हुई देखी जा सकती है। बाद में इन मादाओं की भित्ति ऑक्सीकृत होकर भूरी हो जाती हैं, मादाएं मर

जाती हैं किन्तु उनमें 300 से 400 अण्डे प्रति मादा भित्ति में रहते हैं और अगली ऋतु तक सुरक्षित पड़े रहते हैं। मादा की अण्डों से युक्त इस रचना को पुटि कहते हैं। आगामी ऋतु में गेहूँ अथवा जौ के बोए जाने पर पुटि से डिम्भको का निर्गमन होता है और वे नई जड़ों में भेदन कर रोग उत्पन्न करते हैं। मोल्या रोग द्वारा हल्की मृदाओं में सर्वाधिक नुकसान होता है। यह अन्न खाद्यान वर्ग की घास–खरपतवार पर भी संक्रमण और प्रजनन कर सकता है। गेहूँ तथा जौ की फसल मे सूत्रकृमियों की लगभग 30 प्रजातियाँ का सम्बंध पाया जाता है। जिनमें धान्य पुट्टी सूत्रकृमि (हेटेरोडेरा एवीनी) सबसे प्रमुख है। इस सुत्रकृमि से गेहूँ व जौ में भारी नुकसान होता है तथा इससे जनित बीमारी मोल्या के नाम से जानी जाती है जिसका अर्थ फसलों को बन्दरों के द्वारा नोचे जाने से है अर्थात् इसका मुख्य लक्षण छितराई हुई बढ़वार है। राजस्थान के 35 जिलों में से लगभग 25 जिलों में अभी तक इस रोग की उपस्थिति दर्ज गई है।

रोग प्रभावकता

रोग की प्रभावकता वातावरणीय कारणों पर निर्भर करती है क्योकि पूरे वर्ष मे पट्टी सूत्रकृमि की सिर्फ एक ही पीढ़ी तैयार होती है। यदि इस समय बुवाई की जाये तो सूत्रकृमि के लार्वा को भोज्य फसल की जड़ मिल जाती है तथा ये अन्दर घुसकर अपनी वृद्धि करना शुरू कर देते हैं। इनके अलावा दूसरे कारक जैसे मृदा प्रकार, मृदा विन्यास, भोज्य फसल की उम्र व लार्वा की संख्या भी फसल में होने वाले नुकसान के लिए जिम्मेदार हैं। अच्छी सिंचित फसल में सूत्रकृमि अधिक नुकसान करते हैं और फसल की उत्पादकता में कमी के रूप में सामने आता है। गेहूँ व जौ के लिये आर्थिक हानि का ऊपरी स्तर मिट्टी के प्रति ग्राम में लगभग 20 अंडे और कृमि शिशु हैं। रोग के लक्षण पीले छितराये छोटे पौधों का खेत के कुछ हिस्सों में दिखना है। संक्रमित पौधों में पत्तियाँ, वायुवीय शाखायें कम हो जाती हैं। बालियाँ निकलने का बदला समय व दोनों की संख्या में कमी आदि बाह्य लक्षण हैं।

नियंत्रण के उपाय

गर्मियों में गहरी जुताई करें

मई–जून के महीने में 10–15 दिन के अन्तराल से 2–4 गहरी जुताई करने से सूत्रकृमि की संख्या में लगभग 40 प्रतिशत तक कमी हो जाती है। गर्मियों की गहरी जुताई करते समय ध्यान रखें कि इससे किसी प्रकार का भूमि का कटाव न हो। खरीफ में खेत खाली रखने या बाजरा, मूंगफली लगाने से धान्यपुट्टी सूत्रकृमि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

फसल–चक्र व मिश्रित फसल

दो रोगग्राही फसलों के बीच रोगरोधी या अभोज्य फसल लगाने से सूत्रकृमि की संख्या आर्थिक नुकसान बिन्दु के नीचे आ जाती है। इसके लिये अभोज्य फसलें जैसे चना, सरसों, गाजर, मूली, धानिया, पालक व प्याज उचित हैं जो कि सूत्रकृमि की संख्या में 47–55 प्रतिशत तक की कमी ला देती है। धान्यपुट्टी सूत्रकृमि सिर्फ गेहूँ, जौ व जई पर ही अपना जीवन निर्वाह करता है। अतः अन्य फसल लगाने की स्थिति में दो वर्ष के बाद सूत्रकृमि की संख्या में 75 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। इसी प्रकार धान्य फसलों के बीच में सरसों या अन्य अभोज्य फसल लगाने पर भी रोग की तीव्रता एवं सूत्रकृमि की संख्या में कमी आती है।

कार्बनिक खादों का प्रयोग

1 से 5 कुंतल प्रति हैक्टर की दर से खल, गोबर की खाद, बुरादा या कम्पोस्ट खाद यदि रोग ग्रसित खेत में मिलाई जाये तो इससे गेहूँ व जौ की पैदावार में बढ़ोत्तरी व सूत्रकृमि की संख्या में कमी होती है।

बुवाई का समय

सूत्रकृमि वर्ष में एक बार अक्तूबर–नवम्बर माह में ही अपनी पुट्टी से बाहर आता है, अतः उस समय भोज्य

फसल बड़ी हो तो उस पर सूत्रकृमि का प्रभाव कम होता है। इसके लिये जल्दी बुवाई करना उचित रहता है।

नीम तेल से उपचार

10 कुंतल प्रति हैक्टर वर्मी कम्पोस्ट के साथ 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज, नीम का तेल प्रयोग में लेने से सूत्रकृमि की संख्या में कमी व गेहूँ की पैदावार में वृद्धि होती है, इसके साथ ही इसकी लागत भी काफी कम आती है और गेहूँ व जौ की फसल में पोषक तत्वों की पूर्ति भी हो जाती है।

रासायनिक उपचार

रोग की बहुत अधिकता में कार्बोफ्यूरान 3 जी. नामक रसायन 15 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से मिलाये इससे सूत्रकृमि की संख्या में कमी व उपज अधिक मिलती है।

रोग रोधी किस्में

जौ–राजकिरण गेहूँ–आर.डी.–2050, आर.डी. 2052, राज एम.आर.–1

जौ का पत्तीधारी रोग

लक्षण

यह रोग ड्रेशलेरा ग्रेमिनी नामक कवक द्धारा उत्पन्न होता है। यह एक बीज जनित रोग है । इस रोग के लक्षण पीले रंग के पट्टिकाओं के रुप में नई विकसित हरी पत्तियों व पत्ति ब्लेड पर दिखाई देने लगते हैं। धीर–धीरे इन धारियों का विस्तार पत्तियों की पूरी लंबाई पर होकर सम्पूर्ण पत्तियों सूख जाती हैं। पत्तियों पर कवक संक्रमण की व्यापकता बढ़ जाने पर पौधों पर अविकसित बालियाँ या बालियों में दानें अविकसित रह जाते हैं ।

प्रबन्धन

- अन्वेषणों में ड्रेशलेरा ग्रेमिनी के कवक जाल वृद्वि एवं बीजाणु अंकुरण पर चुनिदा छः कवकनाशियों जैसे– विटावेक्स पॉवर, कवच, टिल्ट, कॉम्पेनियन, कन्ट्रोल तथा स्कोर का प्रभाव अच्छा पाया गया। तथा साथ ही जौ में कवकनाशियों के प्रभाव का अध्ययन बीज अंकुरण, पूर्व व पश्च उन्मज्जन नश्वरता तथा पादप वृद्वि कारकों जैसे – जड़ व तना लम्बाई तथा ओज अनुक्रमणिका पर भी अच्छा पाया गया।
- अन्वेषणों में जौ की पाँच किस्मों उच्च संवेदनशील (आर.डी.–2035), संवेदनशील (आर.डी.–2406), मध्यम संवेदनशील (आर.डी.–2475), प्रतिरोधी (आर.डी.–2472) तथा उच्च प्रतिरोधी (आर.डी. –2462) के जीन प्रारूपों में जैव–रासायनिक परिवर्तन एवं जौ के पत्तीधारी रोग के विरूद्ध अच्छी पायी गयी।
- परिणामों से प्रदर्शित हुआ कि सभी छः कवकनाशी जैसे विटावेक्स पॉवर, कवच, टिल्ट, कॉम्पेनियन, कन्ट्रोल तथा स्कोर क्रमशः 10, 50, 100, 200, 500 पी.पी.एम. तथा 0.05, 0.10 तथा 0.15 प्रतिशत सान्द्रताओं पर ड्रेशलेरा ग्रोमिनी की कवक जाल वृद्धि एवं बीजाणु अंकुरण को प्रभावी रूप से अवरोधित हुए पाये गये। विटावेक्स पॉवर, ड्रेशलेरा ग्रेमिनी की कवक जाल वृद्वि एवं बीजाणु अंकुरण को सर्वाधिक अवरोधित किया। कवच और टिल्ट भी ड्रेशलेरा ग्रेमिनी की कवक जाल वृद्धि एवं बीजाणु अंकुरण पर अधिकतम रूप से अवरोधित सिद्ध हुए। विटावेक्स पॉवर, कवच, टिल्ट के बीजोपचार से बीज अंकुरण, जड़ तथा तना लम्बाई व ओज अनुक्रमणिका में वृद्वि तथा पूर्व व पश्च उन्मज्जन नश्वरता में कमी पाई गई।

उत्तरी भारत में काली रोली प्रायः देर से लगती है अतः इससे फसल को अधिक हानि नहीं हो पाती है।

सारणी 1 : कवकनाशीयों का कवक जाल वृद्धि पर प्रभाव

कवकनाशी	औसत
वीटावैक्स पाउडर	84.55
कवच	77.02
टिल्थ	73.49
कम्पेनियन	70.31
कंट्रोल	67.81
स्कोर	57.07

जिंक की कमी

लक्षण

- जिंक की कमी के कारण पौधों में वृद्धि रूक जाती है। पत्तियां बीच की शिरा के पास से समानान्तर पीली पड़नी प्रारम्भ हो जाती है तथा शिरा हरी रहती है।
- इस प्रकार के पौधे छोटे–छोटे सीमित क्षेत्रों में पाये जाते हैं।
- यह कमी पौधों में फुटान के समय शुरु की तीसरी अथवा चौथी पत्ती से प्रारम्भ होती है।
- नत्रजन उर्वरक देने के बावजूद भी जिंक की कमी वाले पौधों में हरापन नहीं आता है।

प्रबन्धन

- खड़ी फसल में जिंक की कमी के लक्षण प्रकट होने पर पांच किलो जिंक सल्फेट (कॉमर्शियल ग्रेड) एवं तीन किलोग्राम बुझा चूना 400 लीटर पानी में डालकर प्रति हैक्टर के हिसाब से छिड़काव करें।
- मृदा परीक्षण के आधार पर जिन खेतों में जिंक का न्यूनतम स्तर (0.60 पी.पी.एम. से कम) पाया जाये तो वहां बिजाई से पूर्व 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट तथा मध्यम स्तर (0.60 से 1.20 पी.पी.एम.) पर 2 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से जमीन में मिला दें।

सारणी 2: कवकनाशीयों का बीज अंकुरण, अंकुरण से पहले व बाद की मृत्युदर, जड़ तथा तना लम्बाई पर प्रभाव

कवकनाशी	सान्द्रता	बीज अंकुरण	जड़ लम्बाई में वृद्धि	तने की लम्बाई में वृद्धि	ओज अनुक्रमणिका
	(%)	(%)	(%)	(%)	
वीटावैक्स पाउडर	0.15	96.96	88.86	60.86	19.59
कवच	0.15	96.96	56.11	35.79	16.39
टिल्थ	0.15	93.66	32.10	20.47	13.77
कम्पेनियन	0.15	90.36	21.40	16.99	12.62
कंट्रोल	0.15	83.66	16.81	10.72	11.12
स्कोर	0.15	80.17	6.99	4.46	9.94

जौ में समेकित कीट प्रबन्धन द्वारा उपज वृद्धि

विनय कुमार यादव, ममता काजला, एस.के.गौरी, आर एस छोकर,
आर के शर्मा एवं अनुज कुमार

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत प्राचील काल से ही कृषि प्रधान देश रहा है। जौ उत्तर भारत के अधिकांश प्रदेशों में उगाई जाती है। कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों के कारण जौ में 5–10 प्रतिशत उपज की हानि हो जाती है। जिससे दाना एंव बीज की गुणवत्ता भी खराब हो जाती है। जौ की फसल में प्रमुख रुप से दीमक, कर्तन कीट, सैनिक कीट, तना मक्खी एंव बाली का निमाटोड आदि लगने की सम्भावना रहती है। उन्नत बीज व उत्पादन तकनीक ने भारत को इस क्षेत्र में आत्मर्निभर बनाया है। उन्नत तकनीकों में विभिन्न कृषि रसायनों के प्रयोग व अधिक खाद की आवश्यकता के कारण उत्पादन की लागत लगातार बढ़ रही है। आज इस विकास की होड़ में ज्यादा से ज्यादा उत्पादन लेने की प्रतिस्पर्धा सी लग गई है, जिससे रसायनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है।

इसके दुष्परिणाम भी अब परिलक्षित होने लगे हैं। इन रसायनों के कारण न सिर्फ वातावरण एवं भूमिगत जल दुषित हो रहा है वरन् कीटों में इन दवाओं के प्रति अवरोधिता भी बढ़ गई एवं कीटनाशी अप्रभावी सिद्ध हो रहे है। रसायनों के अधिक प्रयोग से केचुए भी इन रसायनों की भेंट चढ़ रहे हैं। खाद्य पदार्थों में कीटनाशियों के अवशेष भी पाए जाने लगे हैं, जिसके परिणामस्वरुप मनुष्य एवं पशुओं में विभिन्न प्रकार की बिमारियां जैसे अंगों का विकृत होना पाया जाने लगा है। अतः जरुरी है कि कीट नियंत्रण की ऐसी तकनीक अपनायी जाए जिससे अधिक उत्पादन के साथ–साथ लागत कम हो एवं मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित भी हो।

समेकित कीट प्रबंधन में कम से कम रसायनों का प्रयोग, शस्य–कियाओं में सुधार तथा कीटों की निगरानी रखते हुए कीटों का उचित समय पर नियंत्रण किया जाता है। सुनियोजित एवं विवेकपूर्ण फसल प्रबंधन योजनाएं ही फसलों पर लगने वाले कीटों से सुरक्षित कर अधिक उपज में मुख्य भूमिका निभाती है। आज जौ की फसल उगाने में बाधाएं आ रही हैं। उसको सुलझाने में सुरक्षा का विशेष महत्व है। अतः इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए जौ में लगने वाले कीटों को एक सीमा तक नियंत्रण कर दिया जाए तो जौ की उत्पादकता को बढ़ाते बढ़ाया जा सकता है।

जौ के प्रमुख हानिकारक कीट

1 दीमक

यह जौ का प्रमुख हानिकारक कीट है जो असिंचित व हल्की भूमि में अधिक नुकसान पहुँचाता है। इसके प्रकोप से 25 प्रतिशत तक अंकुरित पौधे नष्ट हो जाते हैं एवं इसका प्रकोप फसल की सम्पूर्ण अवस्थाओं में पाया जाता है। दीमक हल्के भूरे रंग की होती है तथा यह जमीन में सुरंग बनाकर रहती है और पौधों की जड़ों को काटकर क्षतिग्रस्त कर देती हैं। इससे प्रभावित पौधे धीरे–धीरे सूख जाते हैं और ऊपर खींचने पर आसानी से निकल जाते हैं इसका प्रकोप खण्ड़ों में कही कही होता है, जिससे इसे आसानी से पहचाना जा सकता है।

प्रबंधन

- बीज को बुआई से पूर्व इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू.एस. 0.1 प्रतिशत से उपचारित करें।
- प्रभावित खेत में सिंचाई समय–समय पर करते रहें।
- दीमक का अधिक प्रकोप होने पर क्लोरपाइरिफॉस 20 ई.सी. की 3–4 लीटर मात्रा को बालू/रेत में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

2 पत्ती का माहू

यह कीट भारत के सभी क्षेत्रों में पाया जाता है तथा यह पंखहीन एवं पंखवाला दोनों अवस्था में होता है। इस कीट का प्रकोप प्रायः जनवरी से शुरु होकर मार्च तक रहता है। यह फसल की पत्तियों का रस चूसकर नुकसान पहुँचाता है तथा इसके मल से पत्तियों पर चिपचिपाहट एवं काली रंग की फफूंद पैदा हो जाती है। जिससे फसल का रंग खराब हो जाता है एवं पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

प्रबंधन

- जौ की फसल में नत्रजन उर्वरकों का अधिक प्रयोग न करें।
- कीट के शुरु के आक्रमण ग्रसित प्ररोहों को तोड़कर नष्ट कर दें।
- माहू का प्रकोप होने पर पीले चिपचिपे ट्रैप का प्रयोग करें जिससे माहू ट्रैप पर चिपक कर मर जाए।
- आवश्यकता होने पर मैलाथियान 50 ई.सी का या डाइमेथोएट 30 ई.सी. या मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. 1. 25 से 2.0 मि.ली. प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

3 सैनिक कीट (आर्मी वर्म)

प्रौढ़ कीट भूरा रंग का होता है। मादा कीट पर्ण छेद एवं तने की मध्य में अण्डे देती है। नवजात सूण्डी बहुत गतिशील होती है जो शुरु में मटमैली सफेद व बाद में हरी हो जाती है। इस कीट की सूण्डी जौ की फसल को नुकसान पहुंचाती है तथा यह सूण्डी मार्च के महीने में सर्वाधिक पायी जाती हैं। अण्डों से निकली सूण्डी हवा के झोंको से एक पौधों से दूसरे पौधों तक पहुंच जाती है। प्रथम अवस्था में ये पौधे के मध्य वाली कोमल पत्तियों को खाती है। जैसे–जैसे सूण्डी बढ़ती है तो उसके साथ–साथ पुरानी पत्तियों को खाने लगती है और पत्तियों में मात्र मुख्य शिरा बचता है इस प्रकार पौधा कंकाल का रुप ले लेता है। बड़ी सूण्डियां बालियों को पत्तियों सहित खाती है तथा साथ ही अपरिपक्व दानों को भी खाती है अतः इसे बाली खाने वाला कीट भी कहा जाता है।

प्रबंधन

- फसल की बुआई से पूर्व खेत में खड़े हुए पूर्व के अवशिष्टों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।
- खेत एवं आस–पास खड़े खरपतवार को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- कीट का प्रकोप होने पर डाइमेथोएट 30 ई.सी. की 1.5 से 1.75 मि.ली. मात्रा प्रति ली. पानी में या क्विनॉलफॉस 25 ई.सी. 1 लीटर या डायक्लोरफॉस 76 प्रतिशत 500 मि.ली. को 700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

4 प्ररोह मक्खी या तना मक्खी

इस कीट का प्रौढ़ घरेलू मक्खी जैसा होता है तथा मेगट गुलाबी सफेद हो जाता है। यह कीट नवम्बर से मार्च तक पाया जाता है लेकिन नवंबर–दिसंबर में अधिक सक्रिय रहता है। मादा कीट नर कीट से बड़ी होती है। मादा मक्खी तने के निचले भाग में या पत्तियों के नीचे अण्डे देती है। अण्डे से मैगट निकलकर तने में छेद करके अन्दर प्रवेश कर जाते हैं और अंदर से तने को खाते रहते हैं। तने के अंदर सुरंग बनाकर मृत केन्द्र डेड हर्ट का निर्माण करती है। जिसके कारण पौधा पीला पड़ जाता है और अन्त में सूख जाता है। पूर्ण विकसित मैगट तने के निचले भाग में प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है तथा 6–7 दिन बाद व्यस्क कीट बन जाता है।

प्रबंधन

- एक ही खेत में लगातार जौ की फसल न उगाए तथा फसल–चक्र अपनायें।
- जौ की फसल की बुआई 15 नवंबर के बाद करें।
- खेत में पानी की मात्रा पर्याप्त होने पर इस कीट का प्रकोप कम होता है।
- कीट का प्रकोप होने पर साइपरेमथ्रिन 25 प्रतिशत

का 350 मि.ली. या मोनोक्रोटोफॉस 36 प्रतिशत एस. एल. 650 मि.ली. मात्रा का पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

- कार्बरिल 10 प्रतिशत डी.पी. 25 कि.ग्रा0 प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

5 कर्तन कीट

इस कीट का प्रकोप देश के प्रत्येक भाग में होता है। कीट का व्यस्क मटमैला भूरा तथा सूण्डी हरे या काले भूरे रंग की होती है। इस कीट की सूण्डियां खेत में एक साथ आक्रमण करके संपूर्ण पत्तियों को नष्ट कर देती है। मादा कीट रात के वातावरण में निकलकर पतियों पर अण्डे देती हैं इसकी सूण्डी जमीन में जौ के पौधें के पास मिलती है तथा जमीन की सतह से पौधों को काट देती है।

प्रबंधन

- खेतों के पास प्रपंच / फेरोमोन ट्रैप 20 प्रति हैक्टर के हिसाब से लगाकर प्रौढ़ कीटों को आकर्षित करके नष्ट किया जा सकता हैं, जिससे इनकी संख्या को कम किया जा सकता है।
- खेतों के बीच में जगह–जगह घास–फूस के छोटे–छोटे ढ़ेर शाम को लगा देने चाहिए, रात्रि में जब सूण्डियां खाने निकलती है एवं बाद में इन्हीं में छिपेंगी, घास–फूस को हटाने पर आसानी से नष्ट किया जा सकता है।
- कीट का प्रकोप बढ़ने पर डाईमेथोएट 30 ई.सी. को 1.5 से 2.0 मि.ली. प्रति है. ली. पानी में या क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. 1 ली. प्रति है. या नीम का तेल 3 प्रतिशत की दर से प्रभावित खेत में छिड़काव करें।

समन्वित रोग प्रबंधन से गेहूँ और जौ का उत्पादन बढ़ाये

आत्मानंद त्रिपाठी[1], राकेश रोशन[1] एवं जे.के. पाण्डेय[2]

1. आई.सी.ए.आर.–केन्द्रीय पटसन एवं संबद्ध रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकता (प.बगांल)
2. भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ (ट्रिटिकम एस्टिवम व ट्रिटिकम ड्यूरम) एवं जौ (होर्डियम वुल्गेयर) दुनिया की प्रमुख खाद्यन्न फसलें है। भारत गेहूँ के उत्पादन में विश्व में दूसरे स्थान पर है। हमारे देश में जौ की खेती अतिविशिश्ट अनाज के रुप में आदिकाल से की जाती रही है। इन दोनो फसलों को राष्ट्रीय खाद्यन्न एवं पोशण सुरक्षा को बनाए रखने में अति महत्वपूर्ण योगदान है। गेहूँ और जौ की खेती हेतु शीतोष्ण जलवायु सर्वाधिक उपयुक्त होती है। गेहूँ की राष्ट्रीय स्तर पर औसत उत्पादकता 32 कुंतल/है. जबकि जौ की 25 कुंतल प्रति हैक्टर है। इन फसलों की उत्पादकता में कमी का मुख्य कारण कृषकों द्वारा वैज्ञानिक तरीके से खेती का न करना एवं विभिन्न प्रकार के पीड़क कीटों एवं रोग व्याधियों का प्रकोप होना है। रोग व्याधियों के प्रकोप के कारण फसल के उपज में कमी व विपणन गुणवत्ता में गिरावट के कारण कृषकों को लागत की तुलना में कम आय की प्राप्ति होती है। अतः कृषक समन्वित रोग प्रबंधन की तकनीकों को अपनाकर फसल की उपज में रोगों से होने वाली मात्रात्मक व गुणात्मक क्षति को कम लागत से अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं। गेहूँ और जौ की फसल में मुख्य रुप से रतुआ या गेरुआ (रस्ट), कंडुवा (कंगियारी), करनाल बंट, चूर्णिल आसिता एवं गेगला (सेहूँ) का प्रकोप होता है। जलवायु परिस्थतियों एवं रोगजनकों के वितरण परस्पर आधारित समन्वित रोग प्रबंधन के घटकों को अपनाने से रोगों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। समन्वित रोग प्रबंधन के घटक इस प्रकार है:

1 कृषिगत विधियाँ

ये परंपरागत रुप से अपनायी जाने वाली रोग प्रबंधन की विधियाँ हैं। इसके अन्तर्गत फसल की बुआई हेतु उपयुक्त समय का चयन, अनुशंसित बीज दर व उर्वरकों का संतुलित प्रयोग एवं खरपतवार नियंत्रण पर ध्यान देना चाहिए। इसके अलावा समन्वित रोग प्रबंधन हेतु अनुशंसित फसल चक्र को अपनाना चाहिए जिससे कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार के साथ–साथ उपज में वृद्धि होती है।

2 रोगरोधी किस्में उगाना

समन्वित रोग प्रबंधन हेतु रोगरोधी किस्मों का प्रयोग सबसे ज्यादा सस्ता व टिकाऊ होता है। इसके अन्तर्गत फसलों की रोगरोधी किस्मों का खेती हेतु चयन किया जाता है। अतः कृषक इन किस्मों को उगाकर विभिन्न रोगों का प्रबंधन कर सकते हैं। गेहूँ एवं जौ की विभिन्न क्षेत्रों के लिए अनुमोदित नई किस्मों में रोग रोधिता होने की वजह से बिमारियों का प्रबंधन आसानी से किया जा सकता है।

3 रासायनिक विधियाँ

यह रोग प्रबंधन की सबसे ज्यादा प्रभावी व आसान विधि है परंतु समिन्वत रोग प्रबंधन में रासायनिक रोगनाशकों का ज्यादा प्रयोग वांछनीय नहीं है क्योंकि इन रसायनों से रोगजनकों में रसायनों के प्रति प्रतिरोधिता बढ़ने व भूमि की गुणवत्ता में कमी होने के साथ–साथ फसलों व लाभदायक सूक्ष्मजीवों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इसके अन्तर्गत पीड़कनाशियों जैसे कवकनाशी, जीवाणुनाशी, कीटनाशी एवं खरपतवारनाशी रसायनों की अनुशंसित मात्रा का बीजोपचार, मृदोपचार एवं पर्णीय छिड़काव हेतु प्रयोग करें। समन्वित/एकीकृत रोग प्रबंधन को प्रभावी बनान चाहिए। समन्वित कीट एवं व्याधि–प्रबंधन (आई.पी.एम.) को मुख्य खाद्यान्न फसलों में अपनाकर रासानिक कीटनाशकों की मात्रा कम की जा

सकती है तथा जैव नियंत्रण को प्रभावी बनाते हुए पर्यावरण को भी सुरक्षित रखा जा सकता है।

4 जैव नियंत्रण

इस घटक के अन्तर्गत जैविक विधियां जैसे सूक्ष्मजीवीय संभिक्षण (कवक–ट्राइकोडर्मा स्पी. एवं जीवाणु–स्यूडोमोनास स्पी) से बीजोपचार, मृदोपचार व पर्णीय छिड़काव कर रोगों का पर्यावरण सह प्रबंधन किया जाता है।

गेहूँ के प्रमुख रोग

रतुआ या गेरुआ

भूरा एवं पीला रतुआ इस फसल के मुख्य कवक जनित बहुचक्रीय रोग हैं। भूरा रतुआ का प्रकोप उत्तर पूर्वी मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में गेहूँ की फसल में पत्तियों पर नारंगी धब्बों के रुप में दिखाई देता है। पीला रतुआ का सर्वाधिक प्रकोप ठण्ड के समय उत्तरी भारत में होता है क्योंकि नम जलवायु इसके फैलाव में सहायक होती है। यह रोग गेहूँ की पत्तियों में पीली धब्बा युक्त धारियों के रुप में अभिलक्षित होता है।

अनावृत्त कंडुवा (कंगियारी)

यह कवक जनित बीज से लगने वाला रोग है। इस रोग का लक्षण संक्रमित पौधों की बालियों में सामान्य दानों के स्थान पर काले रंग के चूर्ण (कंड) के रुप में दिखाई देता है। इसके प्रबंधन के लिए बीजोपचार अवश्य करना चाहिए।

करनाल बंट

यह एक चक्रीय कवक जनित बीज एवं मृदा से फैलने वाला रोग है इस रोग से संकमित पौधों की बालियों में काले रंग के बीजाणु बन जाते हैं। इसके प्रबंधन के लिए रोग रोधी किस्में लगाएं या संवेदनशील किस्मों में दाना बनते समय प्रोपीकोनाजोल का एक स्प्रे करें।

चूर्णिल आसिता

इस रोग को लक्षण संक्रमित पौधों के पत्तियों के ऊपर टेल्कम पाउडर जैसे सफेद धब्बे के रुप में दिखाई देता है जो बाद में गहरे भूरे रंग के 'क्लिस्टोथीसिया' में बदल जाते हैं।

पर्णीय झुलसा

इसका प्रकोप फसल के बुआई के 45–60 दिन बाद वाली फसल में अंडाकार गहरे भूरे रंग के धब्बों के रुप में दिखाई देता है। इस रोग के नियंत्रण हेतु रोगरोधी किस्में ही लगाएं साथ ही बिमारी के लक्षण दिखाई देने पर टिल्ट (प्रोपीकोनाजोल) का स्प्रे करें।

गेगला (सेहूँ) या मोल्या

यह जीवाणु एवं सूत्रकृमि दोनों के संयुक्त संक्रमण से होने वाला रोग हैं। इस रोग के प्रकोप से बालियों में गांठे बन जाती है। इसके प्रबंधन के लिए रोग रोधी प्रजातियाँ लगानी चाहिए।

जौ के प्रमुख रोग

आवृत्त एवं अनावृत्त कंडुवा (कंगियारी)

यह जौ का कवकों से होने वाला बीज जनित रोग है।

रोग का लक्षण संक्रमित पौधों की बालियां के काले रंग में परिवर्तित होने एवं दानों के स्थान पर काले बीजाणु रुपी चूर्ण के रुप में दिखाई देता है। ये बीजाणु दोनों तरह के कंडुवा में झिल्ली से ढके रहते हैं और झिल्ली के फटने पर अन्य रोगरहित पौधों की बालियों को संदूषित करते हैं।

धारीदार रतुआ एवं झुलसा रोग

इस बहुचक्रीय कवक जनित रोग के लक्षण पौधों की पत्तियों में पीले–भूरे रंग की धारियों के रुप में परिलक्षित होते हैं।

रोग प्रबंधन

- रोगरोधी किस्मों के प्रमाणिक बीज का प्रयोग सबसे ज्यादा प्रभावी एवं पर्यावरण सह रोग प्रबंधन की तकनीक है, अतः गेहूँ और जौ की उन्नत व क्षेत्र विशेष के लिए अनुशंसित रोगरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।

गेहूँ की किस्में :– वी.एल. 616, वी.एल. 738, वी.एल. 802, वी.एल. 804, वी.एल. 829, वी.एल. 832, वी.एल. 892, एच.एस. 365, एच.एस. 420, एच.एस. 490, एच.एस. 507, एच.पी.डब्ल्यू. 155, एच.पी.डब्ल्यू. 251, एच.डी. 2967, डब्ल्यू.एच. 542, डी.पी.डब्ल्यू. 14, एच.डब्ल्यू. 468, एन.डब्ल्यू.1012, एन.डब्ल्यू. 1014, के. 18962, के. 9107 आदि।

जौ की किस्में:– डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी. 52, डी.डब्ल्यू.आर. 64, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 73, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 91, डी.डब्ल्यू. आर.बी. 92, आर.डी. 2052, 2552, ज्योति, आजाद, नरेन्द्र, जौ–1,2,3,5,7, मंजुला, गीतांजलि आदि।

- मिश्रित फसल के रुप में गेहूँ के साथ सरसों या तोरिया की फसल बोने से रतुआ रोग के प्रकोप में कमी होती है।
- गेहूँ की कम अवधि वाली किस्मों को समय से 10–15 दिन पूर्व बुआई करने से रतुआ का प्रकोप कम होता है।
- उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का अनुप्रयोग करना चाहिए।
- फसल के क्रांतिक अवस्था में सिंचाई करने से ज्यादा उपज होने के साथ–साथ रोगों का भी प्रबंधन होता है।
- कवकनाशियों का प्रयोग रतुआ के प्रबंधन हेतु मैनेब 75 ई.सी. घु.चू. का 0.25 प्रतिशत या टैबुकोनाजोल 250 ई.सी. या प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. या फॉलिकर 250 ई.सी. का 0.1 प्रतिशत घोल का पर्णीय छिड़काव रोग के दिखाई देने पर तुरंत करना चाहिए, इसके बाद आवश्यकतानुसार 15–30 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।
- कंडुवा के नियंत्रण हेतु बुआई से पूर्व बीजोपचार अवश्य करें। इसके लिए कार्बोक्सिन 75 डब्ल्यू.पी. घु. चू. 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज या थीरम 80 घु.चू. या कार्बोक्सिन एवं थीरम (1:1) का 2.5 ग्रा./कि. बीज या टेबुकोनाजोल का 1.0 ग्रा./कि. बीज या कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. घु.चू. का 2.5 ग्रा./कि बीज के साथ प्रयोग करना चाहिए।
- करनाल बंट के नियंत्रण हेतु प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. 0.1 प्रतिशत का पर्णीय छिड़काव वाली निकलने की अवस्था में अवश्य करें।
- गेगला के नियंत्रण हेतु बीजोपचार के लिए 5 प्रतिशत सांद्रता वाले नमक (ब्राइन) घोल का प्रयोग करना चाहिए।
- चूर्णिल आसिता के प्रबंधन हेतु प्रोपिकोनाजोल 25 ई. सी. 0.1 प्रतिशत के घोल का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए
- जैव नियंत्रण–जैव कवकनाशी (ट्राइकोडर्मा) का 4 ग्रा./किलोग्राम बीज के दर से बीजोपचार हेतु प्रयोग करना चाहिए। मृदा उपचार हेतु ट्राइकोडर्मा 2.5 किलोग्राम प्रति हैक्टर के दर से प्रयोग करना चाहिए। इसका पर्णीय छिड़काव फसल की बूट एवं बाली निकलने वाली अवस्था में करने से रोगों का प्रभावी प्रबंधन होता है।

गेहूँ एवं जौ में सूत्रकृमि प्रबंधन

हेमराज गुर्जर[1], एस.आर. वर्मा[2] एवं राजपाल मीना[3]

[1,2]कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

सूत्रकृमियों को फसलों के अदृश्य शत्रु की संज्ञा दी गई है। इन्हें खुली आखों से देखना सम्भव नहीं है और ये फसलों को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। सूत्रकृमियों द्वारा फसलों को औसतन 12.3 प्रतिशत नुकसान होता है। राजस्थान में खादयान पट्टी सूत्रकृमि (*हिटरोडेरा एवेनी*) द्वारा गेहूँ तथा जौ में क्रमशः 32 मिलियन एवं 25 मिलियन रूपये का नुकसान प्रति वर्ष होता है। बीज गॉल सूत्रकृमि (*एन्गुयीना ट्रीटीसाई*) अकेला एवं कोरिनेबैक्टेरीयम ट्रीटीसाई जीवाणु के साथ मिलकर उत्तरी भारत में लगभग 70 मिलियन रूपये का नुकसान प्रति वर्ष करता है।

प्रथम पादप परजीवी सूत्रकृमि 1743 में खोजा गया था जो बीज गॉल सूत्रकृमि (*एन्गुयीना ट्रीटीसाई*) के नाम से जाना जाता है तथा इसके उपरान्त कई पादप परजीवी सूत्रकृमि खोजे गये। सूत्रकृमि अदृश्य शत्रु होते हैं इन्हें सूक्ष्मदर्शी के बिना पहचानना संम्भव नहीं है क्योंकि :

1. ये अत्यन्त सूक्ष्म (माईक्रोस्कोपिक) होते हैं।
2. ये मृदा, फसल अवशेष एवं फसलों की जड़ों में छिपे रहते हैं।
3. सूत्रकृमि जनित रोगों के लक्षण पौधों पर स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं।
4. सूत्रकृमियों को पहचानने वाले कुशल व्यक्तियों की कमी है।
5. सूत्रकृमियों के बारे में जानकारी का अभाव।

सूत्रकृमियों के सामान्य लक्षण एवं फसलों पर उनका प्रभाव

1. सूत्रकृमि हमेशा समूह में रहते हैं जिसके कारण फसलों पर रोगों के लक्षण एक समान दिखाई नहीं देते।
2. सूत्रकृमि लम्बे समय तक नुकसान पहुंचाने की क्षमता रखते हैं जब तक मुख्य फसल नहीं मिलती तब तक ये सुसुप्तावस्था में पड़े रहते हैं जैसे *एन्गुयीना ट्रीटीसाई* नामक सूत्रकृमि 32 वर्ष तक एवं *हिटरोडेरा एवेनी* 4–5 वर्ष तक रोग पैदा करने की क्षमता रखते है।
3. सूत्रकृमि दूसरे जीवों जैसे जीवाणु एवं कवक आदि को आश्रय प्रदान करते है एवं इनके साथ मिलकर नुकसान को बढ़ा देते है एवं बिमारियों को जन्म देते हैं जैसे टूण्डु रोग जो सूत्रकृमि तथा जीवाणु के सहयोग से होता है।
4. सूत्रकृमि सामान्यतः पौधों की जड़ों एवं उत्तकों को नुकसान पहुंचाते हैं जिससे जड़ें उचित मात्रा में जल एवं पोषक तत्व ग्रहण नही कर पाती है।
5. प्रारम्भिक अवस्था में जड़ों में सूजन आ जाती है तथा इनमें सूत्रकृमियों द्वारा घाव (*सिन्काइटिया*) बन जाते हैं।
6. प्रभावित पौधों में शाखाएं कम निकलती हैं तथा पत्तियां पीली पड़ जाती हैं।
7. रोग ग्रसित फसलें दिन के समय मुर्झाई हुई दिखाई देती हैं।
8. फूल एवं बीज ठीक से नहीं बन पाते तथा बालियों में दाने छोटे रह जाते हैं।
9. दाने काले भूरे व गोल कोकल में बदल जाते हैं जिनमें सूत्रकृमि सुशुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं एवं अंकुरण के समय बाहर आकर आक्रमण शुरू कर देते हैं।
10. कभी–कभी बालियों का निर्माण नही हो पाता तथा बालियां एवं पत्तियां मुड़कर रस्सी के जैसी हो जाती है।

गेहूँ तथा जौ में रोग पैदा करने वाले प्रमुख सूत्रकृमियों का जीवन चक्र

1. *एन्गुयीना ट्रीटीसाई* **(बीज गॉल सूत्रकृमि)** जीवन चक्र

अक्तूबर–नवम्बर में बीज की बुवाई के साथ कोकल भी भूमि में प्रवेश कर जाते हैं जिससे परजीवी खेत में पहुंच जाता है तथा नमी के कारण कोकल मुलायम हो जाते हैं एवं बीज अंकुरण के साथ ही इनमें से द्वितीय अवस्था (लार्वा) कोकल से बाहर आ जाती है जो मुख्यतः नुकसान पहुंचाने वाली अवस्था है। यह लार्वा पौधों की बढ़वार के साथ–साथ बढ़ते हुये भागों पर ऊपर पहुंच जाता है। बाली निकलने तक यह बाह्य परजीवी के रूप में नुकसान पहुंचाता है तथा पौधे के वानस्पतिक भागों पर अपना जीवन–चक्र पूरा करता है। दाना बनते समय सूत्रकृमि की दूसरी अवस्था दानों में प्रवेश कर जाती है तथा नर एवं मादा 1 : 2 के अनुपात में विकसित होते हैं। नर–मादा के साथ सम्भोग करता है तथा मर जाता है और मादाऐं अण्डे देती रहती हैं तथा अण्डे देने के बाद ये भी मर जाती हैं और दाने कोकल में बदल जाते हैं जिन्हें बीज कोकल के नाम से जाना जाता है और इसीलिए इस बीमारी को इयर कोकल के नाम से जाना जाता है। सूत्रकृमि की दूसरी अवस्था लार्वा, कोकल में सुसुप्तावस्था में पड़ी रहती है। ये लार्वा 32 वर्ष तक रोग पैदा करने की क्षमता रखते हैं और यही कोकल बीज के साथ खेत में बुवाई कर दिये जाते हैं तो सूत्रकृमि अपना जीवन–चक्र शुरू कर देते हैं ये सूत्रकृमि एक वर्ष में एक पीढ़ी पूरी करते हैं इस सूत्रकृमि में 6 अवस्था पाई जाती है; प्रथम अण्डा तथा चार त्वचा निर्मोचन अवस्थाएँ एवं अन्तिम व्यस्क अवस्था होती है।

2. *हिटरोडेरा एवेनी* **(खादयान पट्टी सूत्रकृमि)** जीवन चक्र

इस सूत्रकृमि में लिंग विभेदीकरण पाया जाता है इसके नर तथा मादा अलग–अलग आकार के होते हैं नर कृमि रुप में होते हैं तथा मृदा में पड़े रहते हैं। जबकि मादायें जड़ों पर आंतरिक परजीवी के रूप में आक्रमण करती हैं और लम्बे समय तक एक स्थान से पोषण लेती रहती हैं। इस सूत्रकृमि की नुकसान पहुंचाने वाली अवस्था द्वितीय अवस्था होती है तथा धीरे–धीरे यह फूलकर यह नींबू की तरह गोल आकार की हो जाती है ये मादायें पट्टी सूत्रकृमि कहलाती है। मादा का पूरा शरीर अण्डे तथा द्वितीयक अवस्था वाले लार्वा से भरा होता है। मादा पट्टीकाएं फसल कटने के बाद खेत में पड़ी रहती है जैसे ही फसल बुवाई का समय आता है ये पट्टीकाएं नमी के कारण मुलायम हो जाती है एवं इनमें से द्वितीयक अवस्था लार्वा बाहर आ जाते हैं तथा अंकुरित गेहूँ एवं जौ के पौधे की बढ़ती हुई जड़ों के अन्तिम सिरे से थोड़ा पीछे की तरफ से आक्रमण करते है तथा धीरे–धीरे अन्दर घुस जाते हैं एवं संवहन तंत्र में जाकर पोषण लेते रहते हैं इस प्रकार सूत्रकृमि विकसित हो जाता है। एक पट्टी सूत्रकृमि में लगभग 200–600 तक अण्डे एवं द्वितीयक अवस्था लार्वा भरे होते हैं।

प्रमुख सूत्रकृमि जनित रोग

1. ईयर कोकल रोग
2. टूण्डु रोग
3. मोल्या रोग

1. ईयर कोकल रोग

यह रोग एन्गुयीना ट्रीटीसाई नामक सूत्रकृमि द्वारा होता है इस रोग को सामान्य भाषा में सेंहू , मेमनी तथा गेगला रोग के नाम से भी जाना जाता है।

लक्षण

इस रोग के लक्षण प्रारम्भिक अवस्था में वानस्पतिक भागों पर दिखाई देते हैं पौधों के तने में धरातल की तरफ सूजन आ जाती है। पत्तियां कुंचित होकर सिकुड़ जाती हैं। पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा अधिक फुटान के कारण पौधा झाड़ीनुमा हो जाता है। लेकिन 60 से 70 दिन बाद जैसे ही गेहूँ में बाली निकलना शुरू होती है सूत्रकृमि दानों के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं और दानों को कोकल में बदल देते हैं। ईयर कोकल रोग से ग्रसित

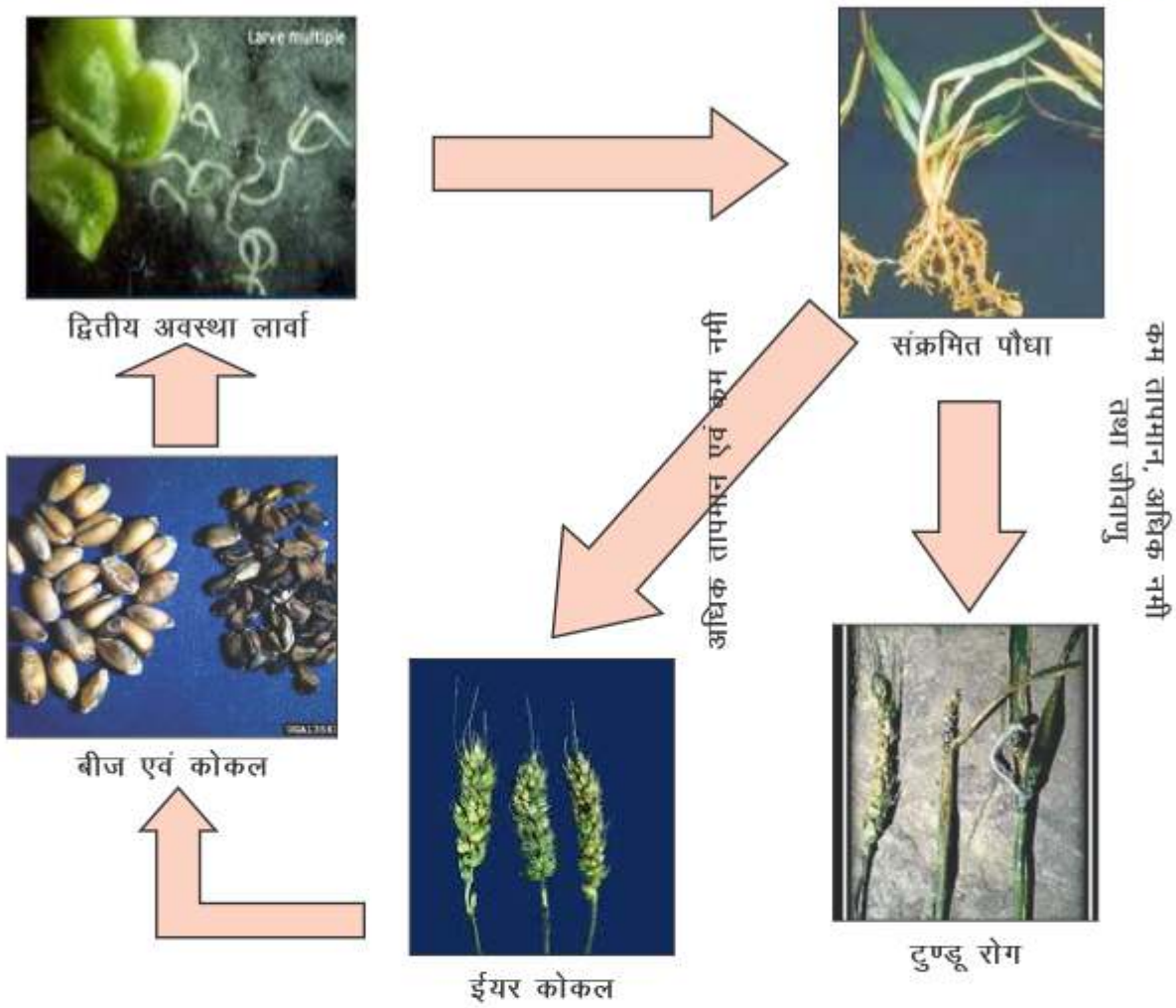

ईयर कोकल एवं टूण्डु रोग कारक सूत्रकृमि *एन्गुयीना ट्रीटीसाई* का रोग–चक्र

बालियां सामान्य बालियों से मोटी एवं छोटी होती हैं। मादा सूत्रकृमि हजारों की संख्या में अण्डे देती हैं। एक कोकल में लगभग 2800–3000 लार्वा (द्वितीय अवस्था के सूत्रकृमि) भरे होते हैं। इस सूत्रकृमि की द्वितीय अवस्था लार्वा ही अधिक नुकसान पहुंचाती है। छोटे आकार के काले–भूरे रंग के गोल दाने बीज गॉल (कोकल) होते हैं यही दाने बीज के साथ खेत में चले जाते हैं एवं रोग फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1. टूण्डु रोग

भारत में सर्वप्रथम हचिंसन द्वारा 1917 में इस रोग की खोज की गई थी। इस रोग को येलो ईयर रोट, येलो स्लाइम रोग भी कहते हैं। यह रोग एन्गुयीना ट्रीटीसाई नामक सूत्रकृमि तथा कोरिनेबैक्टीरीयम ट्रीटीसाई नामक जीवाणु के सहयोग से होता है।

लक्षण

प्रारम्भिक लक्षण ईयर कोकल के समान ही होते हैं लेकिन बाद में नमी की उपस्थिति के कारण इस रोग के लक्षण अधिक प्रदर्शित होते हैं। इस रोग में पौधों से नमी के कारण पीले रंग का चिपचिपा पदार्थ बाहर निकलता है तथा बाद में सुखकर यह कठोर परत के रूप में तने पर जमा हो जाता है। इस कारण इस रोग को येलो स्लाईम रोग भी कहते हैं। यह रोग अधिक नमी तथा कम तापमान के कारण ज्यादा फैलता है। जीवाणु की वृद्धि के लिए नमी होना अति आवश्यक होता है। आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में यह रोग अधिक फैलता है। टूण्डु रोग से ग्रसित

पौधे की बाली छोटी एवं पतली रह जाती है तथा पत्तियां एवं बालियां रस्सी की तरह मुड़ जाती है। बालियों में दाने बहुत कम बनते हैं जो कि पिचके एवं सिकुड़े हुये होते हैं कभी–कभी दाने नहीं भी बनते हैं।

इयर कोकल एवं टूण्डु रोग का प्रबंधन

- **फसल–चक्र** : *एन्गुयीना ट्रीटीसाई* एक विशेष प्रकार के मेजबान पौधों पर ही आक्रमण करता है जैसे गेहूँ तथा जौ इसलिए फसल–चक्र अपनाना अति आवश्यक है। गेहूँ एवं जौ की फसल लेने के बाद अगले मौसम में सरसों, चना, मसूर आदि के खेती करना चाहिए। इससे उपयुक्त पोशी पौधों की अनुपस्थिति में सूत्रकृमियों का जीवन–चक्र पूरा न होने से इनकी संख्या कम हो जाती है।
- **कोकल रहित बीज की बुवाई** : कोकल में ही इस सूत्रकृमि की दूसरी अवस्था भरी होती है जो प्रमुख नुकसान पहुंचाने वाली अवस्था है इसलिए शुद्ध बीज की बुवाई करनी चाहिए।
- **गर्म पानी से उपचार** : बीजों को बुवाई से पूर्व 10–20 मिनट तक 54–56 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान वाले गर्म पानी में डुबोकर रखना चाहिए जिससे इस सूत्रकृमि की दूसरी अवस्था निष्क्रिय हो जाती है।
- **नमक के घोल से उपचार** : बीजों को बुवाई से पूर्व 20 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोना चाहिए। कोकल हल्के होने के कारण उपर तैरने लगें इन्हें अलग कर लेना चाहिए तथा शुद्ध बीज जो कि नीचे बैठ जाता है उसे छानकर अलग कर लेते है तथा सुखाकर बुवाई के काम में लेना चाहिए।
- **जल में डुबोना (पानी में तैराना)** : चूंकि कोकल वजन में हल्के होते हैं अतः 5 मिनट तक बीज को पानी में डूबोकर रखने पर कोकल तैरने लगते हैं जिन्हें अलग कर बाहर निकाल देना चाहिए। शुद्ध बीज भारी होने के कारण पेदी में बैठ जाता है जिसे सुखाकर बुवाई के काम में लेना चाहिए।
- **हवा में उड़ाना** : चूंकि कोकल वजन में हल्के होते हैं अतः 850 आर.पी.एम. रफ्तार वाले पंखों के सामने बीज को बरसा कर शुद्ध बीज एवं कोकल अलग–अलग किया जा सकता है। कोकल हल्के होने के कारण दूर गिरते हैं एवं शुद्ध बीज नजदीक गिरता है।
- **छानना** : बुवाई के पूर्व बीजों को छानकर बुवाई के काम मे लेना चाहिए कोकल शुद्ध बीजों से छोटे होते है जो छनकर अलग हो जाते है तथा शुद्ध बीज छननी में उपर रह जाता है और उसे अलग कर लिया जाता है।
- **बीज उपचार** : बीजों को बुवाई से पूर्व कृष्णनील नामक खरपतवार के जलीय अर्क से उपचारित करना चाहिए। इस के लिए 600 मि.ली. कृष्णनील अर्क को 1.40 लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार करें एवं इस घोल को प्रति कुंतल बीज उपचार हेतु काम में लेना चाहिए।
- **जैविक कवक प्रबंधन** : जैव कवक आथ्रोबोट्रीस ओलीगोस्पोरा इस सूत्रकृमि के लिए जैव कारक के रूप में कार्य करता है जो इसके कवकीय जाल द्वारा सूत्रकृमि की द्वितीय अवस्था को पंचर कर नष्ट कर देता है उसे आगे नहीं बढ़ने देता है। दूसरी अवस्था ही नुकसान पहुंचाने वाली अवस्था होती है।
- **रासायनिक उपचार** : कार्बोफ्यूरान दानेदार 3 प्रतिशत 50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुवाई से पूर्व मृदा में मिलाना चाहिए।
- **प्रतिरोधी किस्में** : गेहूँ–कानरेड, पी. 87, पी.सी. 633, पी.सी. 87, पी.सी. 171.

2. मोल्या रोग

यह रोग हेटेरोडेरा एवेनी नामक सूत्रकृमि द्वारा फैलता है इस सूत्रकृमि की खोज सर्वप्रथम 1874 में कुहन नें पूर्वी जर्मनी में की थी तथा भारत में सर्वप्रथम 1958 में वसुदेवा ने इस सूत्रकृमि की खोज की। मोल्या की रोग खोज

सर्वप्रथम प्रसाद तथा सहयोगियों ने 959 में राजस्थान में की। इस रोग का सबसे अधिक प्रकोप सीकर, झुनझुनु, अजमेर, भीलवाड़ा, उदयपुर, अलवर, चूरू, जयपुर, पाली तथा चित्तौडगढ़ जिलों में देखने को मिलता है।

लक्षण

इस रोग के लक्षण एक समान दिखाई नहीं देते हैं। चकतों में फसल छोटी रह जाती है। पौधे छोटे रह जाते हैं तथा पीले पड़ जाते हैं। एक खेत में लगातार गेहूँ तथा जौ की खेती करने पर इस रोग के लक्षण सर्वाधिक दिखाई देते है। क्योंकि उपयुक्त फसल (गेहूँ अथवा जौ) एवं वातावरण के कारण इनकी संख्या बढ़ जाती हैं। रोग ग्रसित पौधों की पत्तियां संकरी रह जाती हैं। बाली निकलने में समय अधिक लगता है तथा बालियाँ भी कम निकलती हैं एवं उनमें दाने कम बनते हैं। जड़ तंत्र उथला रह जाता है तथा जड़ों में अन्तिम सिरे पर सूजन आ जाती है। पौधा झाड़ीनुमा हो जाता है। रोग ग्रस्त पौधों को खींचने पर ये आसानी से उखड़ जाते हैं। प्रति ग्राम मृदा में इस सूत्रकृमि की 10 पट्टीयाँ 10 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचा सकती है।

मोल्या रोग प्रबंधन

- **फसल चक्रः** हेटेरोडेरा एवेनी भी विशेष पोषी पौधों जैसे गेहूँ तथा जौ पर ही जीवन–चक्र पूरा करता है। इसलिए फसल–चक्र अपनाना चाहिए।
- **गर्मी में गहरी जुताई** : गर्मी में 4–5 गहरी जुताई करना चाहिए क्योंकि इस सूत्रकृमि की पुट्टीकाएँ मृदा में पड़ी रहती है और इन्हीं पुट्टीकाओं में इस सूत्रकृमि का अण्डा तथा द्वितीय अवस्था लार्वा भरी होती है। मई–जून के महीने में जब तापमान 45–48 डिग्री सेन्टीग्रेड होता है तब गहरी जुताई करनी चाहिए। सूर्य की तेज किरणों के कारण द्वितीय अवस्था लार्वा निष्क्रिय हो जाती है तथा अधिक तापमान के कारण मर जाती है।
- **ट्रैप–क्रॉप** : इस प्रकार की फसलें उगाना चाहिए जो सूत्रकृमि की दूसरी अवस्था को आक्रमण के लिए तो अग्रसर करे लेकिन आगे का विकास अवरूद्ध हो जाये इससे अण्डों से दूसरी अवस्था तो बाहर आ जाती है लेकिन आगे का विकास नहीं हो पाता और वह मर जाती है। ट्रैप फसल के रुप में सनई, सरसों तथा गेहूँ की सी–306 किस्म आदि आधा कार्य करती हैं।
- **मिश्रित फसल** : जौ की राज किरण तथा गेहूँ की कल्याण सोना किस्मों को 50–50 के अनुपात में मिश्रित कर बोना चाहिए।
- **बुवाई का समय** : अगेती बुवाई करने से सूत्रकृमि अधिक नुकसान पहुंचाता है क्योंकि इस सूत्रकृमि की पुट्टीकाओं में भरे अण्डों से द्वितीय अवस्था लार्वा बाहर निकलने के लिए एक निश्चित तापमान 15

खादयान पट्टी सूत्रकृमि
(हेटेरोडेरा एवेनी)

खड़ी फसल में मोल्या रोग के लक्षण

–18 डिग्री सेन्टीग्रेड उपयुक्त होता है जिस पर सर्वाधिक अण्डे फूटते है। देरी से बुवाई करने पर तापमान कम (12–15 डिग्री सेन्टीग्रेड) हो जाता है इस पर लार्वा कम निकलते हैं। नमी के कारण भी अधिक लार्वा अण्डों से बाहर निकलते है इसलिए पहले खेत का पलेवा करना चाहिए तथा बाद में बुवाई करना चाहिए। फसलों की सूखी बुवाई करने पर सूत्रकृमि अधिक नुकसान पहुंचाता है।

- **फसल कटाई उपरांत सिंचाई** : फसल काटने के बाद खेत में एक सिंचाई कर देना चाहिए क्योंकि फसल कटने की अवस्था पर सूत्रकृमि की पुट्टीकाएँ जड़ों के बाहर मृदा में आ जाती हैं एवं जड़ों के साथ चिपकी रहती हैं। सिंचाई करने से ये पुट्टीकाएँ मुलायम हो जाती हैं एवं सूत्रकृमि की लार्वा अवस्था बाहर आ जाती है और पोषी पौधों के अभाव में मर जाती है।
- **जैविक प्रबंधन** : मोल्या रोग प्रबंधन हेतु जैव कवक पेसिलोमाइसीज लीलासीनस का उपयोग करना चाहिए। इस कवक के कोनिडिया पुट्टी के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं तथा परजीवी के रूप में अण्डा तथा लार्वा को पंचर करते हैं और उन्हे नष्ट कर देते हैं।
- **प्रतिरोधी किस्में** : **जौ** – राज किरण, डी.एल. 349, डी.एल. 375, डी.एल. 379, डी.एल. 376, सी. 164, बी.एच. 75
  गेहूँ – राज. 1470, राज. 1409, राज. 1487
- **रसायनिक उपचार** : कार्बोफ्यूरान दानेदार 3 प्रतिशत 50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुवाई से पूर्व मृदा में मिलाना चाहिए।

कृषिगत उत्पादन बढ़ाने हेतु जौ के रोगों एवं कीटों का प्रबन्धन

लालचन्द प्रसाद, अनंत मडकेमोहेकर, सतीश बोरनारे एवं रविन्द्र प्रसाद

कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

जौ घास परिवार में रबी फसल के रूप में उगाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण अन्न है और इसे भारत के उत्तर मैदानी एवं पहाड़ी क्षेत्रों में उगाया जाता है। यह हमारे पूर्वजों द्वारा सबसे पहले उगाई गई फसल है। आज जौ दुनिया में चौथे स्थान पर (गेहूँ, चावल और मक्का के बाद) उगाई जाने वाली औषधीय एवं पौष्टिक फसल है। देर सदी से दुनिया भर में जौ का वार्षिक उत्पादन 140 मिलियन टन, लगभग 55 मिलियन हैक्टर क्षेत्र से किया जाता रहा है। हमारे देश में वर्ष 2013–2014 में 0.67 मिलियन हैक्टर भूमि पर 1.73 मिलियन टन जौ का उत्पादन किया गया, जिसकी उत्पादकता 2580 किलोग्राम प्रति हैक्टर रही। भारत में जौ का सबसे ज्यादा उत्पादन राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्यों में होता है। हमारे देश में जौ का उपयोग भोजन, पशुओं का चारा, माल्ट एवं माल्ट सत्व से विभिन्न प्रकार के (बीयर, व्हिस्की) मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार करने के लिये किया जाता है। औषधीय एवं पौष्टिक विशेषताओं के कारण जौ का भोज्य पदार्थों में उपयोग बढ़ रहा है। इसे बेबी फूड्स, पेय, औषधीय सिरप, शरीर का रक्तचाप, तापमान एवं सूगर (चीनी) कम करने हेतु उपयोग होता है।

किसान इसे कम पानी उपलब्ध क्षेत्र में, हल्की भूमि, सीमांत भूमि एवं लवणीय/क्षारीय भूमि क्षेत्र में भी उगाकर अच्छी उपज प्राप्त कर सकते हैं। यह फसल देश के दक्षिणी राज्यों में बहुत कम क्षेत्र पर उगाई जाती है, फिर भी अब वहाँ के किसान जौ को उगाना पसन्द कर रहे हैं और इसके बढ़ते हुये उपयोग के कारण यह बहुत जरूरी भी है। देश में जौ का उत्पादन बढ़ाने के लिये अनुसन्धान चल रहा है। हर साल ज्यादा उपज देने वाली प्रजातियाँ तैयार की जा रही हैं। जिससे हमारे किसान लाभान्वित हो रहे हैं। जौ के बीज पर छिलका होता है जो उसके उपयोग में बाधा डालता है। लेकिन अब छिलका रहित प्रजातियाँ (करन 16, करन 19, करन 521, एन.डी.बी. 10, गीतांजलि) उपलब्ध होने के कारण उसे भोजन में उपयोग करना सरल हो गया है। लेकिन जैविक एवं अजैविक तनावों का प्रतिरोध करने वाली प्रजातियाँ तैयार करना बहुत जरूरी हो गया है, क्योंकि इनकी वजह से हमारे फसल उत्पादन क्षमता पर बुरा असर पड़ता है। किसान कीटों एवं रोगों का प्रबन्धन करके भी उपज बढ़ा सकते हैं।

जौ के प्रमुख हानिकारक कीट

(1) माहू

लक्षण

माहू जौ की पूरी पत्ती पर पाई जाती है, इसके मल के कारण पत्ती पर चिपचिपाहट पैदा होती है। माहू अपने मुँह का उपयोग करके पत्तियों से रस चूसकर उन्हें कमजोर कर देता है। पत्तियाँ झुलसकर सूखने लगती हैं, जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं। कमजोर पौधे में कभी–कभी तो बालियाँ नहीं निकलती या निकलती भी हैं तो उसमें दानों का भराव कम होता है। जो दाने भरते भी हैं, वे इतने पतले होते हैं कि उनका वजन नगण्य होता है। इसके कारण जौ की उत्पादन क्षमता पर भारी असर पड़ता है। आमतौर पर इसका प्रकोप जनवरी महीने में जब ठण्ड

बढ़ने लगती है, तब बहुत ज्यादा हो जाता है। किसान जितनी देर से बुवाई करता है, माहू का प्रकोप उतना ज्यादा होता है। अगर जौ में बाली निकलने से पहले, एक पत्ती पर 50 से ज्यादा माहू पाये जाते हैं तो हमें नियन्त्रण के उपाय करना जरूरी है।

प्रबन्धन

1. अगर जौ की बुवाई समय पर हो जाये, तो इस कीट का प्रकोप काफी औसत में कम हो जाता है।
(2) यदि शुरू में कीट जौ क्षेत्र में दिखने लगे तो, उन पत्तियों को तोड़कर जला देना चाहिये, ताकि उनका फैलाव दूसरे पौधों पर ना हो।
(3) नत्रजन खादों के अधिक उपयोग के कारण माहू का प्रकोप बढ़ जाता है, इसलिये किसान को नत्रजन खादों का प्रयोग आवश्यकता से अधिक नहीं करना चाहिये।
(4) अगर लेडी वग बीटल जैसे परभक्षी मित्र कीट पौधों पर दिखने लगे तो, हमें नीम अर्क, 5 प्रतिशत यानी 10 लीटर पानी में 500 मिली लीटर अर्क का इस्तेमाल करना चाहिये।
(5) यदि माहू कि संख्या एक पत्ती पर 50 से ज्यादा पाई जाती है तो मैलाथियान 50 ई.सी. का या डाईमेथेएट 30 ई.सी. या मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. 15–20 मिली प्रति 10 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये।

(2) दीमक

लक्षण

इसके प्रकोप से पौधा सूखने लगता है, और हाथ से खिचने के बाद जड़ से निकल जाता है। इसका प्रकोप फसल की सम्पूर्ण अवस्थाओं में पाया जाता है। यह जमीन में रहकर जड़ को खा जाता है, जिसके कारण पौधे सुखकर मर जाते हैं। सामाजिक कीट होने के कारण यह आसानी से पहचाना जा सकता है। अविघटित जैविक खाद का उपयोग करने से भी दीमक की भारी मात्रा में बढ़ोत्तरी हो जाती है, और किसान को नुकसान भुगतना पड़ता है।

प्रबन्धन

(1) हमेशा खूब सड़ी जैविक खाद का ही खेत में उपयोग करना चाहिये।
(2) बीज को बुवाई से 2–3 दिन पूर्व इमिडाक्लोरोप्रीड 70 डब्ल्यू. एस. 0.1 प्रतिशत किलोग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम बीज दर से उपचारित करना चाहिये।
(3) आवश्यकता होने पर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 3.5 लीटर प्रति हैक्टर इस्तेमाल करना चाहिये।
(4) खेत के 80 मीटर दायरे में यदि इसकी वांबी हो तो उसे ढूढ़ कर समूल नष्ट कर देना चाहिये।
(5) चीटियाँ या लाल चीटें इनके स्वाभाविक दुश्मन होते हैं इनको गुड़ या चीनी या अन्य किसी माध्यम से इनकी वाँबी तक पहुँचा कर इनको नष्ट किया जा सकता है।

(3) सैनिक कीट

लक्षण

यह भी एक हानिकारक कीट है, इसकी लम्बाई लगभग 4 सेमी. होती है। उसकी नवजात सूंडी शुरू में पौधे के मध्य

वाली कोमल पत्तियों को खाती है। जैसे–जैसे सूंडी प्रौढ़ होने लगती है वैसे–वैसे इसका रंग भूरा होने लगता है। यह कीट शाम के समय पौधों पर पत्तियाँ खाते दिखता है। दिन भर यह जमीन की दरारों में छिपा रहता है। जब सैनिक कीट का प्रकोप बहुत बढ़ता है तो यह पौधे कि सारी पत्तियाँ खा जाता है, बस मुख्य शिरा बच जाता है। कभी–कभी यह कीट जौ के अपरिपक्व दानें भी खा जाता है।

प्रबन्धन

(1) यह कीट जमीन में और पिछले फसल के अवशिष्टों में सुप्त हालत में पड़ा रहता है, इसलिये हमें फसल की बुवाई से पूर्व खेत में से इन अवशिष्टों को नष्ट कर देना चाहिये।

(2) फसल में से खरपतवार निकालकर नष्ट करने से भी इस कीट का प्रकोप कम हो जाता है।

(3) इस कीट का ज्यादा प्रकोप होने पर डाइमेथोएट 30 ई.सी. 15–20 मिली प्रति 10 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये।

जौ के प्रमुख हानिकारक रोग

(1) रतुआ या गेरूई

लक्षण

रतुआ रोग पूरे घास परिवार में, एक बड़े पैमाने पर, आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है। रतुआ अलग–अलग तीन प्रकार के पाये जाते हैं, पत्ती रतुआ या भूरी गेरूई, धारी रतुआ या पीली गेरूई और तना रतुआ या काली गेरूई। पत्ती रतुआ को भूरे रंग के कारण भूरा रतुआ भी कहा जाता है। यह रोग पत्तियों पर दिखाई देता है और हजारों बीजाणु तैयार करता है। जो हवा में उड़कर दूसरे पत्ती पर संक्रमण कर देते हैं। जब तापमान 11–12 डिग्री सेंटीग्रेड तक 80–85 प्रतिशत नमी कि उपस्थिति में पहुँच जाता है तो यह रोग तेजी से विकसित हो जाता है। पौधा प्रौढ़ावस्था में पहुँचने तक इसका रंग काला हो जाता है। पत्ती रतुआ का रंग पीला होता है पत्तियों पर पट्टी या धारी जैसे आकार में यह रोग नसों के बीच फैल जाता है। तना रतुआ रोग 15–30 डिग्री सेंटीग्रेड से ऊपर चला जाये तो रोग जल्दी नियन्त्रित हो जाता है। इस रोग को काला रतुआ भी कहते हैं। क्योंकि पौधे की प्रौढ़ अवस्था में इसके बीजाणु काले रंग के होते हैं। रतुआ रोग के लगने से 20 से 30 प्रतिशत का नुकसान हो सकता है।

प्रबन्धन

(1) रोग का प्रतिरोध करने वाली नई प्रजातियों कि बुवाई करना चाहिये।

(2) देर से पकने वाली प्रजातियाँ इस रोग के चपेट में आ जाती हैं। उन प्रजातियों कि बुवाई जल्द करके इस रोग का प्रभाव कम कर सकते हैं।

(3) नत्रजन खाद का ज्यादा उपयोग करने से इस रोग का प्रकोप बढ़ जाता है, लेकिन पोटाश वाली खाद की ज्यादा मात्रा देने से इस रोग का प्रकोप काफी कम होता है। इसलिये नत्रजन और पोटाश की संस्तुत मात्रा दी जानी चाहिये।

(4) शुरू में कुछ पत्तियों पर रोग के लक्षण दिखने लगे तो उन पत्तियों को तोड़कर जला देना चाहिये ताकि दूसरे पौधों पर संक्रमण ना हो।

(5) रोग का फैलाव रोकने के लिये जिनाब 75 डब्लू.पी.

या मेन्कोजेब 75 डब्ल्यू. पी. कवकनाशी का छिड़काव 15 ग्राम प्रति लीटर पानी में करना चाहिये। इस तरह खेत के माप के हिसाब से जितना भी पानी की आवश्यकता होगी यह 15 ग्राम दवा की मात्रा प्रति 10 लीटर पानी के हिसाब से होगी।

(6) इस रोग का अधिक फैलाव होने पर प्रोपिकोनाजोल 300 मिली. प्रति एकड़ पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये।

(2) पत्ती धब्बा या चित्ता रोग

लक्षण

यह जौ का प्रमुख हानिकारक रोग है जो बीज में रहकर बुवाई के बाद पौधों पर हमला करता है या इसके बीजाणु जमीन में भी पैदा होते हैं तथा पूर्व में बोई फसल की कटाई के बाद खेतों में पड़े उसके ठूठों पर भी पलते रहते हैं, जिससे संक्रमण हो सकता है। जब तापमान 20 डिग्री सेंटीग्रेड से ऊपर चला जाता है और हवा में आर्द्रता 85–90 या इससे ज्यादा हो तो यह रोग बहुत तेजी से फैलता है। शुरू में यह रोग भूरे रंग के छोटे–छोटे धब्बे में दिखता है, बाद में इसका आकार बड़ा होकर सभी पत्तियों पर फैल जाता है। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ झुलस कर सूखने लगती हैं। जिससे पौधे की बढ़वार रूक जाती है और अन्त में पौधा सूख कर मर जाती हैं और सूखे डंठल काले दिखने लगते हैं। फसल की उपज नगण्य हो जाती है। रोग के प्रकोप से 10–30 प्रतिशत तक नुकसान किसान को भुगतना पड़ता है।

प्रबन्धन

(1) यह रोग बीज में रहकर फसल में फैलता है, इसलिये किसान को रोग रहित बीज की बुवाई करनी चाहिये।

(2) फसल की बुवाई से पूर्व खेत में बचे हुये अवशिष्टों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिये।

(3) रोग का प्रतिरोध करने वाली नई प्रजातियाँ उपलब्ध हैं उनकी बुवाई करने से भी अच्छी उपज ली जा सकती है।

(4) जब पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे दिखने लगे तो प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. 15 मि.ली. प्रति 10 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करना चाहिये।

(3) कण्डुवा

लक्षण

कण्डुआ दो प्रकार के मुख्य रूप से होता है, आवृत्त कण्डुवा और अनावृत्त कण्डुवा जहाँ कहीं भी जौ एवं गेहूँ बोया जाता है, वहाँ यह रोग आता है। इस रोग के बीजाणु बीज में सुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं और जब बीज का अंकुरण होता है, तब इसके बीजाणु भी पौधे की बढ़वार के साथ ही साथ बढ़ने लगते हैं। जब जौ में बालियाँ निकलने लगती हैं, तब इसके लक्षण दिखने लगते हैं। बाली में काले रंग की कवक दिखने लगती है, फिर पूरे बाली में फैलकर पकते हैं। इन पर कोई पारदर्शी झिल्ली न होने के कारण इसके बीजाणु हवा में उड़ने लगते हैं। जिससे दूसरी बालियाँ भी प्रभावित हो जाती

हैं। बालियों में एक भी बीज नहीं बन पाता है, सिर्फ बाली की रेचिस बची रह जाती है। लेकिन आवृत्त कण्डुवा में प्रभावित बाली पर इस कण्डुवा के बीजाणु एक पारदर्शी झिल्ली से ढके होने के कारण बाली के स्वरूप में पड़े रहते हैं। जौ मढाई के समय रैचिस खण्ड के साथ टूट कर सारे स्वस्थ दानों में मिलकर उन्हें प्रभावित करते हैं।

प्रबन्धन

- इसके प्रकोप को कम करने के लिये असंक्रमित बीज की ही बुवाई करनी चाहिये।
- रोग प्रतिरोधक उन्नतशील प्रजातियाँ उपलब्ध हैं उनकी बुवाई करके इस रोग से निजात पाया जा सकता है।
- पौधों में बालियाँ निकलते समय इस रोग से ग्रसित बालियाँ खेतों में पहले निकलती हैं। बीजाणुओं के काले रंग के कारण रोगी बालियों को आसानी से पहचाना जा सकता है। अतः इनकी पहचान करके पौध सहित उखाड़ कर जला देना चाहिये।
- बुवाई करने से पहले बीजों का उपचार करना जरूरी है। इसके लिये विटावैक्स 75 डब्ल्यू. पी. 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के लिये उपयोग करना चाहिये।
- इस रोग का अगर ज्यादा प्रकोप या फैलाव होने कि आशंका हो तब डायथेन एम. 45 या कैप्टन कवकनाशी का छिड़काव 2.5 ग्राम प्रति लीटर करें। दवा की यह मात्रा 2.5 ग्राम प्रति लीटर ही होगी, चाहे पूरे खेत में जितना भी पानी लगे।

(4) जड़ सड़न/विगलन रोग

लक्षण

इस रोग के नाम से पता चलता है कि यह रोग पौधे की जड़ पर लगता है, जिससे पौधों की जड़ मर जाती है व पूरा पौधा मर जाता है। जिस जमीन में फास्फोरस की मात्रा कम होती है, वहाँ इस रोग का ज्यादा प्रकोप होता है। इस कवक के बीजाणु जमीन में होते हैं। लगभग 5 साल तक बीजाणु जिन्दा रह सकते हैं। जब जमीन में पौधे का अंकुरण होता है उसी समय पूरे जड़ पर आक्रमण करते हैं। जिसके कारण पौधे की पूरी जड़ें मर जाती हैं और आखिर में पूरा पौधा मर जाता है। जिस क्षेत्र में यह रोग लगता है, वहाँ सभी पौधे पीले रंग के दिखने लगते हैं और बाद में यह रंग भूरा हो जाता है।

प्रबन्धन

(1) इसके सूक्ष्मजीव जमीन में रहने के कारण इन्हें ज्यादा प्रभावित करने वाली कोई दवा नहीं है।
(2) फास्फोरस के संस्तुत मात्रा में देना बहुत जरूरी है।
(3) 2–3 साल में एक बार जैविक खाद डालने से रोग कम किया जा सकता है।
(4) अच्छे बीज की बुवाई करके जमीन में नमी बहुत कम नहीं होने देना चाहिये।

मित्र फफूंद – ट्राईकोडर्मा

अनिता मीणा, अनुज कुमार, रेखा मलिक, सोनिया श्योराण, एच.एम. ममर्था,
सुमन लता, जितेन्द्र कुमार एवं आर.के. शर्मा

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

ट्राईकोडर्मा पादप रोग प्रबंधन विशेष तौर पर मृदा जनित बिमारियों के नियंत्रण के लिए बहुत की प्रभावशाली जैविक विधि है। यह स्वतंत्र जीवन वाला कवक है, जो कि मिट्टी और जड़ पारिस्थितिक तंत्र में सामान्य है। यह जड़, मिट्टी और पत्ते के वातावरण में परस्पर प्रभाव डालता है। यह विभिन्न विधियों द्वारा जैसे (पारिस्थितिक) रोग जनकों की वृद्धि संक्रमण और अस्तित्व को कम कर देता है।

फसलों में लगने वाले जड़ गलन, उखटा, तना गलन आदि मृदा जनित फफूंद रोगों की रोकथाम के लिए ट्राईकोडर्मा नामक मित्र फफूंद बहुत उपयोगी है। बीजोपचार, जड़ोपचार एवं मृदा उपचार में इसका प्रयोग करते हैं जिससे फसलों की जड़ों के आस–पास इस मित्र फफूंद की भारी संख्या कृत्रिम रुप से निर्मित हो जाती है। ट्राईकोडर्मा मृदा में स्थित रोग उत्पन्न करने वाली हानिकारक फफूंद की वृद्धि रोककर उन्हें धीरे–धीरे नष्ट कर देता है। जिससे ये हानिकारक फफूंद फसल की जड़ों को संक्रमित कर रोग उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाती है।

बीजोपचार विधि

उपचारित किये जाने वाले बीजों को किसी साफ बर्तन में रखें तथा बीजों पर थोड़े से पानी के छीटे देवे। अब बीजों में 4 से 8 ग्राम ट्राईकोडर्मा पाउडर प्रति किलोग्राम बीज दर की दर से मिलाकर अच्छी तरह से उलट–पलट दें ताकि पाउडर की एक समान परत बीजों पर चारों ओर चिपक जाए। अब इस उपचारित बीज की बुवाई करें।

नर्सरी उपचार

नर्सरी की बुआई से पूर्व 5 ग्राम/वर्ग मीटर क्षेत्र की दर से ट्राईकोडर्मा पाउडर को मिट्टी में मिलाकर उपचारित करें तथा फिर बुआई करें।

मृदा उपचार

बुआई पूर्व अन्तिम जुताई से पहले 2.5 किलोग्राम ट्राईकोडर्मा पाउडर को 75 किलोग्राम कम्पोस्ट अथवा गोबर की खाद में मिलाकर प्रति हैक्टर खेत की मिट्टी में अच्छी तरह से मिला दें तथा बाद में बुआई करें।

खड़ी फसल में उपचार

ट्राईकोडर्मा झुलसा व पत्ती धब्बा रोगों के नियंत्रण में भी उपयोगी है। ऐसे रोगों में सुरक्षा हेतु खड़ी फसल में 4–6 ग्राम ट्राईकोडर्मा पाउडर का प्रति लीटर पानी में घोल के हिसाब से छिड़काव करें।

ट्राईकोडर्मा के लाभ

- रोग नियंत्रण
- पादप वृद्धिकारक
- रोगों का जैव रासायनिक नियन्त्रण
- ट्रांसजेनिक पौधे
- बायोरेमिडिएशन

ट्राईकोडर्मा के उपयोग हेतु फसलों की संस्तुति

ट्राईकोडर्मा सभी पौधे व सब्जियों जैसे फूलगोभी, कपास, तम्बाकू, सोयाबीन, राजमा, चुकन्दर, बैगन, केला, टमाटर, मिर्च, आलू, प्याज, मूंगफली, मटर, सूरजमुखी, हल्दी आदि के लिये उपयोगी है।

सावधानियां

1 मृदा में ट्राईकोडर्मा का उपयोग करने के 4–5 दिन बाद तक रासायनिक फफूंदीनाशक का उपयोग न करें।

2 सूखी मिट्टी में ट्राईकोडर्मा का उपयोग न करें।
3 ट्राईकोडर्मा के विकास एवं अस्तित्व के लिए नमी बहुत आवश्यक है।
4 ट्राईकोडर्मा उपचारित बीज को सीधा धूप की किरणों में न रखें
5 ट्राईकोडर्मा द्वारा उपचारित गोबर की खाद (फार्म यार्ड मैन्योर) को लंबे समय तक न रखें।

ट्राईकोडर्मा उपयोग के तरीकों की अनुशंसा

- ट्राईकोडर्मा कार्बनिक खाद के साथ उपयोग कर सकते हैं। कार्बनिक खाद को ट्राईकोडर्मा राइजोबियम, एजोस्पाईरिलियम, बेसीलस सबटीलिस, फास्फोबैक्टिरिया के साथ उपयोग कर सकते हैं।
- ट्राईकोडर्मा बीज या मेटाक्सिल या थाइरम के साथ उपयोग कर सकते हैं।
- टैंक मिश्रण के रुप में रासायनिक फफूंदीनाशक के साथ मिलाया जा सकता है।

गेहूँ पैदा करने वाले किसानों की आय बढ़ाने के उपाय

कर्णम वेंकेटेश, ममर्था एच.एम., पंकज कुमार सिंह, एस.के. गौरी,
गिरीश चंद पाण्डेय एवं एस के सिंह

भारत में गेहूँ की खेती लगभग 29.5 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में की जा रही है जिससे लगभग 95.85 मिलियन टन (वर्ष 2013–14) गेहूँ का उत्पादन होता है। बढ़ती जनसंख्या और उसकी खाद्यान्न आवश्यकता को पूरा करने के लिए यह जरुरी हो जाता है कि हम सही वैज्ञानिक तरीकों का इस्तेमाल कर गेहूँ उत्पादन करने वाले किसानो को सही मागदर्शन द्वारा अधिकाधिक आय बढ़ाने में सहयोग करें। निम्नलिखित कुछ महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तकनीकों को यदि किसान अपनाएं तो फसल उत्पादन बेहतर होने के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य और किसानों की आय में भी बढ़ोत्तरी हो सकती है।

(1) संसाधन संरक्षण की रणनीतियाँ:– यह संसाधन में वृद्धि और निविष्ट इस्तेमाल क्षमता बढ़ाने की प्रथा है।

(अ) ईंधन बचत की तकनीक और भूखंड जलस्तर उत्पादकता में सुधार :–

- **शून्य कर्षण तकनीक**: यह तकनीक किसानों को धान फसल की कटाई के तुरंत बाद गेहूँ की बिजाई बिना पूर्व सिंचाई के कर पाने में किसानों को सक्षम बनाता है। यहाँ मृदा को कम से कम बाधा पहुँचाते हुए पूर्व फसल के अपशिष्टों को खेतों में ही छोड़ दिया जाता है। मिट्टी की ऊपरी सतह, स्थापित और कुछ समय के लिए फसल अनुक्रमण या फसल–चक्र रणनीतियाँ अपनाकर इन निविष्टों से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है जिससे 85 प्रतिशत समय, मजदूरी लागत, डीजल और ऊर्जा की बचत होती है।
- **बेड प्लांटिंग** – इस तकनीक में हल द्वारा उत्थित मेड़ बीजाई मशीन सह फर्टी–ड्रिल का उपयोग वैसे क्षेत्रों के लिए किया जाता है जहाँ सिंचाई के लिए पानी की समस्या है। इस तकनीक द्वारा 35–40 प्रतिशत पानी की बचत धान और गेहूँ की फसल में हो जाती है।
- **लेजर लेवलिंग** – यह तकनीक संसाधन संरक्षण तकनीक का एक महत्पूर्ण घटक है जिससे जल की समस्या में सुधार होता है। इस तकनीक के एक बार इस्तेमाल से 3–4 वर्षों तक कई फायदे खेत के लिए होते हैं जैसे कि सिंचाई के लिए कम जल की आवश्यकता, सिंचाई से समय की बचत के साथ पानी एक समान रूप से और जल्दी से पूरे क्षेत्र में फैल जाता है जिससे फसल में अच्छी वृद्धि एवं अंकुरण होता है।
- **फव्वारा और टपका विधि से सिंचाई** – फव्वारा और टपका विधी से सिंचाई पद्धती में किसानों के पास में काफी खुले कुओं या तालाब होते हैं। बूँद एवं फव्वारे से कि गई सिंचाई से जल की 30 प्रतिशत बचत होती है इसके अलावा बिजली से होने वाले खर्च, अधिकता से इस्तेमाल जल की परम्परागत भराव की तुलना में बेहतर होता है।

(2) उर्वरकों के कुशल उपयोग से 'शुद्ध कृषि ' आय प्रौद्योगिकी में वृद्धि

- **मिट्टी के पोषक तत्व की स्थिति कि अनुसार उर्वरकों का इस्तेमाल** : मृदा की उसकी क्षमता के अनुसार आवश्यक पोषक तत्व की उपलब्धता उर्वरता कहलाती है और इसके आधार पर ही मृदा की विभिन्न भौतिक, रासायनिक और जैविक गुण निर्भर करता है। **'सामान्य मृदा पोषक निगरानी'** सफल मृदा उर्वरक प्रबंधन का समाधान है। मृदा परीक्षण के अंतर्गत मृदा नमूने संग्रह (पीएच) पी. एच. मान का विश्लेषण और पोषक तत्व सामग्री सम्मिलित है। फसल उत्पादन और उर्वरकों का फसल की उपज पर प्रभाव का मूल्यांकन मृदा पोषक तत्व की स्थिति की जाँच से हो जाता है। उर्वरकों की सरीक मात्रा के उपयोग से न सिर्फ मृदा पोषक तत्व की स्थिति का पता चलता है अपितु सही मात्रा में

आवश्यक पोषक तत्वों जो फसल उत्पादक को चाहिए उपलब्ध कराता है। इसके अलावा पोषक तत्वों की मात्रा जो मृदा की क्षमता के अनुसार इस्तेमाल होने वाले अधिकतम लागत से बचाता है।

- **संस्तुत की गई उचित उर्वरकों का इस्तेमाल :** पौधों के उचित विकास एवं वृद्धि के लिए 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। उर्वरकों जिसे पौधों का खाद्य तत्व कहते हैं के इस्तेमाल से ये सभी आवश्यक तत्व पौधों को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। फसलों के कटाई उपरांत ये सभी पोषक तत्वों में घुलकर वाष्पीकरण और अपरदन द्वारा लगातार मृदा की उर्वरता को कम कर देता है। उर्वरकों का चुनाव मिट्टी की प्रतिक्रिया के अनुसार करना चाहिए जैसे अम्लीय उर्वरकों का चुनाव अम्लीय मृदा की प्रतिक्रिया के आधार पर करना चाहिए।

धीमी निर्गमित नाइट्रोजन प्रावरोधक से ढका होता है और यूरिया प्रवरोधक का इस्तेमाल धान के लिए किया जाता है जो नाइट्रोजन की हुई कमी को पूरा करता है। नाइट्रोजन के क्षति होने का खतरा रासायनिक उर्वरकों के रूप में कम होता है।

- **उर्वरकों का उचित विधि द्वारा अभिग्रहण :** थोड़ी मात्रा में नाइट्रोजन उर्वरकों के मिलने से तत्काल खड़ी फसल के वृद्धि होती है और अधिकतम उपयोग से कम नुकसान के साथ दक्षता हासिल होती है। इसके लिए दो खुराक में बंटवारा किया जाता है आधी खुराक बुनायादी तौर पर पहले तथा बची हुई खुराक फसल में खाद देने के बाद यदि मिट्टी भारी किस्म की हो।

यदि हल्की मृदा हो तब नाइट्रोजन का इस्तेमाल तीन भागों में करते हैं पहले खुराक बुनयादि रूप से बुआई के समय तत्पश्चात् बिजाई के 30 दिनों बाद और आखिरी खुराक बीजाई के 50–60 दिनों के बाद कर देते हैं।

नाइट्रोजन की अधिकतम जरूरत को फसल की विकास अवस्था में जानने के लिए लिफ कलर चार्ट का इस्तेमाल किया जा सकता है। लिफ कलर चार्ट का विकास धान में नाइट्रोजन की स्थिति तेजी से आंकलन के लिए की गई थी और इस प्रकार से यह नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग तथा पत्तियों में इस्तम नाइट्रोजन क्षमता बनाए रखने के लिए नेतृत्त्व करता आ रहा है जिससे अधिकतम उत्पादन हो सके।

उर्वरकों का एक विभाजित उपयोग पोषक प्रबंधन कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है चार आर (4 आर) पोषक प्रबंधकों को उत्पादन में सहायता कर सकता है। सही स्त्रोत, सही दर, सही समय और सही जगह का सिद्धांत हमेशा अमल में लाना चाहिए।

उर्वरकों के उपयोग की विधि :– भारत में उर्वरकों का व्यापक रूप से छिड़काव सतही तौर पर किया जाता है जिससे उर्वरकों का एक समान वितरण पूरे खेत में हो जाता है। छिड़काव विधि ऐसे फसलों में पसंद की जाती है जो काफी घने रूप से खड़े और बिना कतार में बोई गई हो। आसानी से घुल जाने वाले नत्रजन उर्वरकों का इस्तेमाल करने के लिए अधिक दर से उर्वरकों का इस्तेमाल करें और जिस फसलों की जड़े अधिक फैली हो उसमें भी इसी विधि को दुहराएं।

फसल विविधीकरण के दृष्टिकोण

- **गेहूँ एवं धान के बीच दलहन फसल का समावेश**

दलहन, तिलहन और सब्जियों का समावेशन होना अनाज अनुक्रम की तुलना में ज्यादा फायदेमंद होता है। दलहनी फसलों द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण, मृदा उपजाऊ क्षमता में वृद्धि और लम्बे समय तक अनाज उत्पादन की क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है।

धान–गेहूँ फसल प्रणाली में यह अच्छी तरह से प्रचलित किया गया है कि अनाज के साथ, चाराफली या सिसबेनिया का इस्तेमाल हरे खाद के रुप में खाद्यन्न फसल के तौर पर किया जा सकता है। दलहनी फसल न सिर्फ नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक है बल्कि ये पोषण की उपलब्धता, मृदा संरचना तथा रोग विस्तार में भी कमी करके माइकोराइजा उपनिवेशन को बढ़ावा देते हैं। प्रेक्षण द्वारा यह भी पाया गया कि गर्मीयों के मौसम में तीसरी दलहनी फसल को गेहूँ–धान अनुक्रम के बीच में उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

जड़ वाली सब्जी फसलों का बीज उत्पादन द्वारा लाभार्जन

सुरेश चंद राणा एवं विनोद कुमार पंडिता

जड़ वाली सब्जियों में मूली, शलगम, गाजर व चुकंदर प्रमुख हैं। इनकी कृषि क्रियाओं में प्रयाप्त समानता है। ये ठंडे मौसम की फसलें हैं तथा सभी भूमिगत होती है। इनसे हमें पौष्टिक तत्व, शर्करा, सुपाच्य रेशा, खनिज लवण, विटामिन्स व कम वसा प्राप्त होती है। इन सब्जियों का उपयोग सब्जी बनाने हेतु, सलाद के रूप में तथा अचार के रूप में किया जाता है। गाजर का उपयोग रस के रूप में, मिठाई व मुरब्बा आदि बनाने में भी किया जाता है। इनके पत्तों का प्रयोग सब्जी व सलाद हेतु तथा पशुओं के लिए हरे चारे के रूप में भी किया जाता है। चुकंदर का उपयोग चीनी तथा इथेनोल बनाने में भी होता है। इन सब्जियों के नियमित सेवन से शरीर में रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। गाजर व चुकंदर का सेवन रक्तवर्धक होता है। कम अवधि की फसल होने के कारण इन सब्जियों का फसल विविधीकरण में महत्वपूर्ण स्थान है। उत्तर भारत के मैदानी भागों में इन सब्जियों (मूली, शलगम, गाजर व चकुंदर) के जड़ उत्पादन हेतु निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए;

किस्म का चयन

जिन किस्मों की बाजार में मांग हो या जिन्हें किसान अपने लिए उगाना चाहता है, उन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहिए। किस्म अच्छी पैदावार देने वाली हो। किस्म में रोग रोधिता, अगेतापन आदि वांछित गुण होने चाहिए। छांटी गई किस्म उस क्षेत्र विशेश की जलवायु के अनुकूल होनी चाहिए। उत्तर भारत के मैदानी भागों में उत्पादन हेतु इन सब्जियों की मुख्य किस्में तथा उनकी बीजाई का समय निम्न प्रकार है;

मूली की लम्बी व मध्यम जड़ वाली किस्में

पूसा देशी	(अगस्त से सितंबर तक बुवाई के लिए उपयुक्त)
जापानी सफेद	(अक्तूबर से दिसंबर तक बुवाई के लिए उपयुक्त)
पूसा हिमानी	(दिसंबर से फरवरी तक बुवाई के लिए उपयुक्त)
पूसा चेतकी	(अप्रैल से अगस्त तक बुवाई के लिए उपयुक्त)

मूली की छोटी जड़ वाली किस्में

व्हाइट आइसिकिल, रैपिड रेड व्हाइट टिप्ड, पूसा मृदुला (अक्तूबर से दिसंबर तक बुवाई के लिए उपयुक्त)

गाजर की किस्में

पूसा वृष्टि (लाल) –जुलाई अंत से अक्तूबर तक बुवाई के लिए उपयुक्त

पूसा रूधिरा (लाल), पूसा आसिता (काली), पूसा मेघाली (संतरी) – सितंबर से अक्तूबर तक बुवाई के लिए उपयुक्त

पूसा यमदाग्नि (संतरी), पूसा नयन ज्योति (संतरी) – अक्तूबर से मार्च तक बुवाई के लिए उपयुक्त

शलगम की किस्में

पूसा श्वेती (बुवाई : अगस्त से सितंबर) पूसा कंचन (बुवाई सितंबर से अक्तूबर)

पर्पल टॉप व्हाइट ग्लोब (बुवाई : अक्तूबर से जनवरी प्रारंभ तक)

पूसा स्वर्णिमा (बुवाई : अक्तूबर से दिसंबर तक)
पूसा चन्द्रिमा (बुवाई : अक्तूबर से जनवरी)

चुकंदर की किस्में

डेटरोयड डार्क रेड, क्रिमसल ग्लोब – बुवाई : सितंबर से दिसंबर तक

खेत की तैयारी

इन फसलों के उत्पादन के लिए ऐसी भूमि का चुनाव करना चाहिए जिसमें पानी के निकास की उचित व्यवस्था हो एवं फसल के लिए प्रर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ उपलब्ध हो। मृदा गहराई तक हल्की, भुरभुरी व कठोर परतों से मुक्त होनी चाहिए। इनकी फसल के लिए खेत सर्वोत्तम पी.एच. मान 6–7 होता है। खेत खरपतवारों व अन्य फसलों के पौधों से मुक्त होना चाहिए। खेत की मृदा रोगों व कीटों से मुक्त होनी चाहिए। खेत में एक जुताई मिट्टी पलट हल से व 2–3 जुताई हैरो या कल्टीवेटर से करें। प्रत्येक जुताई के बाद सुहागा लगाएं ताकि मिट्टी भुरभुरी हो जाए। बीजाई से पहले खेत से पिछली फसल के सभी अवशेषों को निकाल देना चाहिए। खेत की तैयारी के समय भली भांति सड़ी हुई गोबर की खाद 150–200 कुतंल प्रति हैक्टर की दर से मृदा में मिलाई जाती है। खेत में प्रयोग हेतु खाद एंव उर्वरक की मात्रा का निर्धारण मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। इन फसलों में 70 कि.ग्रा. नत्रजन (130 कि.ग्रा. यूरिया), 50 कि.ग्रा. फास्फोरस (310 कि.ग्रा. सिंगल सूपर फास्फेट), 40 कि.ग्रा. पोटाश तथा 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से डालना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस, पोटाश व जिंक सल्फेट की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई हेतु खेत तैयार करते समय डालनी चाहिए। जबकि शेष बची नत्रजन को जड़ बनने की स्थिति में मिट्टी चढ़ाते समय समान रुप से छिड़क देना चाहिए। इसके अतिरिक्त खड़ी फसल में आवश्यकतानुसार यूरिया का पर्णीय छिड़काव भी किया जा सकता है।

बीज दर एवं बुवाई

एक हैक्टर में बुवाई के लिए गाजर तथा शलगम में 4–5 कि. ग्रा. तथा मूली में 8–10 कि. ग्रा. बीज का प्रयोग करते हैं। चुकंदर की एक अंकुर वाली किस्मों हेतु 6 कि. ग्रा. तथा बहु अंकुर वाली किस्मों हेतु 8–10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करते हैं। बुवाई हेतु स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें। चयनित किस्म का शुद्ध बीज किसी अनुसंधान केन्द्र, बीज निगम, कृषि विश्वविद्यालय या सुस्थापित बीज फर्म से प्राप्त करना चाहिए। मूली व गाजर के बीज की बुवाई 40–45 सें.मी. चौड़ी तथा 15–20 सें.मी. ऊँची मेड़ों पर करते है तथा बीज को 1.5–2 सें.मी. की गहराई पर लगाते है। जबकि शलगम व चुकंदर को समतल खेत में या मेड़ों (10–12 सें.मी. ऊँची) पर भी लगाया जा सकता है तथा बीज को 2–3 सें.मी. की गहराई पर बोना चाहिए। बीजाई से पहले बीज को उपयुक्त कवकनाशी से उपचारित कर लेना चाहिए। बीजाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। बीज में अंकुरण 8–10 दिन में होता है। पहली सिंचाई बीज उगने के बाद करें। बीज जमाव के बाद जब पौधे 5–6 सें.मी. लंबाई के हो जाए खेत में पौधों की वांछित संख्या रखने के लिए पौधों की छंटाई की जाती है। इसके लिए मूली व गाजर के प्रत्येक दो पौधों के बीच में 5–7 सें.मी. तथा शलगम व चुकंदर के प्रत्येक दो पौधों के बीच में 8–10 सें.मी. का अंतर रखकर फालतु पौधों को निकाल देते हैं।

सिंचाई प्रबंधन

पहली सिंचाई बीज बोने से पहले पलेवा के रूप में की जाती है। इसके उपरांत सामान्यतः दो–तीन सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। इन सब्जियों के लिए हल्की सिंचाई की आवश्यकता होती है। भारी तथा चिकनी दोमट भूमि में बोई गई फसल में टपक सिंचाई अथवा फव्वारा सिंचाई का प्रयोग करना चाहिए। खेत में अनावश्यक पानी का रुकना पौधों की वृद्धि एवं विकास

के लिए हानिकारक होता है। अतः जल निकास का उचित प्रबंधन होना चाहिए। जिससे पौधों की जड़ों के आसपास वायु का संचरण आसानी से हो सके।

खरपतवार प्रबंधन

दो–तीन बार निराई–गुड़ाई द्वारा खरपतवारों को हटाते हैं। खरपतवारों के रासायनिक नियत्रंण हेतु फ्लूक्लोरालिन (बासालिन 45 ई.सी.) का प्रयोग 0.75 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुआई के ठीक पहले मिट्टी में मिलाकर करते हैं या पेन्डीमेथालिन (स्टॉम्प 30 ई.सी.) का प्रयोग 0.75 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के 2 दिन के अन्दर छिड़काव द्वारा करते हैं।

कीट एवं रोग प्रबधंन

आमतौर पर इन फसलों में कीटों एवं रोगों का प्रकोप कम होता है। माहू या चेपा व फुदका पत्तियों व तनों से रस चुसते हैं। इनसे बचाव के लिए ईमिडाक्लोपरिड या थायोमिथोक्साम 2 मि.लि. दवा प्रति 10 लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। पत्ती कुतरने वाले कीट से बचाव के लिए डाइमिथोएट 30 ई.सी. अथवा मेलाथियान 50 ई. सी. दवा 1–2 मि.लि. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। बीज, पौध व जड़ सड़न रोग से बचाव हेतु ट्राइकोडर्मा विरिडी 4 ग्राम अथवा कार्बाडाजिम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें। पत्ती धब्बा रोग से बचाव हेतु कार्बाडांजिम या मैंकोजेब 0.25 प्रतिशत के धोल का छिड़काव करें।

जड़ों की पैदावार

किस्म के आधार पर मूली व शलगम में बुवाई के 50–60 दिन बाद तथा गाजर व चकुंदर में बुवाई के 85–115 दिन बाद जड़ें बाजार में भेजने योग्य हो जाती है। चीनी उत्पादन हेतु चुकंदर की जड़ें बुवाई के 150–170 दिन बाद निकाली जाती है। जड़ों को सुरक्षित निकालकर अच्छी तरह साफ एवं श्रेणीकृत करके बाजार में भेजना चाहिए। खाने योग्य जड़ों की पैदावार 200–300 कुतंल प्रति हैक्टर प्राप्त होती है।

बीज उत्पादन विधि

बीज उत्पादन के लिए इन सब्जियों को दो अलग–अलग समूहों में बांटा गया है। एशियाटिक या उष्णकटिबंधीय समूह तथा यूरोपियन या शीतोष्ण समूह। यूरोपियन समूह में शीतकालीन किस्में आती हैं जिनका बीज उत्पादन पहाड़ी इलाकों में ही सभंव होता है जबकि मूली, शलगम व गाजर की अर्द्धउष्णीय या एशियाटिक किस्मों का बीज उत्पादन उत्तर भारत के मैदानी भागों में भी किया जा सकता है। मूली की एशियाटिक किस्में– पूसा देशी, पूसा रेशमी, पूसा चेतकी, पूसा मृदुला; गाजर की एशियाटिक किस्में– पूसा रूधिरा, पूसा मेघाली, पूसा आसिता, पूसा वृष्टि; शलगम की एशियाटिक किस्में– पूसा श्वेती, पूसा कंचन हैं। इन सब्जियों में शुद्ध बीज बनाने के लिए जड़ों से बीज बनाने की विधि प्रयोग में लाते है। बीज उत्पादन हेतु उसी खेत का चयन करें जिसमें पिछले एक वर्ष में, बोई जाने वाली किस्म के अलावा कोई दूसरी किस्म बीज उत्पादन के लिए ना उगाई गई हो। मूली व शलगम में बीजाई के 45–65 दिन बाद तथा गाजर में बीजाई के 90–100 दिन बाद प्रतिरोपण के लिए जड़ें तैयार हो जाती हैं। एक हैक्टर खेत में तैयार जड़ें बीज उत्पादन के लिए 3–4 हैक्टर क्षेत्र में प्रतिरोपण के लिए पर्याप्त होती है। मूली की पूसा मृदुला किस्म में बीजाई के 25–30 दिन बाद प्रतिरोपण के लिए जड़ें तैयार हो जाती है। बोई गई किस्म से मेल खाती जड़ों को भूमि से निकालकर रंग, आकार व रूप के आधार पर छांट लेते हैं। छांटी गई जड़ों का नीचे से एक तिहाई तथा पत्तियों को 5–10 सें. मी. रखकर काट देते है। पत्तों को काटते समय इस बात का ध्यान रखें कि पादप शिखर को हानि ना पहुँचें ताकि जड़ प्रतिरोपण के बाद पौधे का फुटाव जल्दी हो सके। छांटी गई जड़ों को प्रतिरोपण से पहले फफुंदीनाशक से

उपचारित कर लें। छांटी गई जड़ों को क्रमशः 60X60 सें. मी. (मूली), 60X45 सें.मी. (शलगम) तथा 60X30 सें.मी. (गाजर) की दूरी पर लगाते हैं। इनके प्रतिरोपण का समय फसल तथा प्रजाति के उपर निर्भर करता है। मूली तथा शलगम में प्रतिरोपण का उचित समय अक्तूबर–नवंबर तथा गाजर में मध्य दिसंबर से मध्य जनवरी तक है। जड़ें प्रतिरोपित करने के बाद खेत को सींचा जाता है। प्रतिरोपण के 15–20 दिन बाद जड़ों के साथ पौधों पर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है।

बीज खेत में कोई भी वह पौधा जो लगायी गई किस्म के अनुरूप लक्षण नहीं रखता है उसे अवांछनीय पौधा माना जाता है। अवांछनीय पौधे निकालने वाले व्यक्ति को किस्म के लक्षणों का भली–भांति ज्ञान होना चाहिए जिससे की वह अवांछनीय पौधों को पौधे की बढ़वार, पत्तों व फूलों के रंग–रूप, जड़ों के रंग–रूप व फूलो के खिलने का समय आदि के आधार पर पहचान सकें। अवांछनीय पौधों का निरीक्षण कम से कम 3–4 बार करते है। प्रथम निरीक्षण जड़ों को उखाड़ने से पहले पौधों की शाकीय बढ़वार की अवस्था में पत्तों के रंग रूप के आधार पर, दूसरा निरीक्षण जड़ों को खेत से निकालते समय करते हैं। बोई गई किस्म से मेल खाती जड़ों को ही प्रतिरोपण के लिए चुनते हैं। फूलों के खिलने के समय जो पौधे बहुत जल्दी फलन की अवस्था में आते हैं तथा जो पौधे सामान्य से बाद में फूल की की अवस्था में आते हैं उनको भी निरीक्षण के दौरान निकाल देना चाहिए। जिन पौधों में बीमारी के लक्षण दिखाई दें, उन्हें भी खेत से हटाना जरूरी है। हर अवस्था पर जो भी अवांछनीय पौधे मिलें उन्हें निकालते रहना चाहिए। इन फसलों में परागण मुख्यतः मधुमक्खियों व अन्य कीटों द्वारा होता है। पर–परागित फसल होने के कारण इन फसलों का आनुवंशिक रुप से शुद्ध बीज प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि दो किस्मों के बीच में एक निर्धारित दूरी रखी जाए। आधार बीज उत्पादन के लिए मूली व शलगम में 1600 मीटर तथा गाजर में 1000 मीटर पृथक्करण दूरी रखते हैं जबकि प्रमाणित बीज के लिए मूली व शलगम में 1000 मीटर तथा गाजर में 800 मीटर पृथक्करण दूरी रखते हैं। बीज बनने के लिए मूली, शलगम, गाजर में पर–परागण आवश्यक है जिसमें मधुमक्खियाँ व अन्य कीट परागण में मदद करते हैं। मधुमक्खियों व अन्य कीटों द्वारा समूचित मात्रा में पर परागण होने से इन फसलों में उत्तम गुण वाले बीजों की कुल पैदावार बढ़ जाती है। बीज खेत में फूल आना आरंभ होने के समय मधुमक्खियों के 2–4 बक्से प्रति एकड़ की दर से रखे जाने चाहिए। बीज उत्पादन हेतु फलियों/फुलवृंतों को समय से तोड़कर उनसे बीज निकालना ठीक रहता है। इसमें असावधानी बरतने पर बीज की उपज व गुणवत्ता में कमी आती है। इन फसलों में बीज की फसल कटाई हेतु मार्च–मई के महीने में तैयार हो जाती है। मूली तथा शलगम की फलियों को पीला पड़ने पर व पूर्णतः सुखने से पहले ही काट लेते हैं। फसल को सुबह के समय काटना उचित रहता है। खलिहान में पौधों को अच्छा तरह सुखाकर फलियों को बीजों को अलग करके साफ व श्रेणीकृत किया जाता है। गाजर के फुलवृंतों को एक–एक कर पकने की अवस्था में काटते हैं तथा 2–3 बार में सारी फसल की कटाई होती है। काटे गए फूलवृंतों को छाया में 5–7 दिन सुखाने के बाद गहाई व मढ़ाई करके बीज निकालते हैं। प्रति हैक्टर क्षेत्रफल में मूली में 800–1000 कि.ग्रा., शलगम में 600–800 कि.ग्रा. तथा गाजर में 500–600 कि.ग्रा. बीज की औसत पैदावार हो जाती है। साफ किये गए बीजों को 7–8 प्रतिशत नमी तक सुखाकर, नमीरोधी थैलों में भरा जाता है। बीज भंडारण के दौरान बीजों को कीटों से बचाव हेतु ईमिडाक्लोपरिड चूर्ण 0.1 ग्राम या मेलाथियान चूर्ण 0.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से तथा फफूंदी जनक रोगों से बचाव हेतु थीरम या कार्बांडाजिम चूर्ण 2 किलाग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचार करें। बीजों को नमी रहित, ठंडे स्थानों पर भंडारण हेतु रखा जाता है।

अधिक आय देती लोबिया की उन्नत खेती

संजय सिरोही, वी.के. पंडिता, पी. बी. सिंह एवं एस.सी. राणा

सब्जियों का भारतीय कृषि में महत्वपूर्ण स्थान है। ये बहुत सी दूसरी फसलों की तुलना में प्रति ईकाई क्षेत्र में अधिक पैदावार देती है एवं किसानों की आय बढ़ाने में सक्षम है। हमारे देश में सब्जियों की अधिक पैदावार देने वाली अनेक उन्नत प्रजातियाँ व संकर किस्में उपलब्ध हैं। फलीदार सब्जियों में लोबिया का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक दलहनी फसल है जो कम समय में तैयार होती है। किसान इसे सब्जी, दाल, चारा, व हरी खाद के लिए उगाते हैं। इसकी कोमल, हरी व अपरिपक्व फलियों का उपयोग सब्जी बनाने हेतु किया जाता है। दाल के लिए परिपक्व सूखे दानों को उपयोग में लाया जाता है। पशु चारे के लिए इसके हरे पौधों व पत्तियों का प्रयोग किया जाता है। चारे हेतु इसकी प्रथम कटाई बीजाई के 45–50 दिन बाद तथा 30 दिन के अंतराल पर अन्य दो कटाई ली जा सकती है। इससे 100 से 110 दिन की समय अवधि में 25 से 40 टन प्रति हैक्टर क्षेत्रफल में हरे चारे की पैदावार ली जा सकती है। दलहनी फसल होने के कारण यह वायुमडंल से नत्रजन संचित करती है तथा भूमि की उर्वरता बढ़ाती है। इसकी फलियों में मध्यम प्रोटीन, शर्करा, सुपाच्य रेशा व कम वसा होती है तथा यह कैल्शियम, फास्फोरस, पोटाशियम, तांबा, लोहा, जिंक आदि खनिज लवणों का अच्छा स्त्रोत है। सब्जी हेतु लोबिया की फलियों की अच्छी पैदावार के लिए फसल उत्पादन सबंधी निम्न प्रस्तुत क्रियाओं को ध्यान में रखना चाहिए।

किस्म का चयन

जिन किस्मों की बाजार में मांग हो या जिन्हें किसान अपने लिए उगाना चाहता है, उन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहिए। किस्म अच्छी पैदावार देने वाली हो, किस्म में रोग रोधिता, अगेतापन आदि वांछित गुण होने चाहिए। छांटी गई किस्म उस क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुकूल होनी चाहिए ताकि उत्पादन के समय आनुवंशिक परिवर्तन की सभांवना ना रहे। चयनित किस्म का शुद्ध बीज किसी अनुसंधान केन्द्र, बीज निगम, कृषि विश्वविद्यालय या सुस्थापित बीज फर्म से प्राप्त करना चाहिए। पूसा सुकोमल, पूसा कोमल, लोबिया–263, काशी कंचन, काशी उन्नति, अर्का गरिमा लोबिया की मुख्य उन्नत किस्में हैं।

खेत का चयन व तैयारी

फसल उत्पादन के लिए ऐसी भूमि का चुनाव करना चाहिए जिसमें पानी के निकास की उचित व्यवस्था हो एवं फसल के लिए प्रर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ उपलब्ध हो। अच्छे बीज अंकुरण व खरपतवार नियंत्रण के लिए खेत को अच्छी प्रकार से तैयार करें। खेत में एक जुताई मिट्टी पलट हल से व 3 या 4 जुताई हैरो या कल्टीवेटर से करें। प्रत्येक जुताई के बाद सुहागा लगाएं ताकि मिट्टी भुरभुरी हो जाए। फसल की अच्छी पैदावार के लिए संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरक का उपयोग तथा समय पर खरपतवारों, कीटों व रोगों का प्रबंधन आवश्यक है।

बीज की मात्रा व बिजाई का समय

उत्तर भारत के मैदानी भागों में लोबिया की फसल साल में दो बार ली जाती है। बसंत या गर्मी में ली जाने वाली फसल (जायद फसल) की बीजाई के लिए 15 फरवरी से 15 मार्च का समय उपयुक्त है। इस फसल को समतल खेत में या मेंड़ों (10–12 सें.मी. ऊँची) पर लगाया जाता है तथा बीज को 2–3 सें.मी. की गहराई पर बोना चाहिए। बरसात के मौसम में ली जाने वाली फसल (जून–जूलाई) की बीजाई मेड़ों या उठी हुई क्यारियों में

करें। एक हैक्टर क्षेत्र में बुवाई के लिए 18 से 20 किलोग्राम बीज पर्याप्त है। बीज की कतार से कतार की दूरी 45 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 सें.मी. रखते हैं।

बीज उपचार

बिजाई से पहले बीज को उपयुक्त कवकनाशी से उपचारित कर लेना चाहिए। यदि बीज अधिक मात्रा में हो तो उन्हें धुमाने वाले ड्रमों में डालकर उपचारित करें। दवाई का रसायन बीजों में समान रुप से मिल जाना चाहिए। बीज व पौध सड़न से बचाव हेतु ट्राइकोडर्मा विरिडी 4 ग्राम अथवा कार्बांडाजिम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें। अगर खेत में लोबिया की फसल पहली बार बोई जा रही है तो राइजोबियम जीवाणु कल्चर से भी बीज को उपचारित करें। एक हैक्टर क्षेत्र में बीजाई हेतु राइजोबियम जीवाणु के दो पैकेट पर्याप्त हैं। दस प्रतिशत चीनी या गुड़ के घोल में संवर्ध (कल्चर) को मिलाएं तथा बीज को इस घोल में भिगो लें। भीगे बीज को छाया में सुखा लें। यह प्रकिया बुआई से पहले दिन शाम के समय कर लें।

खरपतवार प्रबंधन

लोबिया की फसल बुवाई के 35–40 दिन तक खरपतवारों से अधिक प्रभावित होती है। इसके लिए बीजाई के 25 दिन बाद निराई–गुड़ाई द्वारा खरपतवारों को हटाते हैं। खरपतवारों के रासायनिक नियत्रंण हेतु फलूक्लोरालिन का प्रयोग 0.75 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुआई के ठीक पहले मिट्टी में मिलाकर करते हैं या पेन्डीमेथालिन का प्रयोग 0.75 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के 2 दिन के अन्दर छिड़काव द्वारा करते हैं।

जल प्रबंधन

लोबिया की फसल अधिक सुखा सहन नहीं कर सकती। अतः फूल व फलियां आने के समय पानी की कमी होने पर सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। खेत में पानी भराव की समस्या नहीं होनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग

लोबिया की आरंभिक बढ़वार हेतु नाइट्रोजन की कम आवश्यकता होती है तथा फॉसफोरस व पोटाश की अधिक आवश्यकता होती है। खेत की तैयारी के समय प्रति हैक्टर 200–250 कुंतल की दर से भली–भांति सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाई जाती है। इसे बुवाई से 20–25 दिन पूर्व खेत में मिला दिया जाता है। 25–30 किलोग्राम नाइट्रोजन, 45–50 किलोग्राम फॉसफोरस तथा 30–40 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। उर्वरकों का उपयोग मिट्टी परिक्षण के आधार पर करें। जिंक की कमी वाले क्षेत्रों में 8–10 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। फॉसफोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा बीजाई के समय तथा बची हुई नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई से 30–35 दिन बाद छिड़काव द्वारा दें।

कीट एवं रोग प्रबंधन

माहू या चेपा व फुदका पत्तियों व तनों से रस चुसते हैं। इनसे बचाव के लिए डाइमिथोएट 30 ई. सी. अथवा मेलाथियान 50 ई.सी. अथवा मिथाईल डेमेटोन 25 ई.सी. 1 मि.लि. दवा प्रति लिटर पानी की दर से छिड़काव करें। फली भेदक के प्रकोप से बचाव के लिए क्विनलफास 25 ई.सी. 2 मि.लि. दवा प्रति लिटर पानी की दर से छिड़काव करें। बीज व पौध सड़न के नियंत्रण हेतु ट्राइकोडर्मा विरिडी 4 ग्राम अथवा कार्बांडाजिम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें। पत्ती धब्बा रोग से बचाव हेतु कार्बांडाजिम या डाइथेन एम–45 के 0.25 प्रतिशत के धोल का छिड़काव करें। मौजेक वायरस के प्रकोप को कम करने के लिए माहू या चेपा का प्रभावी नियंत्रण करें। मौजेक वायरस से ग्रसित पौधों को खेत से

निकाल दें व स्वस्थ पौधों से ही बीज बनाएं। चूर्णी फफूंद रोग से बचाव हेतु घूलनशील गंधक चुर्ण 0.25 प्रतिशत के धोल का छिड़काव करें।

उपज

बाजार में बेचे जाने योग्य लोबिया की कच्ची हरी फलियों की तूड़ाई बीजाई के 45–50 दिन बाद आरंभ हो जाती है। हरी फलियों की औसत उपज 50–60 कुंतल प्रति हैक्टर है।

बीज उत्पादन

लोबिया का आनुवंशिक रुप से शुद्ध बीज प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि दो किस्मों के बीच में एक निर्धारित दूरी अवश्य रखी जाए। स्वपरागित फसल होने के कारण लोबिया में बीज खेत की पृथक्करण दूरी 10 मीटर तक रखते हैं। कोई भी वह पौधा जो लगायी गई किस्म के अनुरूप लक्षण नहीं रखता है उसे अवांछनीय पौधा माना जाता है तथा उसे फसल निरिक्षण के समय उखाड़ कर हटा देना चाहिए या फिर गड्ढे में दबा देना चाहिए। अवांछनीय पौधे निकालने वाले व्यक्ति को किस्म के लक्षणों का भली–भांति ज्ञान होना चाहिए जिससे की वह अवांछनीय पौधों को पौधे की बढ़वार, पत्तों व फूलों के रंग–रूप, फूलों के खिलने का समय, फली के रंग–रूप आदि के आधार पर पहचान सकें। अवांछनीय पौधो का निरीक्षण कई बार करना चाहिए जैसे पौधों की शाकीय बढ़वार की अवस्था, फूलों के खिलने के समय, फलियां बनने व पकने की अवस्था के समय। हर अवस्था पर जो भी अवांछनीय पौधे मिले उन्हें निकालते रहना चाहिए। बीज हेतु फलियों की तोड़ाई इनके पीले पड़ने तथा सूखने पर करते हैं। फलियों से बीजों के झड़कर गिरने से होने वाली हानि को रोकने के लिए फलियों को पूरी तरह पकने से पहले काट लें तथा खलिहान में फलियों को अच्छी तरह फैला कर सूखा लें। फलियों के अच्छी तरह सूखने के उपरांत बैलों या थ्रेशर की सहायता से गहाई कर बीज निकाल लें। उन्नत कृषि विधियां अपनाकर लोबिया में प्रति हैक्टर 10–15 कुंतल बीज की उपज प्राप्त की जा सकती है।

कृषि उत्पादन एवं आय बढ़ाने की नवीनतम व समसामयिक तकनीक

महेन्द्र सिंह कटियार ग्राम सरायप्रयाग जनपद कन्नौज (उ.प्र.)

जनक बीजों के आधार पर बीज के उत्पादन का व्यापारिक दृष्टि कोण

''कृषक का अर्थ केवल हाड़तोड़ मेहनत कर जमीन से केवल अन्न उपजाने वाला शख्स नहीं रह गया है, बल्कि कृषि में अपनाई जाने वाली पुरानी विधियाँ व पुराने बीजों के प्रयोग को छोड़कर नवीनतम तकनीक से उन्नतिशील बीजों को पैदाकर अपेक्षित आमदनी पाकर एक वर्ष में ही धनवान बन सकता है। यह मेरा प्रयोगात्मक अनुभव है''।

इसी प्रेरणा से सीख लेकर मैने अपने जनपद कन्नौज (उ.प्र.) के आत्मा योजना एवं कृषि विज्ञान केन्द्र के अधिकारियों व वैज्ञानिकों के सहयोग एवं सुझावों के अनुसार सर्वप्रथम 13–12–2010 को चन्द्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर से गेहूँ की निम्न प्रजातियों को लाकर बीजों का उत्पादन प्रारम्भ किया।

सन्– 2010

गेहूँ की किस्में	क्षेत्रफल	प्राप्त उपज (कुंतल)	सामान्य गेहूँ की कीमत		बीज		
			मूल्य/कु.	कुल आय	वजन (कुंतल)	मूल्य	कुल आय
के 307 शताब्दी (20 कि.ग्रा.)	40 डि.	10	1300/–	13000/	09	2200/	19800/
के. 9162 गंगोत्री (40 कि.ग्रा.)	80 डि.	18	1300/–	23400/	17	2200/	37400/
सन्– 2011							
माही के. 402 (20 कि.ग्रा.)	40 डि.	10	1400	14000/	09	2300/	20700/
माही के. 402 (25 कि.ग्रा.)	1/2 एकड़	13	1400	18200/	12	2300/	27600/
गोल्डन हलना के. 424 (20 कि.ग्रा.)	40 डि.	8	1500	12000/	7	2500/	17500
अरहर यूपीएएस 120 (160 कि.ग्रा.)	2 एकड	16	3000/	48000/	15	6000/	9000/
मूँग मेहा 99–125 (22 कि.ग्रा.)	1 है.	19	3800/	72200/	18	6000/	10800/
			बिक्री से प्राप्त आय	**164400/**			262800/

सन्– 2012							
पी.बी.डब्ल्यू.343 (40 कि.ग्रा.)	1/4 है.	15	1400	21000/	14	2800/	30200/
एन.डब्ल्यू. 2036 (20 कि.ग्रा.)	40 डि.	09	1400	12600/	08	2800/	22400/
9162 गंगोत्री (40 कि.ग्रा.)	80 डि.	18	1400	25200/	16	2800/	44800/
99–125 एफएस	1 है.	18	4400	79200/	16	7000/	120000/
		बिक्री से प्राप्त आय		**138000/**			217400/
सन– 2013							
के. 9162 गंगोत्री (80 कि.ग्रा.)	1/2 है.	25	1500	39500/	13	3000/	69000/
के. 402 माही एफएस	1/2 है.	37.5	1500	56250/	32	3000/	96000/
मूंग पीडीएम 139 सम्राट	1/2 एकड़	4.00	4500	18000	03	8000/	24000/
मूंग मेहा 99–125 (20 कि.ग्रा.)	2 एकड़	14.00	4400	61600	12	7500	91000/
मूंग आईपीएम 02–14 (10 कि.ग्रा.)	1 एकड़	7.00	4300	30100/	06	7400/	44400/
		कुल बिक्री मूल्य		**203450/**			324400/

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि बीज उत्पादन करने से कृषि से व्यापारिक लाभ हुआ जो परिवार में खुशहाली व विकास लाने का साधन सिद्ध हुआ। इस प्रकार बीज विक्रय से आमदनी में 2000 रुपये की बढ़ोत्तरी प्राप्त हुई।

वर्ष 2013 में गेहूँ माही के. 402 की फसल कटाई के आधार पर 5X5 मी. में 21.88 कि.ग्रा. वर्ग मी. उपज प्राप्त के अनुसार 87.53 कु.है. उत्पादन जनपद कन्नौज (उ.प्र.) में सर्वाधिक हुआ जिसके आधार पर सबसे अधिक पैदावार होने का प्रथम पुरस्कार जिलाधिकारी कन्नौज द्वारा दिया गया एवं भूत पूर्व प्रधानमंत्री चौ. चरण सिंह के सम्मान में 2013 में दिया गया। दिसम्बर 2014 में गेहूँ के. 9423 उन्नत हलना 180 कि.ग्रा. को खेतों में बोया। यहीं नहीं मूंग मेहा 99–125 20 कि.ग्रा/मूंग स्वेता आधार बीज 12 कि.ग्रा. उर्द आईपीयू 94–1 उत्तरा 12 कि.ग्रा. के जनक बीजों को खेतों पर बोया गया है।

अन्त में सभी किसान भाईयों को यह सलाह देना चाहूँगा कि कम से कम कुछ प्रगतिशील एवं जागरुक कृषक अपने ही ग्राम में उच्च गुणवत्ता एवं रोग रहित, गुणवत्ता वाले बीज, शुद्ध जनक एवं आधार बीजों से बीज संवर्धन क्रिया अपनाकर अन्य किसान भाई भी स्वयं उच्च गुणवत्ता युक्त बीजों का उत्पादन कर अपनी आर्थिक व सामाजिक स्थिति में सुधार के साथ–साथ कृषि प्रधान भारत की सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।

सफल फसलोत्पादान के मूल मंत्र

महावीर सिंह रोड, प्रगतिशील किसान

ग्रा.पो.ढाठरथ, जिला जीन्द–हरियाणा

प्रायः छोटे किसान फसलोत्पादन में वैज्ञानिक विधियों का ध्यान नहीं रखते तथा बीज, खाद, जुताई, बुआई, सिंचाई आदि क्रियाओं में छोटी–छोटी किन्तु महत्वपूर्ण बातों को नजरअन्दाज कर देते हैं जिससे न तो अच्छी पैदावार मिलती है और न ही अच्छी गुणवत्ता वाले कृषि उत्पाद ही मिल पाते हैं। कटाई के बाद उत्पाद की उचित व्यवस्था तथा बाजार की सही जानकारी न होने के कारण उन्हें अपनी उपज का सही मूल्य भी नहीं मिल पाता। अतएव यहाँ कुछ महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया जा रहा है जिसको अपनाकर किसानों को न केवल अधिक उत्पादन मिल सकता है वरन् बाजार में उनके उत्पाद की अच्छी कीमत भी मिल सकती है।

1 समय पर बुआई करें ताकि अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो।

2 बीजोपचार (बीज का टीकाकरण) अवश्य करें ताकि कम खर्च में फसलें निरोग व स्वस्थ रहें।

3 प्रमाणित तथा उन्नत बीज ही बोयें ताकि 10 से 15 प्रतिशत उपज बढ़ सके।

4 मिट्टी की जांच करवाकर सिफारिश के अनुसार संतुलित उर्वरक प्रयोग करें ताकि उर्वरकों पर कम खर्च हो।

5 बीज की मात्रा सिफारिश के अनुसार प्रयोग करें और कतार में बुआई करें ताकि प्रति ईकाई भूमि में पौधों की उचित संख्या से अच्छी बढ़वार व अधिक उपज प्राप्त हो सके।

6 जुताई–बुआई ढलान की आड़ी दिशा में करें ताकि वर्षा का ज्यादा पानी जमीन के अन्दर जा सके।

7 खेत में फसल अदल–बदल की बोयें ताकि कीट/रोग/खरपतवारों के प्रकोप में कमी हो सके।

8 दलहनी/तिलहनी फसलों में जिप्सम का प्रयोग करें ताकि भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ सके और गुणवत्ता ठीक रहे।

9 फव्वारा, ड्रिप (टपका) व भूमिगत पाइपलाईन सिंचाई विधियों का इस्तेमाल करें ताकि पानी की बचत हो।

10 फसल की आवश्यकता के अनुसार सिंचाई करें तथा आवश्यकता से अधिक पानी न दें ताकि कम पानी में अच्छी पैदावार मिल सके।

11 मित्र कीटों का सरंक्षण करें। प्रकाश पाश व फेरोमोन पाश प्रयोग करें जिससे समय पर हानिकारक कीटों की निगरानी हो सकें ताकि दवाई का प्रयोग कम हो और बिना दवा के कीटों पर नियंत्रण हो सके।

12 जैविक खेती अपनाएं ताकि उत्पादन लागत कम हो और अच्छे उत्पाद प्राप्त हो सकें।

13 सिफारिश के अनुसार अगेती/पछेती किस्में अपनायें ताकि विषम परिस्थितियों में भी आमदनी अच्छी हो।

14 खाद, बीज, दवा खरीदते समय बिल अवश्य लें तथा विश्वसनीय स्त्रोत से ही बीज खरीदें ताकि धोखाधड़ी से बचा जा सके और आदानों की गुणवत्ता सुनिशिचित हो सके।

15 कृषि कार्यक्रमों में भागीदारी बढ़ाए ताकि नवीनतम जानकारी के अनुसार समस्या का समाधान मिल सके।

16 उन्नत कृषि यन्त्रों का प्रयोग कर समय, श्रम एवं पैसे की बचत करें।

17 साठी धान या अगेती धान न उगाएँ ताकि पानी बचे एवं जमीन की उर्वरा शक्ति सही बनी रहे।

18 लेजर लैंड लेवलर द्वारा भूमि का समतलीकरण करने से 10–15 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत होती है। इससे उत्पादन संसाधनों की दक्षता बढ़ी है और फसलों की उत्पादकता में 10 प्रतिशत का लाभ होता है।

19 **जल संचयन करें**–वर्षा के मौसम में खेतों में मेंड़ बनाने और ढलान के विरुद्ध करने से मृदा में जल के संरक्षण में सहायता मिलती है। इससे सिंचाई जल की आवश्यकता कम हो जाती है। किसान वर्षा जल को संग्रहित करने के लिए खेतों के छोटे तालाब भी तैयार कर सकते हैं जिससे जल की कमी की अवस्था में फसलों को जीवन रक्षक सिंचाई दी जा सके। फसलों के मेंड़ और कूंड में बुआई करने से भी खेत में जल संग्रहण में सहायता मिलती है। इससे खरपतवारों में कमी आती और उन्हे निकालना भी आसान हो जाता हैं

20 **सूक्ष्म–सिंचाई प्रणाली को अपनाएं**–इस प्रकार की सिंचाई प्रणाली में जल को ले जाने में होने वाले क्षति में कमी, वाष्पन से होने वाले हानि, जल के बह जाने तथा जल के मिट्टी में गहराई पर रिस जाने के होने वाली हानि में कमी आती है और जल का सही उपयोग होता है। इस विधि से ऊर्जा की बचत होती है और खरपतवारों और रोगों का प्रकोप भी कम हो जाता है।

21 **संरक्षण खेती अपनाएं**–शून्य जुताई व बीज ड्रिल प्रयोग करके खेतों में फसलों को स्थिर रखा जा सकता है और अगले वर्ष रोपाई आसानी से की जा सकती है। इससे मृदा की ऊपरी सतह ढकी रहती है और इस प्रकार धूप से होने वाले नमी के नुकसान को कम किया जा सकता है। बाद की सिंचाई के दौरान मृदा के ठोस हो जाने से भूमि सतह पर जल समान रुप से फैलता है और इस प्रकार जल की कुल आवश्यकता कम हो जाती है क्योंकि जोते गए खेत की तुलना में इस विधि को अपनाने से जल से जमीन के अन्दर रिसने से होने वाली हानि में कमी आती है।

22 **भूमि के अंदर जल इंजेक्शन तकनीक के माध्यम से भू–जल पुनर्भरण करें**–ऐसा अनुसान है कि वर्षा के दिनों में लगभग 30 प्रतिशत वर्षा का जल बह कर व्यर्थ चला जाता है। खेतों में भूमिगत जल भरण के लिए इंजेक्शन वेल (छेद) बनाकर पुनर्भरण करके दक्षता से उपयोग किया जा सकता है।

23 **मृदा समृद्धिकरण के लिए गोबर की खाद तथा हरी खाद का उपयोग करें**–कम्पोस्ट तथा पशुओं से प्राप्त होने वाले अवशेष कार्बनिक पदार्थ के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं जो सामान्यतः सड़कों के किनारे ढेर के रुप में पड़े रहते हैं। इसके साथ ही खेतों में हरी खाद देना भी मृदा को समृद्ध बनाने का एक प्राकृतिक साधन है। इससे मिट्टी की लवणता के नियंत्रण में भी सहायता मिलती है। किसान अपने खाली समय का उपयोग जो उन्हें रबी की फसल की कटाई और खरीफ फसलों की बुआई या रोपाई के बीच मिलता है, ढैंचा जैसी हरी खाद वाली फसलें उगाकर सदुपयोग कर सकते हैं।

24 **फसल अवशेषों का सदुपयोग करें**–फसल अवशेषों को खेतों में नहीं जलाना चाहिए क्योंकि इससे मूल्यवान कार्बनिक पदार्थ नष्ट हो जाते हैं और वायु पर्यावरणीय समस्याएं भी उत्पन्न होती हैं। सरंक्षण कृषि द्वारा इन्हें मिट्टी में पुनः मिलाने, पलवार बिछाने तथा खेत में फैलाने से खेत की मिट्टी कार्बनिक पदार्थों से सम्पन्न हो जाती है।

25 **फसल–चक्र अपनाए**–अनाज वाली फसलों के बाद फलीदार फसलें उगाने से मिट्टी की उर्वरता को सुधारने/बनाए रखने में सहायता मिलती है जिससे मिट्टी की बनावट और संरचना में भी सुधार होता है। यह विधि अपनाने से मृदा पोषक तत्वों के रासायनिक स्त्रोतों अर्थात् कृत्रिम उर्वरकों पर निर्भरता काफी कम हो जाती है। उचित फसल–चक्र अपनाए–अपने खेत में निरंतर एक ही फसल न उगाएं। उचित फसल क्रम अपनाएं और साथ–साथ सरंक्षण कृषि को अपनाने से खरपतवारों, कीटनाशकजीवों तथा रोगों के प्रकोप को कम करने में सहायता मिलती है।

26 **मिट्टी की जांच और मृदा सुधारों का उपयोग करें**–मिटटी की दशा में गिरावट ऐसी समस्या है जो बार–बार उभरती है। अतः किसानों को समय–समय

पर अपनी मिट्टी की जांच कराते रहना चाहिए, भले ही उसमें गिरावट के कोई लक्षण दिखाई दें या न दें। परीक्षणों की रिपोर्ट के आधार पर गुणवत्तापूर्ण मृदा सुधार का उपयोग करना चाहिए।

27 **सिफारिश के अनुसार उर्वरकों का संतुलित उपयोग करें**–उर्वरकों के संतुलित उपयोग से अधिक उपज प्राप्त करने और उत्पाद की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है। इससे मिट्टी का स्वास्थ्य भी अच्छा बना रहता है।

28 **जैव उर्वरकों का प्रयोग करें**– जैव उर्वरक पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित जैविक कृषि निवेश है और ये रासायनिक उर्वरकों की तुलना में सस्ते भी पड़ते हैं। दलहनी फसलों के लिए राइजोबियम, गेहूँ, मक्का, सरसों और कपास के लिए एजोटोबैक्टर, ज्वार, मोटे अनाजों व मक्का के लिए एजोस्पिरिलम, धान के लिए टोलिपोथ्रिक्स का उपयोग किया जा सकता है।

29 **मृदा परीक्षण के आधार पर सूक्ष्म–पोषक तत्वों का उपयोग करें**– खेत में लगातार एक ही फसल उगाने से सूक्ष्म पोषक तत्वों का आवश्यकता से अधिक दोहन होता है। इसके लिए अपनी मिट्टी की जांच कराएं तथा परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग करें।

30 **समेकित नाशीजीव का प्रबंधन करें तथा आवश्यकता के अनुसार पौधों की सुरक्षा वाले रसायनों का उपयोग करें**–अपनी फसल पर कीड़ों–मकोड़ों और रोगों को देखकर घबराएं नहीं। कीट या रोग की उचित सीमाओं की पहचान के लिए अपने निकटतम अधिकारी अथवा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों से परामर्श लें और उनकी अनुशंसाओं के अनुसार पौधों को सुरक्षा प्रदान करने वाले रसायनों का उपयोग करें।

31 **विभिन्न रसायनों को एक साथ न मिलाएं**– कीटों, नाशकजीवों और रोगों के नियंत्रण के लिए विभिन्न फार्म रसायनों को आपस में मिलाने से पहले तकनीकी विशेषज्ञों से परामर्श करें। कीटनाशी बेचने वालों के सुझावों पर निर्भर न रहें।

32 **जैव एजेंटो का उपयोग करें**– जैव एजेंट पर्यावरण मित्र या पर्यावरण के लिए अनुकूल होते हैं। इन जैव एजेंटों का सर्वाधिक उपयोग करें। इसी प्रकार कार्बनिक तत्व भी कीटों व नाशकजीवों तथा रोगों के नियंत्रण में बहुत प्रभावी होते हैं और ये भी पर्यावरण मित्र होने के साथ–साथ सस्ते पड़ते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में ही रसायनों का उपयोग करें।

33 **मानवीय तथा यांत्रिक विधियों का प्रयोग करें**–यदि खरपतवारों, कीटनाशक जीवों तथा रोगों का गहन संक्रमण होता है तो मानवीय तथा यांत्रिक विधियों को अपनाना भी महत्वपूर्ण है।

34 **कटाई के उपरांत आवश्यक प्रबंधन करें**–फसलों की कटाई के बाद उनकी साज–संभाल से शुद्धता तथा गुणवत्ता बनाए रखने में मदद मिलती है और इस प्रकार उत्पाद का बेहतर मूल्य मिलता है। इससे उत्पाद को किन्ही अनचाही परिस्थितियों से सुरक्षा प्रदान करने में भी सहायता मिलती है।

35 **उत्पाद की सही सफाई और श्रेणीकरण करें**–इससे उत्पाद की भौतिक दिखावट में सुधार होता है और खरीरदार का ध्यान उत्पाद की ओर आकर्षित होता है जिससे बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। ऐसा करने के वांछित स्वच्छता बनाए रखने में मदद मिलती है। यदि श्रेणीकृत उत्पादों के नमूनों को एक बार जन–समुदाय द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो उत्पाद की पूरी खेप को बाजार में बिना लाए बेचा जा सकता है।

36 **बिक्री से पूर्व पैकेजिंग अपनाए**–जहां तक हो सके अपने उत्पाद को किसी उचित मूल्य वाली लागत प्रभावी पैकेजिंग सामग्री से पैक करें। पैकेजिंग करने से उत्पाद की साज संभाल करने व उसके परिवहन के दौरान होने वाली क्षति से भी रक्षा

की जा सकती है।

37 **उत्तम भंडराण सुविधा का लाभ उठाएं**–अपने उत्पाद को ऐसी उचित भंडारण संरचना में भंडारित करें जिसमें नमी न हो तथा कीड़े–मकोड़े व रोग आसानी से न लग सकें।

37 **प्राथमिक प्रसंस्करण विधियां अपनाएं** – प्रसंस्कारण से उत्पाद के मूल्य तथा उसकी भंण्डारण आयु में वृद्धि होती है। अपनी स्वयं की व्यवस्था या स्वयं सहायता समूह के माध्यम से बिक्री के पूर्व अपने उत्पाद को स्वयं प्रसंस्कृत करने का प्रयास करें। इससे रोजगार के अतिरिक्त अवसर भी सृजित होते हैं।

38 **बाजार संबंधी सूचनाओं को जानें तथा आवश्यक विचार–विमर्श भी करें**–अपने आप को बाजार संबंधी सूचना से जुड़ा रखें। बाजार में कृषि जिंसों के मूल्यों में सामान्यतः बहुत अधिक उतार–चढ़ाव होता रहता है। जब कृषि मूल्य उच्च हो तो अवसर का सबसे अधिक लाभ उठाने का प्रयास करें। बाजार की मांग के अनुसार अपनी आपूर्ति नियमित करें और अपना माल तब तक बाजार में बेचने के लिए न लाएं जब तक आपको यह सुनिश्चित न हो जाए कि मौजूदा बाजार मूल्य आपकी अपेक्षाओं के अनुरुप हैं या नहीं। अपेक्षाओं के अनुरुप होने पर ही अपने माल की बिक्री करें। फसल कटाई के समय सभी किसान बाजार में अपनी फसल की बिक्री हेतु ले जाते हैं, उस समय भाव सामान्यतः कम मिलते हैं। अतः किसानों को अपनी फसल को स्टोर में रखना चाहिए ताकि बाद में अधिक भाव पर बेचा जा सके। भण्डारण हेतु बैंकों की तरफ से ऋण सुविधा भी मिलती है उसका लाभ उठाएं।

उपरोक्त बातों को अपनाकर किसान अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकता है और कृषि उत्पाद की बाजार में बिक्री से अधिक आमदनी प्राप्त कर सकता है। इससे किसान को व्यक्तिगत रुप से कम खर्च करके अधिक आय प्राप्त होती है तथा परिवार की समृद्धि भी सुनिश्चित होती है।

उन्नत खेती के तरीके

आनंद कुमार ठाकुर, पटसारा, मुजफ्फरपुर, बिहार

बिहार एक कृषि प्रमुख प्रदेश है। यहां की 70 प्रतिशत की आबादी कृषि पर ही निर्भर है। हमारे यहां मूलरुप से ज्यादातर मानसून की कृपा पर ही खेती निर्भर है। मैंने किसानों को दाने दाने के लिए तड़पा देने वाला सूखा, तो कभी सब कुछ अपने साथ–साथ बहा ले जाने वाली बाढ़ की विभिषिका देखी है। इन दोनों कठिन चुनौतियों के अलावा हम भारतीय किसानों को कई तरह के मौसम के मार का सामना करना पड़ता है। असमय वर्षा जो कभी ओलावृष्टि, कभी आंधी इत्यादि जैसा कई प्राकृतिक प्रकोप देखने को मिलता है फिर फसल अधिक परिश्रम के बावजूद तहस–नहस चुर–चुर होता जाता है इत्यादि। कई बार प्रारंभ में ''प्रभु'' की मेहबानी हुई, तो मौसम साथ दिया तो ,खेत में लहलहाती हरियाली फसल देखकर फुला नहीं समाता है। यद्यपि प्राकृतिक आपदाओं पर मनुष्य का कोई वश नहीं चलता है परन्तु किसान भाई इन बातों पर यदि ध्यान दे तो अच्छी पैदावार ले सकते है।

1 रबी की फसलें में किसान भाई को अपना अनुभव देना चाहता हूँ कि उर्वरक से पूर्व मिट्टी परिक्षण करवाना तथा उसके अनुसार उर्वरकों का उपयोग करना।

2 दलहनी फसलों को फसल–चक्र में शामिल करना।

3 फसलों पर वैज्ञानिकों की सलाह पर खरपतवारनाशी का उपयोग करना।

4 अपने लिए बीज का उत्पादन करना।

5 बीज की खेती खुद करना और किसानों के बीच में करवाना तथा उसका उपयोग करना।

6 सिंचाई जल का समुचित उपयोग।

7 सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग करना।

8 जैविक खादों का उत्पादन एवं उपयोग करना।

9 गेहूँ की बीज का जैव उर्वरक जैसे पी एस बी एवं एजोटोबैक्टर से उपचारित करना।

10 नई किस्मों का प्रयोग

11 समुचित मात्रा में खाद, पानी एवं दवाइयों का प्रयोग।

12. मृदा की सेहत की देखभाल के लिए हरी खाद, गोबर की खाद, केंचुआ खाद, कम्पोस्ट आदि का समुचित उपयोग।

13. समय से बुआई एवं प्रबंधन

विभिन्न फसलों के बीजों का उन्नत तकनीक द्वारा उत्पादन, समेकित उर्वरक प्रबंधन एवं कृषि के अन्य आधुनिक तकनीकों को अपनाकर मैं कृषि से खुश हूँ। लेकिन मंहगाई की मार, मजदूरों का संकट ने इस खुशी को कुछ कम किया है लेकिन खेती में मेरा बरकरार है।

अतंतः मैं कहूंगा कि रासायनिक खाद के अधिक मात्रा में प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि तो होती है, बाद में चलकर मेरे खेत के मिट्टी का स्वास्थ्य खराब हो सकती है। ऐसी स्थिति आने से पूर्व अपने खतों में जैव–उर्वरक, मवेशी खाद, हरी खाद, दलहनी फसलों की खेती का प्रयोग करके ही फसल उत्पादन का ओर अधिक लाभप्रद और टिकाऊ बनाया जा सकता है।

स्थायी बेड पर मक्का एवं गेहूँ का फसल चक्र

विकास चौधरी

गेहूँ की बिजाई स्थायी बेड पर करने से बहुत से फायदे हैं। स्थायी बेड मतलब वो बेड जिसे हम परेशान नहीं करते और तप्पड़ में ही गेहूँ की बिजाई करते हैं। मक्का–गेहूँ फसल–चक्र में अगर किसान आते हैं तो हमें क्या करना होगा इस पर कुछ हमने काम किया है। आमतौर पर जो बेड होता है वो मेंड़ होते हैं। जबकि स्थायी बेड ऊपर से चौड़ाई में होते हैं। इनका फायदा यह है कि इन मेड़ों पर हम तप्पड़ में ही बिजाई करते हैं। हमने ये बेड की चौड़ाई 37.5 सें.मी. और नाली 30 सें.मी. की रखी है जिससे 37.5 सें.मी. पर हमारी गेहूँ की दो लाईन आती हैं। जबकि मक्का की बात करें तो मेड़ पर मक्का की एक लाईन आती है। मक्का की बिजाई जून माह में करते हैं और मक्का के बाद हम गेहूँ की सीधी बिजाई करते हैं और हम मक्का का 50 प्रतिशत अवशेष भी खेत में रखते हैं। जिसका फायदा हमारे खेत में मिलता है। हमारे खेत की नमी भी बनी रहती है और हमारे खेत की उर्वरक शक्ति भी रहती है जिससे हमारी मृदा का स्वास्थ्य भी अच्छा हो जाता है।

अगर हम इस तरह से स्थायी बेड पर 50 प्रतिशत मक्का का अवशेष रखकर बिजाई करते हैं जो हमारे जो गेहूँ की पैदावार 6.5 टन/है. आती है। जो कि बुआई की सभी की विधियों से अधिक है वैसे तो हमारी बेड में जो नाली है (30 सें.मी) जो की बहुत कम चौड़ाई है। इससे पानी की भी बचत कर सकते हैं और इन्ही बेड पर हमें गेहूँ कटाई के बाद मूंग की भी बिजाई कर सकते हैं आमतौर पर गेहूँ की बिजाई बेड पर करने से हमें 3–4 बार जुताई करती पड़ती है। जबकि स्थायी बेड पर हम एक ही बार में गेहूँ की बिजाई कर देते हैं।

राजभाषा खण्ड

इतने बड़े देश में यहाँ इतनी भाषाएँ हैं, वहाँ देश की एकता के लिए एक कड़ी की आवश्यकता है। कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब बोल सकें, जो एक कड़ी की तरह सबको मिला-जुला कर रख सके। इसलिए हिन्दी को बढ़ावा देना सबका काम है।

– श्रीमती इन्दिरा गांधी

हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा

जल संचय

सुरेन्द्र कुमार और बालेन्द्र कुमार

जल का संचय करले बन्दे, जल बिन प्राणी ना जी पायेगा।
झगड़ा जल का जल नहीं मिलता, जल ज्यो का त्यो रहता है।
कर्म भी बदला क्रिया बदली, जल का रोना रोता है।
उजाड़ दिये सब खेत बाग बन, यज्ञ हवन ना होता है।
जो चले बटोही बाट पराई, नहीं स्वावलम्बि होता है।
वैदिक खेती व पेड़ लगे, यज्ञ से प्रदूषण ना रह पायेगा।
जल का संचय करले बन्दे, जल बिन प्राणी ना जी पायेगा।

गो का पालन, गव्य का सेवन, गो को ढाल बनाना है।
सुख समृद्धि व शान्ति गो से, गोधन हमें बढ़ाना है।
हुमोफार्मिग, बायोफार्मिग, वैकल्पिक ऊर्जा का जमाना है।
सार्ट कट से भारी ह्रास हुआ, क्यू खोया पूर्वजों का खजाना है।
सब सजा भोगते निज कर्मों की, रोपी बबूल, आम कहां से खाएगा।
जल का संचय करले बन्दे, जल बिन प्राणी ना जी पायेगा।

रत्न गर्भा वसुन्धरा, सबने खूब पढ़ा या पढ़ाया है।
पीपल पेड़ है देव तुल्य, ब्रह्मा का वास बताया है।
रस रसायन भव्य नीम है, जो खोजो में आया है।
वट वृक्ष की कथा अनोखी, ऋषियों, कवियों ने गाया है।
जिसको लगता रोग जहां पर, स्वस्थ वही से हो पाएगा।
जल का संचय करले बन्दे, जल बिन प्राणी ना जी पायेगा।

नदियां जोड़ो बांध बनाओं, पोखर ताल को भरना है।
दोहन कम से कम हो भूमि का, जल का संचय करना है।
ओजोन परत है होती दुर्लभ, उसे नीति नियत से भरना है।
कई जाति होती विलुप्त जीन की, इस भूकंप से डरना है।
अतिवृष्टि व अनावृष्टि का, दम्भ नहीं रह पायेगा।
जल का संचय करले बन्दे, जल बिन प्राणी ना जी पायेगा।

हम पालक हैं, हम पोषक हैं, फिर ये कैसी तन्हाई है।
स्वानों को दूध कहीं मिलता, कहीं रोटी की लड़ाई है।
गरीबी नहीं मिट्टी आज तक, गरीब की शामत आयी है।
इस धर को ना औरों ने फूंका, ये आग हम ही ने लगाई है।
खून बहाया, खून पिया है, अब कुछ ओर नहीं पी पाएगा।
जल का संचय करले बन्दे, जल बिन प्राणी ना जी पायेगा।

कृष्ण सुदामा सी जोड़ी है, अर्जुन कृष्ण सा प्यार हो।
ना निर्धन हो ना रोगी हो, सुखमय सारा संसार हो।
ना भूमिहीन, ना अनपढ़ हो, सबका अपना घर बार हो।
कही दहेज ना निगले बालकों, यहां सबका मत एक सार हो।
कह सुरेन्द्र हम भूमि पुत्र है, कोई भूखा ना सो पाएगा।
जल का संचय करले बन्दे, जल बिन प्राणी ना जी पायेगा।

गेहूँ तेरी व्यथा

पंकज कुमार सिंह
फसल सुरक्षा अनुभाग
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

खेतों में खड़ा था, सूरज की गरमी में
दमक रहा था स्वर्णिम, स्वर्ण–वर्ण सा
शायद मेरा नाम कनक इसलिए पड़ा था।

गरीब किसान खुश होते थे चमक से मेरी
आसमों में भी फैली थी खुशबु मेरी
चहूँ ओर थी फसलों की खुशियाँ छाई।

परन्तु वक्त के ठहराव न
छीन ली है खुशियाँ सारी
मैं रोया भिगने मत दो मुझे
अनायास इस बेमौसम बरसात में

किसी की शान हूँ मैं
भूख से बिलबिलाते
मजरूमों की जान हूँ मैं
कर्ज की बोझ तले
किसी की आश हूँ मैं

काशः की कोई और सुनता
खेत में खड़ी दूल्हन की तरह निहारता
देखकर कोई अनदेखा न करता
रोम–रोम भीग गई और भिगती चली गई।

ये कैसी बर्बादी है जो मुझे सिर्फ मुझे
बर्बाद कर रही है
मेरी सिसकारियाँ भी मुझे
सिर्फ मुझे सुनाई पड़ रही है।
पर सब की उसी धुन में मगन है
ना कोई चैन अमन है
मंहगाई तो बस एक बहाना है
उसके लिए न कोई धरती ना कोई गगन है।

हिन्दी कार्यक्रमों की रिपोर्ट

वर्ष 2014–15 के दौरान निदेशालय के हिन्दी अनुभाग द्वारा विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये गये तथा राजभाषा प्रचार–प्रसार के लिए निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हर सम्भव प्रयास किया गया। अनुभाग की कुछ प्रमुख गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

- इस निदेशालय की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की चार तिमाही बैठकें (26.04.2014, 07.08.2014, 02.12.2014 तथा 30.01.2015) को आयोजित की गई, जिनमें निदेशालय द्वारा राजभाषा हिन्दी की प्रगति पर चर्चा की गई। निदेशालय की कार्यान्वयन समिति द्वारा सुझाए गये अधिकतम मुद्दों पर प्रगति सराहनीय रही।
- निदेशालय में **हिन्दी पखवाड़ा** (15–30 सितंबर, 2014) का आयोजन किया गया जिसमें निदेशालय के सभी अधिकारियों/कर्मचारियों ने भाग लिया। इस दौरान सभी वर्ग के अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल में प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया तथा विजेताओं को हिन्दी पखवाड़ा के समापन समारोह (05.11.2014) के अवसर पर परियोजना निदेशक, डॉ. इन्दु शर्मा द्वारा सम्मानित किया गया।
- **गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा** के छठे अंक जो **"कृषि में उत्पादन एवं आय बढ़ाने की नवीनतम व समसामयिक तकनीकें"** विषय पर आधारित है का प्रकाशन किया जाना है।
- प्रत्येक तिमाही की रिपोर्ट समयबद्ध एवं नियमित रुप से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि भवन, नई दिल्ली को भेजी जा रही है।
- **गेहूँ एवं जौ संदेश** का प्रकाशन नियमित रुप से किया जा रहा है।

नराकास बैठकों का आयोजन

- नराकास, करनाल की समीक्षा बैठक 29.05.2014 तथा 22.12.2014 को पी.एन.बी. (मंडल कार्यालय) अरबन एस्टेट, करनाल में आयोजित हुई जिसमें परियोजना निदेशक डॉ. इन्दु शर्मा, डॉ. आर.के. शर्मा प्रमुख अन्वेशक एवं आधार भूत विज्ञान एवं डॉ. अनुज कुमार, प्रभारी अधिकारी हिन्दी ने ने भाग लिया।

कार्यशाला का आयोजन

- **"राजभाषा में कार्य करना कितना सरल"** विषय पर दिनांक 23.06.2014 को कार्यशाला का आयोजन किया गया।
- **"होमियोपैथ जीवन का आधार एवं कुछ अनछुए पहलू"** पर दिनांक 19.09.2014 को एक कार्यशाला का आयोजन किया गया।
- **"हिन्दी में कहानी लेखन"** विषय पर दिनांक 27.12.2014 को कार्यशाला का आयोजन किया गया।

"होमियोपैथ जीवन का आधार एवं कुछ अनछुए पहलू" पर दिनांक 19.09.2014 को हुए कार्यशाला के चित्र

तालिका : राजभाषा पखवाड़ा के दौरान आयोजित प्रतियोगिताएं एवं विजेताओं की सूची।

श्रेणी / वर्ग	प्रतियोगिता का नाम	पुरस्कार	विजेता
तकनीकी	भाषण	प्रथम पुरस्कार	श्री राम कुमार
		द्वितीय पुरस्कार	श्री ओ.पी. ढिल्लो
		तृतीय पुरस्कार	श्री जे.के. पाण्डेय श्रीमति सुनीता जसवाल
		प्रोत्साहन पुरस्कार	श्री ओम प्रकाश श्री पी चन्द्रा बाबू
शोध सहायक	खुला मंच	प्रथम पुरस्कार	श्रीमति रेणु शर्मा
		द्वितीय पुरस्कार	डॉ. यशपाल सिंह
		तृतीय पुरस्कार	श्री गिरिश चन्द्र पाण्डेय
		प्रोत्साहन पुरस्कार	श्री पंकज कुमार
सभी वर्ग	गीत गायन	प्रथम पुरस्कार	डॉ. रतन तिवारी
		द्वितीय पुरस्कार	श्री कृष्ण कुमार
		तृतीय पुरस्कार	डॉ. सत्यवीर सिह

		प्रोत्साहन पुरस्कार	श्री रमेश चन्द श्रीमति हिमानी श्रीमति आरती
वैज्ञानिक	आशुभाषण	प्रथम पुरस्कार	डॉ. ज्ञानेद्र सिंह
		द्वितीय पुरस्कार	डॉ. सुभाष गिल
		तृतीय पुरस्कार	डॉ. बी.एस. त्यागी
		प्रोत्साहन पुरस्कार	डॉ. सोनिया श्योराण
सभी वर्ग	अंताक्षरी	प्रथम पुरस्कार	डॉ. रतन तिवारी, डॉ. रेखा मलिक, डॉ. सोनिया श्योराण, श्रीमती ज्ञान अनेजा, श्री भाल सिंह,
		द्वितीय पुरस्कार	डॉ. सुभाष गिल, डॉ. आर.एस. छोकर, डॉ. राजपाल मीना, श्री ओम प्रकाश, श्री मदन लाल
		तृतीय पुरस्कार	श्री राजेन्द्र सिंह तोमर, श्री रामकुमार, श्री जे.के. पाण्डेय, श्री प्रवेश कुमार, श्री धीरज राणा
		प्रोत्साहन पुरस्कार	श्रीमति रेणु शर्मा, श्रीमति आरती, श्री गिरिश चन्द्र पाण्डेय, श्री पंकज कुमार, श्री कमल शर्मा
			डॉ. एस.के. सिंह, श्री सुनील कुमार, श्री अमित सैनी, श्री दवेन्द्र शर्मा, श्री दीपक शर्मा
कुशल सहायक कर्मचारी	हिन्दी सुलेख	प्रथम पुरस्कार	श्रीमती सुमन थापा
		द्वितीय पुरस्कार	श्री हरिन्द्र कुमार
		तृतीय पुरस्कार	श्री अमन कुमार
		प्रोत्साहन पुरस्कार	श्री बीरुराम श्री नन्दन सिंह
प्रशासनिक	हिन्दी सुलेख	प्रथम पुरस्कार	श्री अशोक कथूरिया
		द्वितीय पुरस्कार	श्री सुनील कुमार
		तृतीय पुरस्कार	श्री कृष्ण पाल
		प्रोत्साहन पुरस्कार	श्री महावीर सिंह

डॉ ज्ञानेन्द्र सिंह, आशुभाषण प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार

डॉ. रतन तिवारी, गीत गायन में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित

अंताक्षरी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित दल

श्री जे.के. पाण्डेय, भाषण प्रतियोगिता में तृतीय पुरस्कार से सम्मानित

श्री अशोक कथुरिया, हिन्दी सुलेख प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित

श्रीमती सुमन थापा, हिन्दी सुलेख प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित

श्रीमती रेणु शर्मा, खुला मंच प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार

हिन्दी उत्सव में बाल–भवन के बच्चों की भागीदारी

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा के इस अंक से दो उत्कृष्ट आलेखों का चयन किया जाएगा और उनको पुरस्कृत किया जाएगा।

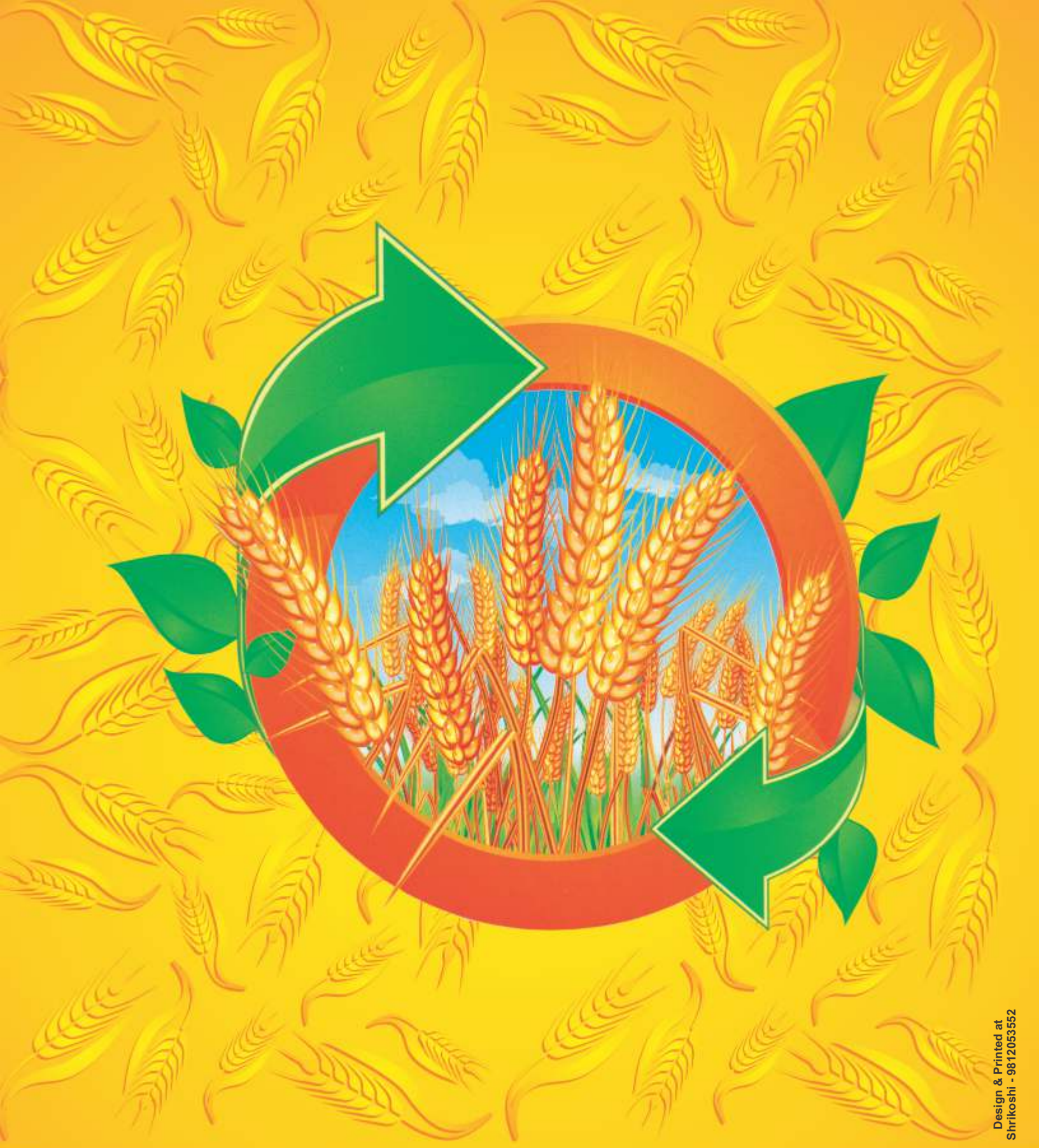

भा.कृ.अ.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

पोस्ट बॉक्स-158, अग्रसेन मार्ग, करनाल - 132001

दूरभाष : 0184.2267490 फैक्स : 0184-2267390

वेबसाईट : www.dwr.in

Design & Printed at
Shrikoshi - 9812053552